TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

भारतीय-बैंकिंग

[भारतवर्षीय हिन्दी-अर्थशास्त्र परिषद द्वारा सम्पादित

लेखक

द्वारकालाल गुप्त

मैनेजर

कोटा स्टेट कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड,

रामगंज मंडी

(कोटा-राजपूताना)

भूमिका लेखक

श्री० पं० दयाशंकर जी दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०,

अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक

राय साहब रामदयाल अगरवाला

२१६ कटरा, इलाहाबाद

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १॥)]   जून सन् १९३४ ई०   [सादी १)

PRINTED BY K. B. AGARWALA AT THE SHANTI PRESS,
NO. 12, BANK ROAD, ALLAHABAD.

समर्पण

श्रीमान् बाबू घनश्याम दासजी साहिब गुप्त बी० ए०

चेयरमैन

दी कोटा स्टेट कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, कोटा,

एवं रजिस्ट्रार कोऑपरेटिव-सोसाइटीज़

और ज्वाइंट-स्टाक-कम्पनीज़

कोटा राज्य

के

कर कमलों में

लेखक

की

ओर से

सादर समर्पित

दो शब्द

भारतवर्ष में नियमानुसार बैंकिंग-धन्धा वैदिक काल से चला आ रहा है। यहाँ हुँडियों का प्रचलन भी अतीत काल से है। मुद्रा-विनिमय के धन्धे में भी यहाँ के सर्राफ लोग बड़े प्रवीण माने गये हैं, लेकिन ये सब बातें पुरानी हैं। आज का भारत अपने बैंकिंग-व्यवसाय में दूसरे देशों से बहुत पिछड़ा हुआ है।

मुग़ल साम्राज्य तक तो भारत का बैंकिंग व्यवसाय पूर्ण रूप से भारतीयों के हाथ में और उत्तम अवस्था में था। इसके बाद जब से यहाँ अंगरेज़ वणिकों का प्रवेश हुआ तबसे भारत की व्यापारिक-प्रणाली में फेर-फार शुरु हुआ और अंग्रेजों ने अपने सुभीते के लिये जोइन्ट-स्टॉक प्रणाली पर बैंक स्थापित करने शुरू किये। इस प्रकार का सबसे पहला बैंक मेसर्स एलेग्ज़ेण्डर एण्ड कं० ने सन् १७७० ई० में बैंक आॅव् हिन्दुस्तान स्थापित किया था। इसके बाद कई अंग्रेजो बैंक भारत में खुले, किन्तु कई कारणों से उनको सफलता नहीं मिली, तब यहाँ अच्छे सुसंगठित विदेशी-विनिमय बैंकों की शाखायें खुलना प्रारम्भ हुआ। आज इन विदेशी विनिमय-बैंकों का न केवल भारत के समस्त विदेशी व्यवसाय पर ही क़ब्जा है, बल्कि देश के भीतरी व्यवसाय पर भी इनका शनैः शनैः अधिकार बढ़ता जा रहा है और ये भारतीय बैंकों की उन्नति के मार्ग में बाधक बन रहे हैं।

सन् १७७० से १८७० तक खुलने वाले अंग्रेजी बैंकों में से तीन बैंक, बैंक ऑव बैंगाल, बैंक ऑव बम्बई और बैंक ऑव मद्रास, सरकारी बैंकिंग धन्धा भी करते थे। इनको नोट ज़ारी करने का अधिकार था जो सन् १८६२ में वापस ले लिया गया। इस १०० वर्ष के समय में बहु संख्यक बैंक फेल हुए, उनमें बैंक ऑव बम्बई भी शामिल था। इस बैंक की भारत सरकार भी हिस्सेदार थी इसलिये उसको भी हानि उठानी पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार ने बैंकों के फेल होने के कारणों का अनुसन्धान करने के लिये सन् १८६९ ई० में एक कमीशन नियुक्त किया और उसकी सिफ़ारिश के अनुसार सन् १८७६ ई० में प्रेसी-डेन्सी-बैंक एक्ट पास हुआ, तदनुसार उक्त बैंगाल, बम्बई और मद्रास बैंक प्रेसीडेन्सी बैंक कहलाये।

लड़ाई के ज़माने में सरकार को तीनों प्रेसीडेन्सी बैंकों के बजाय एक बैंक कायम करने की आवश्यकता अनुभव हुई और लड़ाई समाप्त होते ही सरकार ने तीनों बैंकों को मिलाकर सन् १९२१ में एक इम्पीरियल-बैंक स्थापित कर दिया। इस बैंक के हिस्सेदारों में अधिक संख्या विदेशियों की है। इसके प्रबन्ध में भी विशेष हाथ अंगरेज़ों का है। इसलिये यह विदेशियों की अधिक सहायता करता है।

भारत में अंग्रेजों द्वारा जोइन्ट-स्टॉक-प्रणाली पर बैंक स्थापित होने के पूरे ११० वर्ष बाद भारतवासियों का इस प्रणाली की उपयोगिता की ओर ध्यान आकर्षित हुआ और सबसे पहला

भारतीय जोइन्टस्टॉक-बैंक सन् १८८१ ई० में अवध कमर्शियल बैंक स्थापित किया गया। इसके बाद प्रतिवर्ष सैंकड़ों नये भारतीय जोइन्टस्टॉक-बैंक खुलते गये और उनमें से अनेक काल कवलित होते गये। ५० वर्ष बीत जाने पर भी भारतीय बैंकों के फ़ेल होने का ताँता कम नहीं हुआ और अब तक १०—१५ बैंक प्रतिवर्ष फ़ेल होते रहते हैं। इससे प्रगट होता है कि भारतीय जोइन्ट-स्टॉक-बैंकों का संगठन और प्रबन्ध त्रुटि पूर्ण है और उसमें सुधार होने की गहरी आवश्यकता है।

जोइन्ट-स्टॉक-बैंकों के अतिरिक्त भारत सरकार ने कृषि को आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिये सन् १६०४ में सहकारी समितियों की स्थापना के लिये कानून पास किया, जिससे बहुसंख्यक ग्रामीण-सहकारी-समितियाँ खुलीं। इसके बाद सन् १६१२ में उक्त सहकारी क़ानून में भारी परिवर्तन किया गया जिसके फलस्वरूप यहाँ प्रत्येक ज़िले में सेन्ट्रल-कोऑपरेटिव-बैंकों की स्थापना हुई और तदुपश्चात प्रान्तीय कोऑपरेटिव बैंक खुले।

उक्त वर्णित बैंकिंग संस्थाओं के अतिरिक्त पोस्टऑफिस सेविंग्ज-बैंक और जीवन-बीमा कम्पनियां भी बैंकिंग संस्थाओं के अन्तर्गत आती हैं, क्योंकि इनमें सर्व साधारण की बचत अधिक संख्या में जमा होती है। अस्तु भारत में निम्न लिखित ६ प्रकार की बैंकिंग संस्थायें हैं :—

नाम			कुल दफ़्तर
(१) विदेशी-विनिमय बैंक	...	...	८८
(२) इम्पीरियल बैंक	...	...	१६८
(३) जोइन्ट स्टॉक बैंक	...	...	६५०
(४) कोआॅपरेटिव बैंक :—			
(अ) ग्रामीण समितियाँ	...	...	१ लाख
(ब) सेण्ट्रल बैंक*	...	...	६००
(स) प्रान्तीय बैंक*	...	...	८
(५) पोस्ट आफिस से० बैंक	...	...	१२३३६
(६) बीमा कम्पनिया :—			
(अ) देशी ...	...	...	१३०
(ब) विदेशी ...	...	...	१४७

भारत जैसे विशाल देश के लिये, जिसके सात लाख ग्रामों में संसार की पंचमांश जन संख्या निवास करती है, उक्त बैंकिंग संस्थायें बहुत कम संख्या में हैं। दूसरे देशों में, जो क्षेत्रफल और जन सख्या में भारत से बहुत छोटे हैं, यहाँ से कई गुने अधिक बैंक हैं। इतना ही नहीं विदेशों के अच्छे बड़े एक बैंक की पूँजी और जमा शुदा अमानतों से यहाँ के सब जोइन्टस्टॉक बैंक मिल कर भी मुकाबला नहीं कर सकते।

---

* इनकी शाखायें अलग हैं—

भारतीय बैंकिंग का इतिहास पढ़ने के बाद प्रत्येक पाठक के हृदय में निम्नलिखित प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है :—

(१) उक्त वर्णित भिन्न-भिन्न श्रेणी के बैङ्क क्या-क्या काम करते हैं ?

(२) वर्तमान बैंक भारत के देशी और विदेशी व्यापार, कृषि तथा अन्य उद्योग-धन्धों की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये पर्याप्त हैं या नहीं ?

(३) भारतीय-बैंक प्रतिवर्ष क्यों फेल होते हैं ?

(४) भारतीय-बैंकों की उन्नति के मार्ग में क्या-क्या बाधायें हैं ?

(५) भारतीय बैंकों के संगठन और प्रबन्ध में क्या-क्या त्रुटियाँ हैं ?

(६) वे कौन-कौन से उपाय हैं, जिनको पूरा करने से, भारतीय-बैंक त्रुटियों और बाधाओं से मुक्त होकर, भारत के देशी-विदेशी व्यापार, कृषि तथा अन्य उद्योग-धन्धों को यथोचित सहायता देने, वस्तुओं का मूल्य बढ़ाने और सर्व साधारण की आर्थिक दशा सुधारने में, पूर्ण-रूप से समर्थ हो सकें ?

प्रस्तुत पुस्तक में, भारतीय बैंकिङ्ग के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास के समुचित वर्णन के साथ-साथ उक्त प्रश्नों का

यथोचित उत्तर देने का भरसक प्रयत्न किया गया है। आशा है पाठक गण इसके अध्ययन से संतुष्ट होंगे।

श्री जगदीश्वर की असीम कृपा का फल है कि मैं इस पुस्तक को हिन्दी भाषा-भाषियों के सामने उपस्थित कर रहा हूँ। इसका श्रेय हिन्दी के परमभक्त श्री पं० दयाशङ्कर जी दुबे एम० ए० एल एल० बी० अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय को है, जिनके बार बार प्रेरणा करने और सहायता प्रदान करने से मैं इस पुस्तक को लिखने में समर्थ हुआ हूँ।

मैंने यह साहस केवल हिन्दी में इस विषय की पुस्तकों का सर्वथा अभाव देखकर किया है, और वह भी इसलिये कि हिन्दी के विद्वान लेखकों का इस ओर ध्यान आकर्षित हो और इस महत्त्व-पूर्ण और सर्व साधारण के जानने योग्य अत्यन्त आवश्यक विषय पर सुन्दर-सुन्दर उपयोगी पुस्तकें लिखी जायें।

मेरा यह प्रथम प्रयास है इसलिये इस पुस्तक में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक है, आशा है उनके लिये पाठक गण मुझे क्षमा करेंगे। जो विद्वान पाठक इसकी त्रुटियों से मुझे सूचित करने की कृपा करेंगे उनका मैं बहुत ही अनुगृहीत होऊँगा।

मैंने इस पुस्तक के लिखने में जिन जिन पुस्तकों, सरकारी रिपोर्टों और पत्रों की सहायता ली है उनकी सूची अन्त में दी गई है। अस्तु मैं उन सब के लेखकों, सम्पादकों और प्रकाशकों का बहुत ही उपकृत हूँ, लेकिन श्री० बी० टी० ठाकुर, श्री० एम०

एल० टेनन, श्री० लक्ष्मी चन्द्र जैन, सर्व भारतीय और प्रान्तीय बैंकिङ्ग इंक्वाईरी कमेटियों के सदस्यों और इण्डियन फाइनेन्स तथा इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑव् बैङ्कर्स के जरनल के सम्पादकों और लेखकों का मैं विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ, क्योंकि मैंने सबसे अधिक सहायता इन महानुभावों की पुस्तकों, रिपोर्टों और पत्र-पत्रिकाओं के लेखों से ली है। ये समस्त पुस्तकें मुझे सहकारी विभाग, कोटा से प्राप्त हुई हैं इसलिये मैं इस विभाग के माननीय अधिकारियों का भी बहुत कृतज्ञ हूँ।

इनके अतिरिक्त मैं भारतीय लेजिस्लेटिव एसेम्बली के माननीय प्रेसीडेण्ट, भावनगर राज्य के श्री दीवान साहब और कनाडा के जनाब डिप्टी फाईनेन्स मिनिस्टर साहब का भी बड़ा आभारी हूँ। इन महानुभावों ने मुझे, साधारण सी प्रार्थना पर सरकारी बिल और रिपोर्टें प्रदान करने की अपरमित कृपा की है। जिससे मैं इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बना सका हूँ।

श्री राय साहब लाला रामदयाल जी अगरवाला ने इस पुस्तक का प्रकाशन भार स्वीकार करके मेरे बोझ को हलका किया है इसलिये मैं आपका भी बहुत ही अनुगृहीत हूँ।

अंत में, मैं अपने उन तमाम मित्रों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझे इस पुस्तक के लिखने और प्रूफ़ देखने आदि में बहुत सहायता दी है।

यदि मेरे इस छोटे से और नवीन प्रयत्न को हिन्दी भाषा-भाषियों ने अपनाने की कृपा की तो मैं शीघ्र ही इस प्रकार की दूसरी भेंट लेकर उपस्थित होऊँगा।

रामगञ्ज मंडी (कोटा राज्य)
ता० २९ जून सन् १९३४ ई०

विनीत,
द्वारका लाल गुप्त

---*---

*

भूमिका

हिन्दी में अर्थशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों की बहुत कमी है। इस विषय के कुछ अंग तो ऐसे हैं जिन पर एक भी उत्तम पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है।

वर्तमान काल में बैंक आर्थिक उन्नति का प्रधान साधन है। इसलिये बैंक सम्बन्धी कार्यों का विवेचन अर्थशास्त्र का प्रधान अंग माना जाता है। यद्यपि भारतीय बैंकों के सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप से विवेचन हिन्दी की अर्थशास्त्र सम्बन्धी कुछ पुस्तकों में थोड़ा-बहुत दिया हुआ है, इस विषय पर हिन्दी में कोई स्वतन्त्र पुस्तक मेरे देखने में अभी तक नहीं आई। अंग्रेज़ी में इस विषय पर सैकड़ों उत्तम पुस्तकें हैं और भारतीय बैंकों के सम्बन्ध में भी पुस्तकें अब निकलने लगी हैं। हिंदी में इस विषय की उत्तम पुस्तक का अभाव खटकता था। हर्ष की बात है कि हिंदी के होनहार लेखक श्रीमान् द्वारकालाल जी गुप्त ने इसी कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया है।

मैंने इस पुस्तक की पांडुलिपि आदि से अन्त तक पढ़ी और मुझे वह बहुत पसंद आई। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है और उसमें भारतीय बैंक सम्बन्धी प्रायः सब आवश्यक बातों का समावेश कर दिया गया है। पुस्तक पढ़ने से मालूम

होता है कि श्रीमान् गुप्त जी को बैंक सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त है और उन्होंने अङ्गरेज़ी के बैंक सम्बन्धी पुराने और नवीन साहित्य का विद्वतापूर्वक उपयोग करने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

हिंदी विश्वविद्यालय की परीक्षा के लिये यह ग्रंथ विशेषरूप से उपयोगी होगा। अङ्गरेज़ी विश्वविद्यालयों के बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों को इससे बहुत लाभ होगा। आशा है, हिंदी संसार इस उत्तम पुस्तक का उचित आदर कर लेखक को अर्थशास्त्र सम्बन्धी अन्य उत्तम पुस्तक लिखने के लिये उत्साहित करेगा।

दयाशङ्कर दुबे

दारागंज, प्रयाग
विजया दशमी, १९८९
९ अक्टूबर, १९३२

अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय,
सभापति,
भारतवर्षीय हिंदी अर्थशास्त्र परिषद्

---

*

सहायक पुस्तकों और पत्रों की सूचि

पुस्तकें

(१) Organization of Indian Banking by B. T. Thakur.

(२) Indigenous Banking in India by L. C. Jain.

(३) Banking Law and Practice in India by M. L. Tannan,

(४) Regulation of Banks in India by M. L. Tannan.

(५) Bank organisation, Management and accounts by J. F. Davis.

(६) Banking and currency by Sykes,

(७) Theory and practice of Banking by macleod.

(८) Rupee Problem by Dr. Ambedkar.

(९) Foreign Exchange in India by N. S. Aiyar.

(१०) Banking by Dr. Walter leaf.

(११) Sixty years of Indian Finance by K. T. Shah.

(१२) Indian economics by Jathar and Beri.

(१३) Law and Practice of Banking by Davar.

(१४) Co-operative movement in India by Eleanor M. Hough.

(१५) Co-operation in India and abroad by S. S. Talmaki.

(१६) Co-operation in India Edited by H. L. Kaji

(१७) ऋगवेद

(१८) मनुस्मृति

(१९) याज्ञवल्कस्मृति

(२०) महाभारत सभापर्व

(२१) कौटिल्य अर्थशास्त्र

ये पुस्तकें मेरे पास से काम निबटते ही चली गई इसलिये इनके भाष्यकारों और टीकाकारों के नाम देने में असमर्थ हूँ। ले०—

(२२) अष्टादश स्मृति ।

(२३) विदेशी-विनिमय—लेखक श्री पं० दयाशंकर जी दुबे ।

सरकारी रिपोर्टें

(२४) Royal Commission on Agriculture in India 1926.

(२५) Central Banking Enquiry Committee (1931) Para I and II (Minority report by Manu Subedar).

(२६) Reports of Provincial Banking Enquiry committees.

(२७) Indian Insurance year book 1931.

(२८) Statistical tables relating to Banks in india 1928—30.

(२९) Report of the Khedut Debt inquiry Committee, Bhavnagar State 1931,

(३०) Reserve Bank of India Bill 1933.

पत्र पत्रिकाएँ

(३१) Indian Finance Calcutta.

(३२) The Journal of the Indian Institute of Bankers, Bombay.

(३३) Times of India, Bombay.

(३४) Bombay Chronicle, Bombay.

(३५) Hindustan Times, Delhi.

(३६) 'स्वार्थ' काशी के पुराने अङ्क।

———

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

छठवाँ अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

———

भारतीय बैङ्किङ्ग

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

बैंकिंग प्रथा का श्रीगणेश—प्रत्येक देश की आर्थिक उन्नति उसकी उत्पादन-शक्ति पर निर्भर होती है, और उत्पादन-शक्ति, निर्भर होती है उत्पादन के साधन, भूमि, मज़दूरी और पूँजी के संगठन की श्रेष्ठता पर। इन तीनों साधनों में पूँजी एक साधन है, जिसके बिना शेष दोनों साधन निष्फल हो जाते हैं। जिस देश में पूँजी की प्रचुरता होती है, वही अपने उद्योग-धंधों की उन्नति करके अपनी समृद्धि बढ़ा सकता है और जिसमें पूँजी की कमी होती है, उसमें भूमि की उत्तमता, सब प्रकार के खनिज पदार्थों का बाहुल्य और संसार के श्रेष्ठ कारीगर होते हुए भी बेकार हैं। पूँजी की प्रचुरता करके उत्पादन के शेष साधनों को गति देना ही बैंकों का प्रधान उद्देश्य है और इसके सुसंगठन पर ही प्रत्येक देश और जाति की आर्थिक, व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नति निर्भर है।

मानव-समाज के आरंभिक काल में जब सिक्कों का चलन नहीं था, लोगों के पास अपनी पैदा की हुई सामग्री को तुरन्त उपयोग में लाने का कोई साधन नहीं था और हर एक परिवार अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुयें रखता था। उस समय जिन व्यक्तियों को किसी वस्तु की आवश्यकता होती थी, वह इस शर्त पर उधार दे दी जाया करती थी कि उसी या दूसरी क़िस्म की उसी क़ीमत के बराबर चीज़ थोड़े समय बाद वापिस कर दी जावेगी, उदाहरणार्थ जो व्यक्ति रूई पैदा करता था, कुछ संख्या में कतइयों और जुलाहों को उधार दे दिया करता था और सूत या कपड़े के रूप में वापिस ले लिया करता था। यह लेन-देन पहले सीधा लेने और देनेवाले के बीच में होता था। तत्पश्चात् समाज ने उन्नति की, पहली सीढ़ी से आगे क़दम बढ़ाया, तो वस्तुओं के संग्रह-कर्त्ताओं के लिये, उधार लेनेवाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों का प्राप्त करना सुविधा-रहित और कष्टप्रद हो गया; तब लेने और देनेवालों के बीच एक विशेष धंधा करनेवालों की सृष्टि हुई। यह लोग आवश्यकताओं से अधिक सामग्री लोगों से लेकर उन व्यक्तियों को, जिनको उनकी आवश्यकता होती थी, उधार देने का धंधा करने लगे। यही बीच के आढ़तिया आजकल के हमारे बैंकर हैं, जिनको बनिये, महाजन, चेट्टी, साहूकार, बोहरा, इत्यादि कहा जाता है।

बैंक शब्द की उत्पत्ति—इस विषय के कई विद्वानों का मत है कि बैंक (Bank) शब्द इटली के बैङ्को (Banco),

बैंकूस (Bancus) या बैङ्क (Banque) शब्दों से बना है; क्योंकि इन शब्दों का अर्थ है बेञ्च, टेबल या काउण्टर और इन पर सर्राफ़ लोग (Money Changers या Money dealers) भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के सिक्के विनिमय करने के वास्ते फैलाया करते थे। मिस्टर गिलबर्ट ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है कि लोम्बार्डी में यहूदी (Jews) बाज़ार में रुपये तथा हुण्डियों का विनिमय करने के लिये बेञ्चें रखते थे। जब एक सर्राफ़ (Banker) दिवाला निकाल देता था तो उसकी बेंच सर्व-साधारण द्वारा बाज़ार में से हटा दी जाती थी। इसी कारण हमने बैङ्करप्ट (Bankrupt) या दिवालिया शब्द अपना रक्खा है, किन्तु मिस्टर हेनरी डिनिग मेकलायड ने बैङ्क शब्द की उक्त उत्पत्ति पर आपत्ति प्रगट करते हुए यह बतलाया है कि इटली के सर्राफ़ कभी भी बैञ्चरी (Banchieri) नहीं कहलाये। कितने ही दूसरे विद्वानों का मत है कि बैङ्क जर्मन शब्द (Banck) का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ ज्वाइण्ट स्टाक फ़ंड है और इटली का शब्द बैङ्को भी जर्मनी के उक्त शब्द से बना है, जिसका सबसे पहले ब्रेसिया (Breseia) नामक क़स्बे में दूकान के अर्थ में उपयोग किया गया है।

बैंकर की व्याख्या—इस विषय के विद्वानों ने बैङ्कर के भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं, अभी तक न तो किसी विद्वान् ने ही इसका निश्चित अर्थ बतलाया और न क़ानून में ही इसकी स्पष्ट और पूर्ण व्याख्या बतलाई गई। डाक्टर वाल्टर लोफ़

को, जो कि स्वयं भी एक बैंक के अनुभवी चेयरमैन हैं, बैङ्कर की आम व्याख्या करना असम्भव मालूम हुआ। उन्होंने अपनी पुस्तक में मिस्टर गिलबर्ट द्वारा हाउस आव् कामन्स में सन् १७४६ ई० में दिये गये एक व्याख्यान से उद्धृत की हुई व्याख्या दी है, वह इस प्रकार है—

"रिवाज के अनुसार हम बैंकर उस व्यक्ति को पुकारते हैं, जो गुमाश्तों, काउण्टर्स और बहीखातों के साथ व्यवस्था-पूर्वक एक दूकान खोलकर बैठता है और दूसरे आदमियों का रुपया सुरक्षित रखने के लिये जमा करता है और माँगने पर वापस करता है।" गिल्बर्ट स्वयं बैङ्कर का अर्थ यह करते हैं—

"बैङ्कर एक व्यापारी है, जो पूँजी और रुपये का लेन-देन करता है, वह क़र्ज़ लेने और देनेवालों के बीच में मध्यस्थ है, क्योंकि वह एक पार्टी से क़र्ज़ लेता है और दूसरी को देता है और उसके जमा रखने और उधार देने की दरों में जो अन्तर होता है, वही उसकी कमाई है।" क़ानून में इसकी एक व्याख्या फ़ाइनेन्स ऐक्ट सन् १६१७ ई० में मिलती है—"बैङ्क एक व्यक्ति या संस्था है, जो हक़ीकत में (Bonafide) बैङ्किङ्ग व्यवसाय करता है।" इसके अतिरिक्त क़ानून हुंडियात (Negotiable Instrument act 1881) की दफ़ा ३ में बैङ्कर शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—

"बैङ्कर्स में वे व्यक्ति, संस्थाएँ और कम्पनीज़ शामिल हैं, जो बतौर बैङ्कर्स के काम करते हैं।" किन्तु बैङ्किङ्ग धंधा क्या

है, यह स्पष्ट रूप से नहीं बतलाया गया। अब तक जो भी बैङ्कर की व्याख्यायें ऊपर बताई गई हैं, वे लगभग सभी अपूर्ण मालूम होती हैं, क्योंकि बैङ्कों के काम केवल जमा रखने और जमा-शुदा अमानतों को माँगने पर वापस देने तथा उधार देने तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि और भी ऐसे अनेक काम हैं, जो बैङ्क करते हैं, जैसे—चेक, बिल, हुंडी द्वारा रुपया इकट्ठा करना, एक जगह से दूसरी जगह रक़म का भुगतान करना तथा विदेशी व्यापार के लहने पावने को चुकाना और वसूल करना इत्यादि। मिस्टर एम० एल० टैनन ने अपनी पुस्तक "बैङ्किङ्ग लॉ ऐण्ड प्रैक्टिस इन इण्डिया" में इस विषय के कई विद्वानों के कहे हुए बैंकर के अर्थ उद्धृत किये हैं; किन्तु इस शब्द का जो अर्थ भारतीय तथा अंग्रेज़ी विद्वानों ने किया है, उन सबकी अपेक्षा अमेरिका के संयुक्त राज्य के क़ानून-रचयिताओं ने जो निम्न-लिखित व्याख्या की है, वह अधिक सफल मानी जाती है :—

"बैंक में हम प्रत्येक ऐसे व्यक्ति अथवा दूकान अथवा कम्पनी को शामिल करते हैं, जिनका कारोबार किसी निश्चित स्थान पर हो, जहाँ सदैव वापस देने के लिये अमानतें, रुपयों का संग्रह या सिक्के जमा रक्खे (क़र्ज़ लिये) जाते हों और जिनका भुगतान हुंडी, चेक या हिदायत (Order) द्वारा किया जाता हो और जहाँ पर हिस्से (Stocks) बोण्ड, सोने, चाँदी के डलों, हुंडियों और प्रोमेसरी नोटों पर उधार दिया जाता हो या प्रोमेसरी नोट, डिस्काउण्ट या बेचने के लिये लिये जाते हों"।

इससे भी अधिक स्पष्ट बैंकिंग धन्धे की व्याख्या ब्रिटिश सरकार द्वारा सन् १९१८ ई० में शत्रु देश के बैंकिंग धन्धे को रोकने के लिये बनाये हुए नियमों में की गई है,* यथा—

"चालू खातों में या अमानत के तौर पर रुपया जमा करना; विनिमय-बिल स्वीकार करना, विनिमय-बिल, प्रोमेसरी नोट तथा ड्राफ़्ट ख़रीदना, बेचना, संग्रह करना और उनका लेन-देन करना; सूद तथा मुनाफ़ों के स्वीकार पत्र बेचना या इनकी रक़में संग्रह करना; विदेशी तारकी अथवा दूसरे प्रकार की हुंडियाँ ख़रीदना और बेचना; जारी-शुदा क़र्ज़े, शेयर या सिक्यूरिटीज़ को मेम्बर होकर लेने (Subscriptions) ख़रीदने या अण्डरराइट करने के लिये जारी करना; व्यापार या औद्योगिक काम के लिये क़र्ज़ देना या क़र्ज़ दिये जाने का प्रबन्ध करना या साख-पत्र (Letter of credit) और चलते-फिरते नोट (Circular Note) देना या जारी करना।"

भारतीय बैंकर की व्याख्या—पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बैङ्कर अथवा बैङ्किङ्ग व्यवसाय की जो व्याख्या की गई है, वह भारतीय देशी बैंकर के लिये पूर्ण रूप से घटित नहीं होती है, क्योंकि सभी देशी बैङ्कर न तो अमानतें जमा रखते हैं, न सभी हुंडियों का कारोबार करते हैं और न सभी उधार ही देते हैं। कुछ जमा रखते हैं, कुछ उधार देते हैं, कुछ हुंडियों का कारो-

* Banking Enquiry Committees (India) Minority Report P. 375.

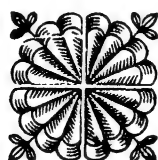
बार करते हैं; बहुत से जमा नहीं रखते और केवल अपनी ही सम्पत्ति उधार देते हैं; बहुत से ऐसे हैं, जो जमा भी नहीं रखते और उधार भी नहीं देते और केवल हुंडियों का ही कारोबार करते हैं तथा इसके साथ दूसरा भी धन्धा करते हैं। इस तरह केवल क़र्ज़ देनेवाले (Money Lender) और बैंकर मिश्रित हो रहे हैं और लगभग सभी बैंकर समझ लिये जाते हैं। हालाँकि मनीलेण्डर बैंकर नहीं कहे जा सकते; परन्तु इसका अन्तर करना बड़ा कठिन है। क़ानून में भी इनकी व्याख्या नहीं पाई जाती और न मर्दुमशुमारी की किसी रिपोर्ट में ही इनका पृथक्करण किया गया है। अभी हाल में पंजाब प्रान्तीय बैंकिंग एन्क्वायरी कमेटी (१९३०) ने अपनी रिपोर्ट के पैरा नं० १९६ में मनीलेण्डर और बैङ्कर का अन्तर बताते हुए लिखा है —

"देशी बैंकर, बैंकिंग और व्यापार सम्मिलित रूप से करता है; किन्तु उसका प्रधान धन्धा बैंकिंग ही होता है। यह विशेष अन्तर है। इसके अतिरिक्त दूसरे अन्तर भी इसी प्रकार के हैं, जैसे—देशी बैंकर केवल खुल्ली उधार देने की अपेक्षा व्यापार और उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता अधिक रूप से देता है और मनीलेण्डर व्यापार की अपेक्षा खुल्ली उधार ज़्यादा देता है। बैंकर और मनीलेण्डर दोनों कुछ तो ज़मानत पर और कुछ बिना ज़मानत पर उधार देते हैं। इन दोनों में, बैंकर जिन-जिन कामों के लिये उधार चाहा जाता है, उनके लिये विशेष सावधान रहता है, किन्तु मनीलेण्डर इसकी कम परवाह

करता है। पिछले दो कारणों से और भी अन्तर यह मालूम होते हैं कि बैंकर के अधिकांश खातेदार वादे पर रुपया चुकाते हैं। मनीलेण्डर के अधिकांश खातेदारों से अधिक तक़ाज़े और दबाव से रुपया वसूल होता है; इसीलिये बैंकर ६ से ९ प्रतिशत सूद पर उधार देता है। ऐसे अवसर बहुत कम होते हैं, जब १२ प्रतिशत से अधिक लेता है; किन्तु मनीलेण्डर आम तौर पर ९ से १२ प्रतिशत ब्याज पर उधार देता है और १८ प्रतिशत तक पहुँच जाता है।"

इन सब कठिनाइयों पर प्रकाश डालते हुए बैङ्कर और मनीलेण्डर का अन्तर बतलाते हुए जो व्याख्या डाक्टर जैन ने की है, वह युक्ति-युक्त है —

"बैङ्कर का यह अर्थ लेना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति या प्राइवेट फ़र्म जो उधार देती हो या जमा रखती हो या हुंडियों का कारबार करती हो या दोनों काम करती हो, जिसमें से प्रत्येक काम बैंकिंग की सीमा में आता हो" "मनीलेंडर शब्द का उपयोग उन व्यक्तियों या फ़र्मों के लिये किया जावेगा, जो उधार देते हों, किन्तु आम तौर पर जमा न रखते हों और न हुंडियों का कारोबार करते हों"।



दूसरा अध्याय

प्राचीन भारत में बैङ्किङ्ग की प्रथा

वैदिक काल—यदि कोई भारतीय बैङ्किङ्ग का प्राचीन इतिहास अध्ययन करने में थोड़ा भी समय लगावे तो उसे यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारत में यह धन्धा अनादि काल से अर्थात् मानव समाज को संस्कृति के विकास के आरम्भिक काल से प्रचलित है। इसकी प्राचीनता की दौड़ में संसार का कोई भी देश भारत की समानता नहीं कर सकता। इस देश में यह धन्धा वैदिक काल में अर्थात् ४०००—२००० बी० सी० के बीच में आम तौर से होता था। इसका पूरा दिग्दर्शन इस विषय के विशेषज्ञ श्री० डा० लक्ष्मीचन्द जी जैन ने अपनी पुस्तक (Indigenous Banking in India) में कराया है। आपने कई प्रमाण देते हुए लिखा है कि ऋग्वेद और उसके बाद ऋण शब्द कई दफ़ा आया है। जुवा खेलने के लिये ऋण लेने के विषय में बहुधा हवाले दिये गये हैं। * ऋण का चुकाना "ऋण सामनो" कहलाता था।

---

* यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां—
—गत्नु मुपलिप्स मानाः। उग्रंपश्ये उग्र जितौ—
तद्घाप्सर सावनु दत्ता मृणं नः ॥ छठा काण्ड सूत्र ११८

अर्थात् धन के लोभ से जब जब हम जुवा आदि कामों में हाथ डालें तब तब प्रगट की हुई व्यवस्थापक संस्थायें हमें पकड़ लें और दण्ड-पूर्वक हमारा ऋण हमसे चुका पावें।

चुकाने की नीयत के बिना लिये जानेवाले क़र्ज़ों के कई भेद बतलाये हैं। वेदों में ब्याज का लेना-देना भी पाया जाता है; क्योंकि सत्यपथ ब्राह्मण में, निरुक्त तथा सूत्रों में सूद लेनेवाले को "कुसीदिन" कहा है। इन उदाहरणों से मालूम होता है कि वैदिक काल में यह धन्धा आम तौर पर होता रहा है। सम्भव है, वैदिक काल के लिये कोई यह कहे कि वह समय भारतीय सभ्यता का उत्कृष्ट और देदीप्यमान युग था, जिसने संसार को अपने ज्ञान रूपी प्रकाश से चकाचौंध कर दिया था। उसी की एक झलक बैङ्किङ्ग व्यवसाय भी है। केवल ऐसा ही नहीं है; बल्कि इस देश का सारा इतिहास इसका साक्षी है कि भारत में बैङ्किङ्ग व्यवसाय वैदिक काल से लेकर अब तक यहाँ के सेठ-साहूकारों तथा सर्राफ़ों द्वारा समान रूप से संचालित होता चला आ रहा है।

सूत्र-काल—वेदों के बाद दूसरी से सातवीं सदी बी० सी० यानी सूत्र काल में भी व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी पर किसी वस्तु के रहन रखने तथा व्यक्तिगत ज़मानत पर ब्याज से ऋण लेने-देने के नियम पाये जाते हैं यथा—

(१) द्विकं त्रिकं चतुष्कं च शतं स्मृतम्।
मासस्य वृद्धिं गृहीतया द्विवर्णानामनुपूर्वशः ॥ ५४ ॥
वशिष्ठ-स्मृति, अध्याय २

अर्थ—सोपण का ब्याज प्रति महीने में ब्राह्मण से २ पण, क्षत्रिय

से ३ पण, वैश्य से ४ पण और शूद्र से पाँच पण लेना चाहिये और भी—

(२) कुसीद वृद्धिर्धर्म्मा विंशतिः पंचमासि ॥

गोतम-स्मृति, अध्याय १२

(३) ऋणि कस्तत्प्रति भुवे द्विगुणं प्रति दापयेत्।

अधिक्रियत इत्याधि स विज्ञेपो द्विलक्षणः ॥ ५२ ॥

नारद-स्मृति १ विवाद पद, अध्याय ४

(४) कृत कालोपनेयश्च यावद्देयो व्यतस्तथा।

स पुनर्द्विविधः प्रोक्तो गोप्यो भोग्यस्तथैवच ॥ ५३ ॥

नारद-स्मृति १ विवाद-पद, अध्याय ४

अर्थ—जो वस्तु किसी के अधिकार में कर दी जाती है, उसको आधिबन्धक (Pledge) कहते हैं। वह दो प्रकार की होती है। एक छुड़ाने का समय निश्चय करके रक्खी हुई, दूसरी बिना समय निश्चय किये रक्खी हुई। फिर ये भी दो प्रकार की होती है। एक रक्षा करने के लिये और दूसरी महाजन के भोगने के लिये। रहन की लगभग यही व्याख्या याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय २ और मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक ४५ में की गई है।

स्मृति-काल—इसके अतिरिक्त संसार को क़ानून का ज्ञान प्रदान करनेवाले भगवान मनु ने ८ वें अध्याय में, याज्ञवल्क्य जी महाराज ने याज्ञ-स्मृति के दूसरे अध्याय में, नारद जी महाराज तथा दूसरे ऋषि-महर्षियों ने अपनी-अपनी स्मृतियों

में व्यक्ति-गत हैसियत पर तथा वस्तुओं के रहन रखने पर या किसी दूसरे व्यक्ति की ज़मानत पर ऋण देने के नियम विस्तृत रूप से बतलाये हैं। उदाहरणार्थ कुछ प्रमाण यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

ऋण (Loan)

कुसीद वृद्धि द्वै गुण्यं नात्येति सकृदा हृता

(मनुस्मृति अध्याय ८, श्लोक १५१)

अर्थ—धन का सब ब्याज एक ही बार लेने से मूलधन के दूने से अधिक नहीं मिल सकता है ।

धरोहर (Deposits)

कुलजेवृत्त सम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।

यहा पक्षे धनि न्याये निक्षेपं निक्षिपेद्‌वदः ॥

(मनुस्मृति, अध्याय ८)

अर्थ—बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि अच्छे कुल में उत्पन्न, सदाचारवाले, धर्म-निष्ठ, सत्यवादी, अधिक परिवार-वाले, धनवान् , कोमल स्वभाववाले के पास धरोहर रक्खे—

महाभारत काल—महाभारत के ज़माने में भी सूद से रुपया लेने-देने का नियम था, जैसा कि नारद जी के युधिष्ठिर से किये हुए प्रश्नों से प्रगट होता है—

कच्चिन्न भक्तं बीजम् च कर्षं कस्याऽवसीदति ।

प्रत्येक चशतं वृद्धया ददास्यृणमनुग्रहम् ॥

(सभापर्व पाँचवाँ अध्याय श्लोक ८१)

अर्थ—हर सैकड़े में चौथा भाग बढ़ती लेकर कृपाचित्त से उनको ऋण तो देते हो? तुम्हारी कृषि, वाणिज्य, पशु-पालन और ऋण-दान यह चार प्रकार की वार्ता तो सुचरित्र जनों से भले प्रकार की जाती है?

शुक्रनीति में लिखा है कि सूद, कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा, इत्यादि अर्थोपार्जन के मुख्य साधन विज्ञान-वार्ता (अर्थ-शास्त्र) के विषय थे। (कुसीद कृषि वाणिज्य गोरक्षा वार्तयोच्यते। १५६।) कौटिल्य अर्थशास्त्र में लिखा है कि सौ पण पर सवापण ब्याज ही न्याय-युक्त है, व्यापारियों से पाँच पण, जंगल में रहनेवालों से दस पण तथा समुद्र के व्यापारियों से बीस पण तक ब्याज लिया जा सकता है। इससे अधिक जो ब्याज ले या दे उसको साहस-दण्ड और साक्षियों को आधा दण्ड दिया जावे।

यह तो हुआ भारतीय शास्त्रों के प्रमाणों का नमूना। अब हम एक लब्ध-प्रतिष्ठ विदेशी यात्री जे० बी० टेवेरनियर, जो सत्रहवीं सदी के मध्य में फ्रांस से भारत में यात्रा करने को आया था का लेख उद्धृत करते हैं। उसने भारतीय बैङ्किङ्ग के सम्बन्ध में लिखा है—

"भारत में उस गाँव को बहुत ही छोटा समझना चाहिये। जहाँ सर्राफ़ (Money changers) न हों, जो कि एक बैङ्कर के तौर पर काम करता है और एक जगह से दूसरी जगह रुपये का भुगतान करता है तथा विनिमय पत्र जारी करता है......

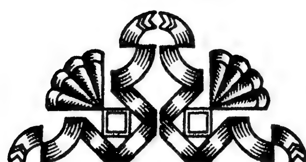
तमाम यहूदी, जिन्होंने अपने आसपास के राष्ट्रों में रुपया तथा विनिमय के सम्बन्ध में बहुत ही होशियारी का स्थान प्राप्त कर रक्खा है, वे भारतीय सर्राफ़ों के उम्मेदवार भी मुश्किल से हो सकते हैं।" आगे उसने यह भी बतलाया है कि "१७ वीं सदी में यह सर्राफ़ लोग विदेशी व्यापार को कुछ नक़दी से और कुछ सूरत पर दो महीने की मुद्दती हुंडियाँ करके आर्थिक सहायता देते थे।"

मुग़ल साम्राज्य में भी देशी बैङ्कर्स द्वारा देश के व्यापार को पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलती थी। इस समय के बैङ्कर धन-कुबेर थे। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि औरंगज़ेब ने सेठ माणिकचन्द को सेठ की उपाधि से सम्मानित किया था और उसके भतीजे फ़तेचन्द को फ़र्रुखशियर ने जगत्-सेठ की उपाधि से विभूषित किया था।

अब से ७० वर्ष पूर्व मिस्टर कूक (Cooke) ने अपनी पुस्तक Rise progress and present condition of Banking in India में लिखा है, "अज्ञात काल से भारतीय समाज के बैङ्कर एक प्रधान स्थान रखते आये हैं। साम्राज्य अपना बैङ्कर रखता था, सूबा अपना बैङ्कर रखता था, ज़िला अपना बैङ्कर रखता था और गाँव अपना बैङ्कर रखता था। हर एक बैङ्कर अपने-अपने क्षेत्र में गहरा प्रभाव रखता था।........हिन्दुओं के परम्परा गत रिवाज और मुसलमानों के ऐतिहासिक साहित्य से प्रगट होता है कि प्रतिष्ठित बैङ्कर को बड़ी इज़्ज़त और राज्य-

शासन के अधिकार दिये जाते थे। कोई शाही दरीख़ाना ऐसा न होता था, जिसमें बैङ्कर नहीं होते थे।"

उपरोक्त विवरण से यह तो भली भाँति प्रमाणित हो गया कि भारत में बैङ्किङ्ग की प्रथा वैदिक काल से लगातार अच्छी अवस्था में चली आ रही है और मुग़ल साम्राज्य तक इस पर पूर्ण रूप से भारतीयों ही का अधिकार था।



तीसरा अध्याय

भारत में आधुनिक बैङ्किङ्ग

आरम्भ और विकास

आरम्भ—"मुग़ल साम्राज्य के अन्त तक उस समय की तुलना में भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से एक उन्नतिशील देश था। इसका व्यापार विस्तृत था। इसकी बैङ्किङ्ग संस्थायें अच्छी उन्नतावस्था में थीं। व्यावसायिक क्षेत्र में इसकी साख प्रतिष्ठा-पूर्ण स्थान रखती थी"*। मुग़ल साम्राज्य की इतिश्री हो जाने पर यह अभागा देश पश्चिमी वणिकों के हाथ में पड़ा। इनके पधारते ही—अंग्रेज़ों का सूत्रपात होते ही यहाँ की स्थिति में भयङ्कर फेर-फार शुरू हो गया। लार्ड क्लाइव व हेस्टिंग्ज़ की हुकूमत, पोलिसी और भारतवासियों के सीधेपन से इस देश के व्यापार की जड़ में कुठाराघात होने लगा। जैसे-जैसे अंग्रेज़ों का राज्य भारत में

---

*"At the close of the Moghul Empire, India judged by the standards of the time, was economically an advanced country. Her trade was large; her banking institutions were well developed and credit played an appreciable part in her transactions."—"The problem of the rupee" by Dr. Ambedkar Page 2.

फैलता गया और कला-कौशल, उद्योग-धन्धे खिसक-खिसक कर इनके हाथों में पहुँचने लगे, वैसे-वैसे हमारे देशी साहूकार निर्बल होते गये और विदेशी कोठियों (Agency Houses) की स्थापना के साथ-साथ सरकारी और व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विदेशी बैङ्किंग-संस्थाओं का जन्म होना आरम्भ हो गया और शनैः शनैः भारतवर्ष का बैङ्किंग व्यवसाय भारतीय साहूकारों के हाथों में से निकलकर विदेशी बैङ्कों में पहुँचता गया* ।

जोइन्ट-स्टॉट बैंक

असीमित ज़िम्मेदारी पर—सन् १७७०–१८००–भारत में पाश्चात्य प्रणाली पर बैङ्किंग का आरम्भ करनेवाली कलकत्ते की प्रतिष्ठित विदेशी कोठियाँ मेसर्स एलेकज़ेंडर ऐण्ड कम्पनी फ़रग्यूशन ऐण्ड कम्पनी आदि थीं। मेसर्स एलेक्ज़ेण्डर ऐंड कम्पनी को हिन्दुस्तान बैङ्क स्थापित करने का श्रेय प्राप्त है। यह बैंक अंग्रेज़ों के संरक्षण में १७७० ई० में क़ायम हुआ था, किन्तु यह अपनी संस्थापक एलेक्ज़ेण्डर ऐण्ड कम्पनी के साथ-साथ सन् १८३२ ई० में फ़ेल

*With the decline of the Indigenous bankers and the gradual progress of English trade and dominion in India, the need was felt by the East India Co. for the establishment of banks which would meet both administrative requirements and the demands of trade. The result was the creation of government treasuries and the foundation of early Banking institutions on Western lines and these have operated to the further disadvantage of the Indigenous Banker. I. B. I. by Jain 23.

हो गया। उस समय की तमाम संस्थाओं के समान यह बैंक भी नोट जारी करता था, जो हालाँकि चालू सिक्के के तौर पर रायज़ नहीं थे, किन्तु फिर भी विस्तृत रूप से व्यवहार में आते थे। इन जारी शुदा नोटों की संख्या ५ लाख तक रही, जो कि उस समय की विशेषता की द्योतक है। तत्पश्चात् लगभग १८८५ के बङ्गाल-बैंक और जनरल-बैंक आव् इण्डिया की स्थापना हुई, किन्तु थोड़ा बहुत दिलचस्प जीवन बिताने के बाद पिछला बैंक तो १७९१ में स्वयं टूट गया और इसके थोड़े समय बाद पहले बैंक ने भी भुगतान करना बन्द कर दिया।

सन् १८०१—३०—सन् १८०१ में एकाउण्टेण्ट जनरल मिस्टर हेनरी ज़ी ठक्कर ने भारत सरकार का, सरकारी और व्यापारिक हित की दृष्टि से एक बैंक की आवश्यकता पर, ध्यान आकर्षित करते हुए बडा ज़ोर दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप १८०६ ई० में बङ्गाल बैंक की स्थापना हुई। इसका मसविदा कुछ दिन बाद यानी सन् १८०९ ई० में प्राप्त हुआ था। इस बैंक का मूलधन पाँच लाख पौंड था। इसमें से पाँचवाँ हिस्सा सरकार यानी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का था। उस वक़्त बैंक के कारोबार में सुप्रबन्ध, निगरानी और योग्य सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से सरकार का शेयर-होल्डर के तौर पर बैंक के मूलधन में भाग लेना आवश्यक समझा गया था। गवर्नमेण्ट को इस की प्रबन्धक कमेटी में तीन व्यवस्थापक चुनने का अधिकार था और बैंक का सेक्रेटरी आम तौर पर सिविल सर्विस

का मेम्बर होता था। सन् १८१३ ई० में भारत में अंग्रेज़ों के बसने की कुछ रुकावटों को दूर करने के लिये एक क़ानून पास किया गया था, जिससे बैंकिंग को भारी उत्तेजना मिली, कुछ बैंकों की स्थापना हुई; किन्तु उनमें से कई अधिक समय तक क़ायम नहीं रह सके। इस प्रथम प्रयास के असफल होने के लिये अधिकांश में अंगरेज़ लोग ही ज़िम्मेदार थे। मिस्टर ठाकुर का कहना है कि अधिकांश बैंकों के दिवाले न केवल कुप्रबन्ध या व्यवस्थित रूप से काम करने की क्षमता के अभाव से, बल्कि बैंक के रुपयों का अनुचित उपयोग करने से निकले थे। उस समय बैंक, बैंकिंग धन्धे के साथ-साथ व्यवसाय भी करते थे; इसलिये व्यापारिक ह्रास के साथ साथ बैंक भी बैठते चले गये।

सन् १८३१–१८७० ई०—सन् १८३३ ई० में कमर्शियल बैंक आव् कलकत्ता, मेसर्स मेकिंगटो एंड कम्पनी के साथ साथ फ़ेल हो गया और सन् १८२९ ई० में मेसर्स फ़ारमर एंड कम्पनी द्वारा खोला हुआ बैंक फ़ेल हो गया। सन् १८४० ई० में बैंक आव् बम्बई पहिली बार ५२,२५,००० के मूलधन से क़ायम हुआ था, जिसमें से ३००००० के हिस्से गवर्नमेण्ट ने ख़रीदे थे। इसके तीन वर्ष पश्चात् मद्रास बैंक ३०००००० के मूलधन से क़ायम हुआ, उसमें से ३००००० के हिस्से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ख़रीदे थे। बैंक आव् बङ्गाल की तरह सरकार का इन बैंकों से भी भीतरी सम्बन्ध था। इन बैंकों में भी सरकार को कुछ डायरेक्टर चुनने का अधिकार था और इनके सेक्रेटरी

ट्रेज़रर भी भारतीय सिविल-सर्विस के मेम्बर होते थे। इन तीनों बैंकों को सरकार से बड़ी सुविधायें प्राप्त थीं। मुख्यतः सरकारी बैंकिंग-धन्धा इन्हीं बैंकों द्वारा होता था। इसके अतिरिक्त इन बैंकों को नोट जारी करने का भी अधिकार था। इस सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध भी लगे हुए थे अर्थात् प्रत्येक बैंक के नोट निकालने की सीमा नियत थी। मद्रास बैंक को एक करोड़, बङ्गाल और बम्बई बैंक को दो-दो करोड़ के नोट निकालने का अधिकार प्राप्त था। इन बैंकों को माँगने पर अदा करनेवाली जमा पूँजी (Demand Liabilities) का ३३⅓ प्रति शत नक़दी रोशन रखना पड़ता था। बाद में यह घटाकर २५ प्रतिशत कर दी गई। सन् १८६२ ई० में इन बैंकों से नोट जारी करने का अधिकार वापिस ले लिया गया और पेपर करेन्सी ऐक्ट सन् १८६२ ई० लागू हो गया। इस विशेष सुविधा के हटा देने से होनेवाली हानि की पूर्ति के लिये सरकार ने अपने सारे फण्ड्स का रुपया इन बैंकों में रखने का वादा किया। बैंक आव् बम्बई का मूलधन सन् १८६४ ई० में बढ़कर २·०९ करोड़ हो गया था; किन्तु रूई का भाव बढ़ जाने और अमरीका की लड़ाई में चीज़ों के भावों में अधिक मात्रा में घटाबढ़ी हो जाने से भारी नुक़सान उठाकर यह बैंक सन् १८६८ ई० में बन्द हो गया। इसने अमानतें जमा रखनेवालों को पूरा रुपया चुका दिया था, लेकिन इसके शेयर होल्डरों को सारा धन खोना पड़ा था। इतने पर भी फिर उसी वर्ष इस

बैंक ने बैंक आव् बम्बई लिमिटेड के नाम से जन्म लिया। इसका संगठन कम्पनीज़ ऐक्ट सन् १८६६ के आर्टिकिल्स आव् एसोसिएशन के अनुसार हुआ था; परन्तु सरकार ने इसके पहले फ़ेल हो जाने के कारण यह उचित समझा कि मूलधन में से अपना हिस्सा वापस ले लिया जावे और डायरेक्टर, सेक्रेटरी, ट्रेज़रर को नियुक्त करने का अधिकार भी छोड़ दिया जावे।

प्रेसीडेन्सी बैंक

बैंकों के लगातार फ़ेल होने के कारण सरकार ने इस सम्बन्ध में जाँच कराने और उचित परामर्श प्राप्त करने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया, जिसने सन् १८६९ ई० में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। तदनुसार प्रेसीडेन्सी बैंक ऐक्ट सन् १८७६ ई० पास हुआ और इसके द्वारा बम्बई, बङ्गाल, मद्रास बैंक प्रेसीडेन्सी बैंक कहलाये। इस क़ानून के आधार पर ही इन प्रेसीडेन्सी बैंकों का संचालन होने लगा। सरकार ने अपना बैंकिंग का सारा काम इनको सौंप दिया, इससे इनकी साख में वृद्धि हुई और सार्वजनिक प्रजा से भी बैंकिंग धन्धा इनको काफ़ी मात्रा में मिलने लग गया। इन बैंकों पर जो क़ानून द्वारा प्रतिबन्ध लगाये गये थे, वे हालाँकि बैंकों के प्रबन्धकों को पसन्द नहीं थे; किन्तु पब्लिक हित की दृष्टि से लाभदायक थे। इन तीनों बैंकों के शेयर-होल्डर्स में अधिक संख्या यूरोपियन पूँजीपतियों की थी, जिसका दिग्दर्शन बैंक आव् बम्बई की शेयर-होल्डर्स की सूची से भली प्रकार हो जाता है; यथा—

१७३	अंग्रेज़ भारतवासी के ख़रीदे हुए	३२६१	शेयर्स
१२	देशी क्रिश्चियन के	४६	,,
३	मुसलमानों के	५५	,,
१०६	पारसियों के	१२३३	,,
३५	हिन्दुओं के	३२७	,,
	गवर्नमेण्ट के हिस्से	३००	,,
३३२		५२२५	

काम—इन तीनों बैंकों को यथा-सम्भव नुक़सान से बचाने के लिये विनिमय का धन्धा करने की आज्ञा नहीं थी और न ये विदेशी हुँडियों की लिया-बेची ही कर सकते थे। भारत में ये अधिक से अधिक ६ मास के लिये उधार देते थे; किन्तु जायदाद ग़ैर मनक़ूला की ज़मानत पर उधार देने को, इनको पूँजी उलझ जाने की आशङ्का से, मनाही थी।

शाखायें—इन प्रेसीडेन्सी बैंकों की भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कई शाखायें थीं, जिनको संख्या इम्पीरियल बैंक के रूप में स्थापित होने के समय ५६ थीं तथा मूलधन, रिज़र्व फ़ंड आदि का ब्योरा इस प्रकार था—

			रु०	१०००) में
मूलधन	...	...	,,	५६२२४)
रिज़र्व फ़ंड	...	...	,,	४१४५४)
सरकारी जमा	...	...	,,	६८००१)
निजी जमा	...	...	,,	६५७७६६)
नक़दी रोशन	...	...	,,	१३६०२३)

सीमित-ज़िम्मेदारी के आधार पर

सन् १८६०–१८८०—सन् १८६० ई० के पहले पहले जितने भी बैंक खुले थे, उनमें से अधिकांश असीमित ज़िम्मेदारी पर खुले थे। इस वर्ष क़ानून नं० ७ के पास होने से सीमित ज़िम्मेदारी की प्रणाली सर्वप्रथम आरम्भ हुई, जिससे भारतीय ज्वाइण्ट-स्टॉक बैंकिंग को अच्छी उत्तेजना मिली।

अंग्रेज़ों द्वारा प्रयत्न—सन् १८६५ ई० में इलाहाबाद बैंक की स्थापना हुई और लगभग दस वर्ष बाद अलाइन्स बैंक आव् शिमला का जन्म हुआ, जिसने सन् १९२३ ई० में दिवाला निकाल दिया। ये दोनों बैंक भी अंग्रेज़ों के प्रयत्न के परिणाम हैं। सन् १८८० ई० के पहले-पहले भारतीय ज्वाइंट-स्टॉक बैंकिंग की तमाम हलचल अंग्रेज़ों द्वारा आरम्भ की गई थी। विदेशी विनिमय का धन्धा, विदेशी-बैंकों के हाथ में था, जिस पर अब भी उन्हीं का ठेका है।

भारतीय प्रयत्न—सन् १८८१–१९०४—सबसे पहले विशुद्ध भारतीय बैंकिंग का प्रयत्न सीमित-ज़िम्मेदारी के उसूल पर सन् १८८१ ई० में आरंभ हुआ था, जब कि अवध कमर्शियल बैंक की स्थापना हुई थी। इसके बाद सन् १८९४ ई० में लाला हर-किशनलाल, जो कि पंजाब प्रांत में भारतीय उद्योग-धंधों के अगुवा हैं, उनके भरसक प्रयत्न और भारी शक्ति ख़र्च करने पर पंजाब नेशनल बैंक की स्थापना हुई थी। यह बैंक बहुत ही सफलता-पूर्वक कार्य करता हुआ उत्तरोत्तर उन्नति करता जा रहा है।

सन् १६०१ ई० में फिर लाला हरकिशनलाल जी ने पीपल्स बैंक आव् इण्डिया चालु किया था, जो कि सन् १६१३ ई० तक बड़ी ख़ूबी से काम करता रहा; इसने पंजाब नेशनल बैंक की अपेक्षा अधिक ख्याति प्राप्त कर ली थी। इसकी सौ के लगभग शाखायें थीं और उनमें सवा करोड़ से ऊपर अमानतें जमा थीं। अचानक इसको अपने दरवाज़े बन्द करने के लिये विवश होना पड़ा था। इस बैंक के फ़ेल होने का कारण न तो बेईमानी थी और न कोई प्रबन्ध-सम्बन्धी योग्यता का अभाव था। इसका कारण विशेष कर भारतीय बैंकों के अमानतदारों की बैंकिंग के उसूलों के प्रति अनभिज्ञता थी, इसके अतिरिक्त अङ्गरेज़ी बैंकों और सरकारी अफ़सरों की जलन और प्रेसीडेन्सी बैंकों का लापरवाही और अदूरदर्शिता-पूर्वक व्यवहार था, जिन्होंने गवर्नमेंट के काग़ज़ पर भी रुपया नहीं दिया। प्रसन्नता की बात है कि रिसीवर लोगों ने बैंक के अमानतदारों को सौ फ़ीसदी चुका दिया। हाँ, शेयरहोल्डर्स को अवश्य कुछ नहीं मिला। इससे लाला हरकिशनलाल जी का मुख उज्ज्वल हो गया और लोगों को फ़ेल होने का भीतरी रहस्य मालूम हो गया। फलतः लाला साहब ने २ वर्ष बाद ही पीपल्स बैंक आव् नॉर्दर्न इण्डिया लि० के नाम से दूसरा बैंक स्थापित कर दिया, जिसने भी लगभग वही स्थान प्राप्त कर लिया था, जो पूर्व बैंक का था।*
लेकिन अब इसकी वह बात नहीं रही है।

---

* इस बैंक ने भी सन् १६३१ ई० में अपने दरवाज़े बन्द कर दिये थे लेकिन कुछ महीनों बाद ही हाईकोर्ट से स्वीकृत नवीन स्कीम के अनुसार पुनः कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

विकास—१९०५—१३—सन् १९०५ ई० में बङ्गाल-विच्छेद के समय से स्वदेशी आन्दोलन ने स्थानीय उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दिया, जिसके फलस्वरूप इस देश में बैंकों की स्थापना बड़े वेग से आरम्भ हो गई। सन् १९०६ ई० से सन् १९१३ ई० तक ८ वर्षों में पाँच लाख से ऊपर मूलधनवाले बैंकों की संख्या में इस प्रकार वृद्धि हुई थी :—

रुपये लाखों में

वर्ष	बैंकों की संख्या	मूलधन तथा रक्षित फ़ण्ड	अमानतें जमा	नक़दी	अमानतों से नकदी का प्रतिशत अनुपात
१९०६	१०	१९०	११५५	१४९	१३
१९०७	११	२९२	१४००	१९४	१४
१९०८	१४	३०९	१६२६	२४५	१५
१९०९	१५	३५४	२०४९	२७९	१४
१९१०	१६	३७६	२५६६	२८०	११
१९११	१८	४१२	२५२९	३६२	१४
१९१२	१८	४२१	२७२६	४००	१५
१९१३	१८	३६४	२२५९	४००	१८

उक्त तालिका से मालूम होता है कि पाँच लाख से ऊपरवाले बैंकों की संख्या लगभग दूनी हो गई थी। अतिरिक्त इसके दूसरे छोटे बैंकों की संख्या विशेष रूप से बढ़ी थी अर्थात् सन् १९१० ई० में कुल बैंकों की संख्या ४७६ थी। इस समय में

स्थापित होनेवाले बैंकों में प्रमुख, बैंक आव् इण्डिया, इण्डियन स्वदेशी बैंक १९०६, बंगाल नेशनल बैंक, इंडियन बैंक आव् मद्रास १९०७, बम्बई मरचेण्ट्स बैंक, क्रेडिट बैंक आव् इंडिया १९०९, कठियावाड़-अहमदाबाद बैंकिंग-कॉरपोरेशन ।१९१०, सेण्ट्रल-बैंक आव् इण्डिया १९११ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

५ वर्षों में फ़ेल होनेवाले बैंक

वर्ष	संख्या	मूलधन लाखों में	
		स्वीकृत	प्राप्त
१९१३	१२	२७४	३५
१९१४	४२	७१०	१०९
१९१५	११	५६	५
१९१६	१३	२३१	४
१९१७	९	७६	२५
जोड़	८७	१३४७	१७८

सन् १९१३–१७—सन् १९१३ ई० में बैंकों पर फिर विपत्ति आई, जिसने इनमें से बहुतों का गला घोंट दिया और भारतीय बैंकिंग को भारी धक्का पहुँचाया। उसका अनुमान ऊपर की तालिका से स्वयं हो जाता है :—

उक्त ५ वर्षों में ८७ बैंक, जिनका प्राप्त मूलधन १७८ लाख

था, फ़ेल हुए हैं। यह सत्य है कि इनमें से कुछ के फ़ेल होने का कारण, बैंक के फ़ण्डों का बेईमानी के साथ उपयोग करना, बैंकिंग व्यवसाय के साथ-साथ व्यापार को मिश्रित करना तथा इस बात के ज्ञान का अभाव कि सुरक्षित धन्धा किस प्रकार किया जाता है, आदि थे; किन्तु इनके साथ-साथ दूसरे कारण ये थे—(१) भारतीय बैंकों में आपसी सहकारिता का अभाव, (२) विदेशी, अंग्रेज़ी और प्रेसीडेन्सी बैंकों का द्वेष-पूर्ण तथा सहानुभूति-रहित व्यवहार, (३) सरकार की लापरवाही के साथ तमाशा देखनेवाली नीति।

सन् १९१८-१९३० लड़ाई के ज़माने में भारत के कम्पनी व्यवसाय को पुनः उत्तेजना मिली, साथ ही थोड़ी-बहुत भारतीय ज्वाइण्ट-स्टॉक बैंकिंग की भी उन्नति आरम्भ हुई। परिणाम-स्वरूप टाटा-इण्डस्ट्रियल-बैंक सन् १९१८ में बड़ी ऊँची आशाओं के साथ और उपयुक्त परिस्थिति में स्थापित हुआ था। इसके फलने-फूलने के अच्छे लक्षण दिखाई देते थे; किन्तु दुःख है कि भारत जैसे देश में, जहाँ आधुनिक बैंकिंग का व्यवसाय पूरे तौर पर जम नहीं पाया था, वहाँ साधारण बैंकिंग धंधे के साथ-साथ लम्बी अवधि के लिये उधार देना शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त बैंक के अमले में अधिकतर अनुभव-रहित अंग्रेज़ी नौकरों का बोलबाला था जिनके हाथ में बैंक के प्रमुख कार्य्यों का संचालन था और जिन्होंने विकट परिस्थिति के अवसर पर भारतीय नौकरों के अधिकार छीन लिये थे ऐसे अनेक कारणों से भारतीय-नौकरों

व भारतीय-प्रजा की सहानुभूति, बैंक से हट गई, फल-स्वरूप अल्प समय में अर्थात् ६ वर्ष की अवस्था में ही यह बैंक स्वयं लिक्विडेशन में आ गया और सन् १९२३ में सेण्ट्रल-बैंक आव् इण्डिया के साथ मिल गया। इसी प्रकार इंडस्ट्रीयल-बैंक

११ वर्षों में फ़ेल होने वाले बैंक

वर्ष	संख्या	मूलधन		
		मंजूर शुदा	जारी शुदा	वसूल शुदा
१९१८	७	२,०९,४९,९७०	४,८५,६५१	१,४६,१८५
१९१९	४	५२,५०,०००	६,४७,१८५	४,०२,७३७
१९२०	३	१०,४०,०००	७६,७७००	७,२४,७१७
१९२१	७	७०,४०,०००	५८०९६५	१,२५,३२९
१९२२	१५	१०,१५,५५,०००	२७,२५,७४४	३,२९,९९१
१९२३	२०	२१,८६,८९,९९५	९,९२,३६,४८०	४,६५,४७,३२५
१९२४	१८	६,३०,३०,९२५	२६,४६,३७०	११,३३,६२३
१९२५	१७	१,८९,८०,०००	२५,४१,६९५	१८,७५,७९५
१९२६	१४	७१,८०,०००	७,०५,८१५	३,९८,१४५
१९२७	१६	६९,३०,०००	६,८८,३७२	३,१०,५१८
१९२८	१३	८१,००,०००	३१,६५,७४०	२३,११,७१७

आव् वेस्ट-इण्डिया, दी करनानी इण्डस्ट्रीयल-बैंक, दी कलकत्ता इण्डस्ट्रीयल बैंक-आदि अधिकांश प्रमुख-प्रमुख बैंक, जो लड़ाई के

ज़माने में पैदा हुए थे, लड़ाई के बाद ज्वाइंट-स्टॉक कम्पनियों के असफल होने के साथ-साथ बन्द हो गये। पृ० २८ की तालिका भारतीय-बैंकिंग व्यवसाय की दयनीय दशा का पूर्ण रूप से दिग्दर्शन कराती है।

बैंकों के फ़ेल होने में सन् १६२२ ई० से सन् १६२८ ई० तक, सात वर्ष का समय, पिछले ५ बर्ष (सन् १६१३—१६१७ ई०) से भी अधिक भयंकर निकला है। उन ५ वर्षों में तो केवल एक वर्ष सन् १६१४ ई० ही अधिक भयंकर था, किन्तु सन् १६२२ ई० से लगातार फ़ेल होनेवाले बैंकों की संख्या में कमी नहीं आ रही है। प्रति वर्ष ७५ लाख वाले १६ बैंकों के फ़ेल होने का औसत है, जब कि पहले पाँच वर्षों (सन् १६१३—१७ ई०) में फ़ेल होने वाले बैंकों का प्राप्त मूलधन प्रतिवर्ष ३५ लाख से अधिक नहीं आता है।

सन् १९३१ ई० का आर्थिक-संकट—महासमर के साथ-साथ बृटेन की सरकार को आर्थिक घुन ऐसा लग गया है, जिससे वह अब तक भी नहीं सुधर पाई है बलिक सन् १६३० ई० और ३१ ई० के व्यापारिक ह्रास के कारण उसकी आर्थिक स्थिति और भी शोचनीय दशा को पहुँच गई, जिससे विवश होकर उसको अपने काग़ज़ी सिक्के की पीठ पर से स्वर्णाधार (Gold standard) उठाना पड़ा। फल-स्वरूप बैंक आव् इंगलैण्ड से सम्बन्ध रखनेवाले बैंकों में हलचल मच गई और बृटेन की काग़ज़ी मुद्रा (sterling) के साथ रुपये का,

१ शि० ६ पें० की दर से, सम्बन्ध जोड़ देने के कारण भारतीय बैंक भी हिल उठे; किन्तु इम्पीरियल बैंक के गवर्नर की ओर से सहायता देने के आश्वासन के कारण अधिक संख्या में बैंक फ़ेल न हो सके और राम-राम करके अधिकांश बैंकों ने जान बचाई। फिर भी लाला हरकिशन लाल का पीपल्स-बैंक आव् नार्दर्न इंडिया और पंजाब काश्मीर बैंक फ़ेल हो गये। अपने बैंक के फ़ेल होने का कारण बताते हुए पीपल्स-बैंक के मैनेजिंग डाइ-रेक्टर ने एसोसिएटेड प्रेस को यह बयान दिया था—

"हमने १ जुलाई सन् १९३१ ई० से अब तक (२३ सितम्बर सन् १९३१ ई०) ८० लाख रुपयों का पेमेंट दिया, फिर भी माँग बनी रही। इस माँग का कारण यह है कि गवर्नमेंट इतने अधिक ब्याज की दर से क़र्ज़ ले रही है कि जितना ब्याज बैंक नहीं दे सकता। अन्तिम ट्रेज़री बिल ७½ प्रतिशतक का था। नये क़र्ज़ों के कारण थोड़ी थोड़ी-रक़में भी खिंच गईं। बैंक की स्थिति अच्छी है। इसमें जितना रुपया दूसरों का जमा है, उससे अधिक रुपया बैंक का वसूल होने को है; परन्तु किसी देश या संस्था की साख नक़दी नहीं बना सकती।"

सारांश यह है कि लड़ाई के बाद से अब तक भारतीय बैंकिंग व्यवसाय की अवस्था गिरती हुई चली आ रही है, अभी तक सुधरी नहीं है।

विदेशीय-विनिमय बैंक—ये बैंक विदेशीय व्यापार के लहने-पावने की भुगतान करने का धन्धा करते हैं; इसलिए विनिमय

बैंक कहलाते हैं। भारत में इनका जन्म ७५ वर्ष पूर्व हुआ था। सन् १८७० ई० में इस प्रकार के केवल ३ बैंक थे। इसके पश्चात् १८८० ई० में ४, सन् १८९० में ५, १९०० ई० में ८, सन् १९२० ई० में १५ और सन् १९२८ ई० में धीरे-धीरे उन्नति करते हुए इनकी संख्या १८ तक पहुँच गई। पिछली संख्या सन् १९२२ से समान चली आ रही है। महायुद्ध के पहले यहाँ केवल १२ विनिमय-बैंक थे, जिनका मूलधन व रिज़र्व फ़राड ३.७८ करोड़ पौराड था और ४४ लाख पौराड के लगभग नक़दी रोशन थी। इन उक्त बारह बैंकों में आधे से अधिक के हेड ऑफ़िस लन्दन में थे। शेष के हेड ऑफ़िस जापान, फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका में बँटे हुए थे। महासमर के अवसर पर भारत का व्यापारिक सम्बन्ध अनेक भिन्न-भिन्न देशों से स्थापित हुआ, जिसके कारण दूसरे देशों के बैंकों को यहाँ शाखायें खोलने के लिये उत्तेजना मिली। सन् १३ और २४ के बीच में इन बैंकों की संख्या में ५० प्रतिशतक वृद्धि हुई है। सन् १९१८, १९१९ ई० में दो जापानी, १९२० में "बैंकों नेशनल उल्ट्रा मैरोनो" और दी नेदरलैंड बैंकों ने अपने दफ़्तर भारत में खोले। आरम्भ में इन बैंकों का धन्धा साधारण सा था; किन्तु धीरे-धीरे बढ़ाते-बढ़ाते इतना बढ़ गया कि आज इन्होंने भारतीय-बैंकिंग व्यवसाय पर पर्याप्त अधिकार जमा लिया है और भारतीय ज्वाइंट-स्टॉक बैंकों की अपेक्षा अत्यधिक शक्तिशाली बन गये हैं। पाठक पृष्ठ ३२ के कोष्ठक से लड़ाई के बाद इनकी बढ़ती हुई गति का अनुमान स्वयं लगा सकेंगे—

नीचे के कोष्ठक में सन् १६२८ में विदेशी बैंकों की संख्या १८ बतलाई गई है। इन बैंकों में से प्रत्येक बैंक की अनेक शाखायें भारत की मुफ़स्सलात में फैली हुई हैं, जिनकी कुल संख्या ८८ होती

लड़ाई के पश्चात् से विनिमय बैंकों की उन्नति

वर्ष	संख्या	मूलधन वधु फ़ण्ड १००० पौंड में	भारत की जमा १००० पौंड में	भारत में रोशन १००० पौंड में
१६१३ महा युद्ध से पूर्व	१२	३७,८२५	२३,२७६	४,४११
१६१६	११	५३,०७०	५५,७६६	२२,४८७
१६२०	१५	६०,२१७	५६,१०५	१८,८८१
१६२१	१७	१११,६३२	५६,३६७	१७,६७५
१६२२	१८	११२, २२१	५५,०३८	१२,१३२
१६२३	१८	१४०,१०३	५१,३३२	१०,८५६
१६२४	१८	१३०,४६४	५२,६७६	१२,२७५
१६२५	१८	१३८,३११	५२,६०६	७,०६२
१६२६	१८	१४८,००३	५३,६५८	८,०४६
१६२७	१८	१८०,६१६	५१,६४१	६,०६८
१६२८	१८	१८८,६२३	५३,३५४	७,०४२

है। ये विदेशी-व्यापार को आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त सब प्रकार का बैंकिंग-धन्धा भी करते हैं। ये भारतीय-प्रजा की अमानतें जमा रखते हैं और सदैव अधिक से अधिक इस देश का

रुपया खींचने के प्रयत्न में रहते हैं। प्रमाण के लिये इम्पीरियल बैंक चल्लू खाते (Current deposits) पर ब्याज नहीं देता; किन्तु ये बैंक आम तौर पर २) प्रतिशत सालाना ब्याज देते हैं। ऐसे अनेक कारण हैं, जिनकी वजह से इनमें भारतीय प्रजा की जमा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। जहाँ सन् १९१३ में २३.२ करोड़ रुपये इनमें जमा थे, वहाँ सन् १९२८ में जमा की संख्या ५३.३ करोड़ रुपया हो गई। इस संचित धन-राशि से यह बैंक अधिक मात्रा में विदेशी व्यापार की सहायता करते हैं, जिसका अधिकांश भाग विदेशी व्यापारियों के हाथ में है। विदेशों में धन की तंगी आने पर ये बैंक भारत के धन को भारत के बाहर भेजकर दूसरे देशों की ऊँचे ब्याज की दर से लाभ उठा लेते हैं। यही कारण है कि भारत में इन बैंकों की नक़दी रोशन कम होती जा रही है, जैसाकि पृ० ३२ के कोष्ठक से प्रकट होता है। विदेशी बैंकों की उत्तरोत्तर वृद्धि का यह परिणाम हो रहा है कि भारत के उद्योग-धन्धे धनाभाव से पनपने नहीं पाते और भारत के धन से विदेशी लोग लाभ उठाते हैं। इन बैंकों का दृष्टिकोण सदैव विदेशी व्यापारियों को सहायता पहुँचाना और विदेशी लोगों को बड़ी बड़ी तनख़्वाहें देना रहा है। ७५ वर्ष से भारत में काम करते रहने पर भी इन्होंने आज तक एक भी भारतीय को उत्तरदायित्व के पद पर स्थान नहीं दिया है। भारत ही एक ऐसा पराधीन देश है, जहाँ ये बैङ्क मनमाने रूप से इस देश के धन का व्यवहार करते हैं और इस देश के

हित का ध्यान नहीं रखते (इस सम्बन्ध में अगले पृष्ठों में विशेष रूप से विचार किया गया है)।

इम्पीरियल बैंक—बीसवीं सदी के प्रथम दस वर्षों में एक केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता अत्यधिक रूप से अनुभव हुई और यह अनुमान किया गया कि इस देश की व्यापारिक उन्नति के लिये बैंकिंग-सम्बन्धी आवश्यक सुविधा प्राप्त होने और सरकारी सहायता से लाभ उठाने के लिये तीनों प्रेसीडेन्सी बैंकों की अपेक्षा एक केन्द्रीय बैंक अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। अस्तु इस प्रकार के बैंक की स्थापना के सम्बन्ध में मिस्टर जे० एम० कीन्स ने एक स्कीम बनाई थी, जो सन् १९१३ ई० के भारतीय करैंसी कमीशन की रिपोर्ट के साथ शामिल कर दी गई, परन्तु लड़ाई के छिड़ जाने की वजह से उस समय उस पर विचार करना स्थगित कर दिया गया। लड़ाई के ज़माने में सरकार को करैंसी सम्बन्धी जो कठिनाइयाँ हुईं, उन्होंने उक्त प्रकार के बैंक की स्थापना की आवश्यकता की ओर सरकार का अति शीघ्र ध्यान आकर्षित किया और बैंकिंग की उन्नति के लिये एक ठोस क्षेत्र तैयार कर दिया। लड़ाई समाप्त होते ही सरकार और तीनों प्रेसीडेन्सी बैंकों के बीच में एक समझौता हुआ। फल-स्वरूप तीनों बैंकों के सम्मिश्रण से सीमित ज़िम्मेदारी के आधार पर इम्पीरियल बैंक की स्थापना हुई। इसकी व्यवस्था और कार्य्य की व्याख्या के लिये एक विशेष क़ानून इम्पीरियल बैंक ऐक्ट सितम्बर सन् १९२० ई० में पास हुआ।

इसके साथ एक एग्रीमेण्ट शामिल किया गया है, जिसके द्वारा सरकार और बैंक के बीच में सम्बन्ध स्थापित किये गये हैं। इस बैंक ने २७ जनवरी सन् १९२१ ई० से कार्य आरम्भ किया है। इस

इम्पीरियल बैंक का प्रगति-सूचक कोष्ठक

[लाखों में]

वर्ष	मूलधन	रिज़र्व फंड	गवर्नमेंट की और सार्वजनिक जमायें	निजी जमायें	रोशन
१९२२	५६२	४३३	१४१६	५७००	१५०७
१९२३	५६२	४५५	८५७	७४१९	१५०१
१९२४	५६२	४८०	७५०	७६७१	१५६०
१९२५	५६२	४९३	५४६	७७८३	१०४७
१९२६	५६२	५०९	६४५	७३९०	२०९०
१९२७	५६२	५२४	७२०	७२०७	१०८९
१९२८	५६२	५३९	७९५	७१३०	१०५७
१९२९	५६२	५४८	७६०	७१६	१४००
१९३०	५६२	५५३	७३७	७६९	१३०४

बैंक का मूलधन ११२५ लाख रुपया निश्चित हुआ। जब कि तीनों प्रेसीडेन्सी बैंकों का इकजाई मूलधन सिर्फ़ ३७५ लाख ही था। सन् १९२१ ई० के बाद इस बैंक ने इस प्रकार उन्नति की है।

इस बैंक से जैसी आशा थी, वैसी भारतीय व्यवसाय को सहायता नहीं मिली और न राष्ट्रीय बैंक की आवश्यकता ही पूरी हुई। इसके लिये यह आम शिकायत है कि यह देशी कम्पनियों, बैंकों और संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने में उपेक्षा करता है; किन्तु विदेशी संस्थाएँ इससे पूरा पूरा लाभ उठा लेती हैं। इस कथन की पुष्टि मिस्टर मेकडोनाल्ड के उस बयान से होती है, जो उन्होंने सेण्ट्रल बैंकिंग इन्कायरी कमेटी (सन् १६३१ ई०) के सामने बैंक की जमा-शुदा अमानतों और दिये हुए क़र्ज़ों की बाबत पेश किया था। यथा—

	जमा	नावें
विदेशियों की	लाख	११७० लाख
चल्लू खाते में	५६४	०
मियादी अमानतें	२६४	०
जोड़	८२८	११७०
भारतीयों की	लाख	३०३८
चल्लू खाता	१७३२	०
मियादी अमानतें	२१४६	०
जोड़	३८८१	३०३८

इससे प्रकट होता है कि विदेशियों को उनकी जमा की अपेक्षा अधिक उधार दिया जाता है और भारतीयों को उनकी जमा से कम उधार मिलता है। इसके अतिरिक्त इस बैंक में शेयर-होल्डरों का बहुमत विदेशियों का है। यथा—

भारतीय शेयर-होल्डरों की पूँजी २७८०८२५०
विदेशी २८४४१७५०

इसलिये इसमें विदेशियों ही का अधिक बोलबाला है।

हेड ऑफ़िस और शाखायें—इसके तीन हेड ऑफ़िस—बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में हैं और इनके आधीन भारत के समस्त प्रान्तों में १६६ शाखायें हैं।

संगठन—इसका संचालन एक सेण्ट्रल बोर्ड के आधीन है, जिसके १६ सदस्य हैं। उनका चुनाव इस प्रकार होता है :—

९ उक्त तीनों हेड आफ़िसों के प्रेसीडेण्ट, वाइस प्रेसीडेण्ट और सेक्रेटरी। ये शेयर-होल्डरों के प्रतिनिधि होते हैं।

५ गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होते हैं। इनमें एक कण्ट्रोलर आव् करेन्सी और चार भारतीय मेम्बर होते हैं, इनका चुनाव प्रति वर्ष होता है; किन्तु दुबारा भी पहिले-वाले मेम्बर चुने जा सकते हैं। ये सदस्य ग़ैर सरकारी होते हैं।

२ मैनेजिंग गवर्नर—उनको सपरिषद् गवर्नर जनरल सेंट्रल बोर्ड की सिफ़ारिश पर विचार करके नियत करते हैं और वेही इनका प्रबन्ध-काल भी निश्चित करते हैं।

ये सोलह सदस्य गवर्नर कहलाते हैं। बैंक के दैनिक कार्य का संचालन मैनेजिंग गवर्नरों द्वारा होता है।

तीनों हेड ऑफ़िसों के अधिकार-क्षेत्रों (circles) का धन्धा उनके अपने अपने स्थानीय बोर्ड द्वारा संचालित होता है, जिसका

चुनाव शेयर-होल्डर करते हैं। तीनों स्थानीय बोर्ड, जहाँ तक आम नीति और ध्येय का सम्बन्ध है, वहाँ तक सेण्ट्रल बोर्ड की आधीनता में काम करते हैं। इन तीनों केन्द्रीय दफ़्तरों के सेक्रेट्री और ट्रेज़रर अपने अपने केन्द्र की व्यवस्था और प्रबन्ध के ज़िम्मेदार हैं।

सरकारी हस्तक्षेप—गवर्नरों की नियुक्ति करने के अतिरिक्त गवर्नर जनरल को बैंक के नाम हर एक ऐसे मामले के सम्बन्ध में, जो उसकी सम्मति में सरकारी अर्थनीति पर गम्भीर असर डालनेवाला हो या सरकारी जमा की सुरक्षा के लिये आवश्यक हो, चेतावनी देने का अधिकार है। बैंक द्वारा ऐसी चेतावनियों की अवज्ञा होने पर उसे अधिकार है कि वह सरकारी बैंकिंग धन्धे के सम्बन्ध में इक़रारनामे का पालन न करे और जब भी वह आवश्यक समझे, बैंक के हिसाबात व कारोबार का विशेष निरीक्षण करा सकता है।

काम—यह बैंक सरकारी बैंकिंग धन्धे का अकेला अधिकारी है और तमाम सरकारी जमाओं का बिना व्याज उपभोग करता है। यह सरकारी बैंकर है। जहाँ जहाँ इसकी शाखायें हैं, वहाँ वहाँ यह सरकारी ख़ज़ानची का काम करता है, सरकार के खाते जमा होनेवाली समस्त रक़में सर्वसाधारण से वसूल करता है और सरकार के वास्ते सदैव आवश्यकतानुसार रोशन तैयार रखता है। यह भारत सरकार के सार्वजनिक ऋण का प्रबन्धक है और केन्द्रीय बैंक के कुछ काम भी अंजाम देता है। यह बैंकों का बैंक

है। भारत के प्रमुख प्रमुख बैंक इसके साथ हिसाब रखते हैं; लेकिन ऐसा कोई क़ानूनी नियम नहीं है, जिससे भारत के बैंकों को अपनी ज़िम्मेदारी का कुछ निश्चित भाग इसमें अनिवार्य रूप से जमा करना पड़ता हो। यह भारत के ११ क्लियरिंग हाउसों का संचालक भी है। इन सबके अतिरिक्त यह सब प्रकार का बैंकिंग व्यवसाय भी करता है, जिसको इम्पीरियल बैंक ऐक्ट की आठवीं धारा के अनुसार परिशिष्ट (Shedule) नं० १ में २ भागों में विभक्त किया गया है।

(१) वे धन्धे, जो बैंक कर सकता है।

(२) वे धन्धे, जो बैंक नहीं कर सकता।

पहिला भाग

बैंक को अधिकार है कि वह वे तमाम धन्धे करे, जिनका कि नीचे वर्णन किया गया है—

(१) नीचे लिखी ज़मानत पर रुपया उधार देना या खाते में बाक़ी रखना—

अ—हिस्सों, जमाशुदा अमानतों और अन्य ज़मानतों पर (अचल सम्पत्ति के अतिरिक्त) तथा किसी स्थानीय गवर्नमेंट और सीलोन की गवर्नमेंट की ज़मानतों पर।

आ—ऐसी ज़मानतों पर, जो सरकारी सहायता-प्राप्त रेलवे-कम्पनी द्वारा जारी की गई हों, जिनके

निस्बत सपरिषद् गवर्नर जनरल द्वारा प्रेसीडेन्सी बैंक ऐक्ट सन् १८७६ ई० की दफ़ा ३६ के अनुसार प्रसिद्धि हो चुकी हो।

इ—डिबेञ्चर या दूसरी रुपयों की ज़मानतों पर, जो ब्रिटिश भारत के क़ानून के अनुसार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या उनकी तरफ़ से जारी की गई हो।

उ—उस माल की ज़मानत पर, जिसको या जिसका स्वत्व पत्र ऐसे थोड़े समय या अधिक समय के लिये लिये हुए क़र्ज़ या खाता पेटे ली हुई रक़म के लिये बतौर ज़मानत बैंक में जमा किया हो या बैंक के हक़ में लिख दिया हो।

ए—सही किये हुए बिल आव् एक्सचेञ्ज और प्रोमेसरी नोट पर, जो राख्यावाला (Payee) के द्वारा बेचान किये गये हों और उन सम्मिलित प्रोमेसरी नोटों पर, जो दो या ज़्यादा व्यक्ति या दूकानों, जिनका आपस में साझेदारी का सम्बन्ध न हो, के लिखे हुए हों; और

ऐ—सीमित ज़िम्मेदारी पर क़ायम होनेवाली कम्पनियों के पूरे दाम चुकाये हुए शेयर और डिबेञ्चर या जायदाद ग़ैरमनकूला या तत्सम्बन्धी स्वत्व पत्र की सहायक ज़मानत पर केवल उस हालत में, जब कि असली ज़मानत "अ" से "इ"

तक वर्णन की हुई में से कोई एक हो और यदि सेण्ट्रल बोर्ड ने आम या ख़ास हिदायत द्वारा अधिकार दिया हो तो—असली ज़मानत "ए" में वर्णन की हुई होने की हालत में भी। इसके अतिरिक्त यदि सेण्ट्रल बोर्ड उचित समझे तो सपरिषद् भारतमंत्री को बिना किसी ख़ास ज़मानत पर भी उधार दिया जा सकता है।

(२) प्रत्येक ऐसे प्रोमेसरी नोट, डिबेञ्चर, बोण्ड, स्टाक, शेयर, सिक्यूरिटी या माल को या उसके हक़ की दस्तावेज़ों को, जो बैंक से उधार ली हुई रक़म की एवज़ में बतौर ज़मानत के जमा की गई हो या बैंक के हक़ में लिखी गई हो और बैंक के क़ब्ज़े में हो और जिनपर बैंक का कोई क़र्ज़ा हो या ऐसे क़र्ज़े से सम्बन्ध रखनेवाला कोई ख़र्चा हो या दावा हो, जो मुताबिक़ शरायत और इक़रार के (यदि कोई हो) निर्धारित समय में वसूल न हुआ हो, बेचना और बिक्री की क़ीमत को वसूल करना।

(३) कोर्ट आव् वार्ड्स को उस जायदाद और जागीर की ज़मानत पर, जो उनके अधिकार या प्रबन्ध में हो क़र्ज़ देना तथा ऐसे क़र्ज़े व सूद को, जो उन पर हो, वसूल करना; किन्तु ऐसा कोई क़र्ज़ा तब तक नहीं दिया जावेगा, जब तक सम्बन्धित लोकल गवर्नमेंट

से आज्ञा प्राप्त न की गई हो और न ६ महीने से अधिक अवधि के लिये दिया जावेगा।

(४) ऐसे बिल आव् एक्सचेञ्ज या दूसरे बेचे जाने योग्य (Negotiable) साख़पत्र जारी करना, स्वीकार करना, डिस्काउण्ट करना, ख़रीदना और बेचना, जो हिन्दुस्तान और सीलोन में चुकाने के क़ाबिल हों और सपरिषद् गवर्नर जनरल की आम या ख़ास हिदायत के अनुसार हों। उन बैंकों के वास्ते या उन बैंकों से या उन बैंकों को, जिनके लिये इस सम्बन्ध में सपरिषद् गवर्नर जनरल ने स्वीकृति दे दी हो। ऐसे बिल आव् एक्सचेञ्ज को ख़रीदना, बेचना, डिस-काउण्ट करना, जो हिन्दुस्तान के बाहर चुकाये जाने-वाले हों।

(५) बैंक की जमाओं को उन ज़मानतों पर सूद से लगाना, जिनका वर्णन दफ़ा १ में "अ" से "ई" तक किया गया है और ऐसी ज़मानतों को जब आवश्यकता हो तभी नक़दी में बदलना तथा ऊपर वर्णन की हुई जैसे कोई दूसरी ज़मानतों में बदलना।

(६) ऐसे बैंक-पोस्ट बिल और लेटर आव् क्रेडिट लिखना, जारी करना और बनाना, जो हिन्दुस्तान और सीलोन में क़ाबिल अदायगी हों और हिदायती (Order)

या माँगने पर उपस्थित करनेवाले (Bearer) को देने के सिवाय दूसरे प्रकार के हों।

(७) सोना और चाँदी ख़रीदना या बेचना चाहे सिक्के-वाली हो या बिना सिक्केवाली।

(८) अमानतें जमा रखना और मंज़ूर की हुई शर्तों के अनुसार नक़दी का खाता रखना।

(९) सोना-चाँदी के पाँसे, जवाहिरात, दस्तावेज़ात—हक़ीयत या दूसरी मूल्यवान् वस्तुओं को क़र्ज़ में मंज़ूर की हुई शरायतों पर मंज़ूर करना।

(१०) उस जायदाद मनक़ूला और ग़ैरमनक़ूला को बेचना और उसकी क़ीमत वसूल करना, जो किसी प्रकार से बैंक के क़ब्ज़े में उसके दावे की पूर्ति या उसके किसी हिस्से की पूर्ति में आई हो।

(११) रुपया-पैसा-सम्बन्धी एजेन्सी का काम करना।

(१२) बहैसियत ऐडमिनिस्ट्रेटर, प्रबन्धक या अमानतदार जायदाद का तस्फ़ीया करने के वास्ते काम करना और बतौर एजेण्ट के नीचे लिखे हुए धन्धों का लेन-देन कमीशन पर करना :—

क—किसी सार्वजनिक कम्पनी की ज़मानतों या हिस्सों को ख़रीदना, बेचना, मुन्तक़िल करना और अपनी तहवील में लेना।

ख—हर एक प्रकार की ज़मानत और शेयर की असली क़ीमत, सूद या मुनाफ़ा वसूल करना।

ग—और ऐसी वसूल-शुदा रक़म का मालिक की जोखिम पर सार्वजनिक या निजी विनिमय बिल्स, जो भारत या अन्य किसी देश में क़ाबिल वसूल हो, के द्वारा भुगतान करना।

(१३) विनिमय बिल्स और लेटर आव् क्रेडिट, जो भारत के बाहर क़ाबिल वसूल हों, नं० ११ में वर्णन किये कामों के लिये या अपने ग्राहकों की निजी ज़रूरियात के लिये जारी करना।

(१४) ङ—उक्त प्रकार के जारी किये हुए बिल आव् एक्सचेञ्ज और लेटर आव् क्रेडिट की अदायगी के वास्ते भेजने के लिये ऐसे विनिमय बिल ख़रीदना, जो भारत के बाहर क़ाबिल वसूल हों और किसी भी मुद्दत के हों, जो ६ महीने से अधिक की न हो।

(१५) च—बैंक के कारबार के लिये भारत में रुपया उधार लेना और ऐसी उधार को हुई रक़ूमात के लिये बैंक की सम्पत्ति को रहन करके या दूसरे तरीक़े से ज़मानत देना।

(१६) छ—इंगलैण्ड में बैंक के कारबार के लिये बैंक की संपत्ति की ज़मानत पर रुपया उधार लेना न कि दूसरे तरीक़े पर।

ज—आम तौर पर ऐसे मामले और काम करना, जो ऊपर वर्णन किये हुए भिन्न भिन्न प्रकार के धंधों को पूरा करने और उनकी मदद के लिये आवश्यक हों।

दूसरा भाग

वे काम, जिनको करने का अधिकार बैंक को नहीं है।

बैंक उन कामों के अतिरिक्त, जो पहिले हिस्से में वर्णन किये गये हैं, अन्य किसी प्रकार का भी बैंकिंग धन्धा नहीं कर सकेगा और विशेष तौर से—

(१) वह उधार नहीं दे सकेगा—

अ—लम्बे समय के लिये, जो ६ माह से अधिक हो।

आ—बैंक के स्टाक या शेयर की ज़मानत पर।

इ—सिवाय उन जायदादों के, जिनके लिये पहिले हिस्से के क्लॉज़ नं० ३ में वर्णन किया है, किसी जायदाद ग़ैर-मनक़ूला या तत्सम्बन्धी दस्तावेज़ात—हक़ीयत की (रहन रखकर या किसी तरह से) ज़मानत पर।

(२) बैंक (सिवाय पहिले हिस्से के क्लॉज़ नं० १ के सब क्लॉज़ "अ" से "उ" तक नियत की हुई ज़मानतों के)

किसी एक व्यक्ति या शराक़ती दूकान के बिल किसी एक समय में सब मिलाकर उस रक़म से अधिक, जो नियत कर दी जावे, डिस्काउण्ट नहीं कर सकेगा या किसी एक व्यक्ति या शराक़ती दूकान को किसी एक समय में सब मिलाकर उस रक़म से अधिक, जो उसके लिये नियत कर दी जावे, उधार न दिया जावेगा।

(३) बैंक किसी व्यक्ति या शराक़ती फ़र्म की ऐसा बेची जाने योग्य दस्तावेज़ को न डिस्काउण्ट कर सकेगा न ख़रीद सकेगा और न उसकी ज़मानत पर उधार दे सकेगा या बाक़ी रख सकेगा, जो उसी क़स्बे या स्थान पर क़ाबिल अदायगी हो, जहाँ डिस्काउण्ट के लिये उपस्थित की जावे, जब तक उस पर कम से कम ऐसे दो व्यक्ति या दो फ़र्मों की, जिनका एक दूसरे के साथ आम शराक़ती सम्बन्ध न हो, ज़िम्मेदारी शामिल न हो गई हो।

(४) बैंक किसी बेचे जाने योग्य दस्तावेज़ों को डिस्काउण्ट नहीं कर सकेगा और न ख़रीद सकेगा या उनकी ज़मानतों पर उधार दे सकेगा अथवा बाक़ी रख सकेगा, जो लेन-देन की तारीख़ से छः माह से अधिक मुद्दत की हों या यदि देखने के बाद की मुद्दत की लिखी हों तो छः माह से अधिक मुद्दत के

लिये लिखी हुई न हो; किन्तु इस हिस्से से यह न समझा जावेगा कि बैंक के लिये किसी व्यक्ति को, जो उससे खाता रखता है, जमा से अधिक बिला ज़मानत उस हद तक, जो नियत कर दी जावे, देने की रुकावट है।

सारांश यह है कि यह इस देश का एक प्रमुख व्यवसायिक बैंक है और सब प्रकार का बैंकिंग व्यवसाय करता है, लेकिन इसको छः माह से अधिक अवधि के लिये और अचल सम्पत्ति की ज़मानत पर उधार देने का अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त विशेष ध्यान देने योग्य यह बात है कि यह बैंक भारत के बाहर बिना ज़मानत दिये न तो रुपया उधार दे सकेगा और न अमानतें जमा कर सकेगा। इसका यह अभिप्राय है कि यह भारत, ब्रह्मा और सीलोन के बाहर कोई धन्धा नहीं कर सकता। लन्दन में ब्राञ्च खोलने की आज्ञा केवल सरकारी काम बतौर आढ़तिया करने के लिये दी गई है। आश्चर्य्य की बात तो यह है कि जिस प्रकार इसको विदेशी विनिमय का धन्धा करने की आज्ञा न देकर विदेशी बैंकों के अधिकृत व्यापार की रक्षा की गई है, उस प्रकार भारतीय ज्वाइण्ट स्टाक बैंकों के साथ प्रतियोगिता करके व्यापार न छीन सकने के वास्ते कोई उपाय नहीं किया गया; इसलिये यह स्वतन्त्रता-पूर्वक उन स्थानों पर, जहाँ पहिले से अच्छे अच्छे ज्वाइण्ट स्टाक बैंकों के दफ़्तर मौजूद हैं, अपनी शाखाएँ खोल रहा है और

उनका व्यवसाय छीन रहा है। इसको कहते हैं, "जिसकी लाठी उसकी भैंस।"

कोऑपरेटिव बैंक

उक्त वर्णित ३ प्रकार (इम्पीरियल बैंक, विनिमय बैंक और ज्वाइंट स्टाक बैंक) के बैंकों के अतिरिक्त कोआपरेटिव बैंक भी भारत के बैंकिंग व्यवसाय में विशेष स्थान रखते हैं। इनका जन्म भारत में सहकारिता के प्रचार के साथ साथ हुआ है।

कृषकों की भलाई के लिये सहकारिता को जन्म देने का विचार भारत में सबसे पहले सन् १८९२ ई० में उत्पन्न हुआ था। मद्रास सरकार ने सर फ़्रेडरिक निकोल्सन I. C. S. को भारत में इसका प्रचार करने के हेतु योरप में अनुभव प्राप्त करने के लिये भेजा था। इन्होंने सन् ९९ ई० में अपनी रिपोर्ट (सन् १८९५-९७ ई०) मद्रास सरकार के सामने उपस्थित की थी, जो भारत सरकार के सामने सन् १९०० ई० में आई थी। इसी समय के लगभग कुछ सहकारी समितियाँ मि० डूपर मेक्स I. C. S. ने संयुक्त प्रान्त में और मि० मेक्लेगन I. C. S. ने पंजाब में स्थापित की थीं। सन् १९०१ ई० में भारत सरकार ने इस देश में सहकारिता के प्रचार के प्रश्न पर विचार करने के लिये सर एडवर्ड ला के सभापतित्व में एक कमेटी नियुक्त की थी। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में भारत के उपयुक्त रेफीशन प्रणाली

के अनुसार सहकारी-समितियाँ स्थापित करने के लिये सिफ़ारिश की थी। इसके अतिरिक्त फ़ेमिन कमेटी १६०१ ने भी पारस्परिक साख-संस्थाओं (Mutual Credit associations) की स्थापना के लिये सिफ़ारिश की थी। इन सिफ़ारिशों के परिणाम-स्वरूप सर डेन्ज़िल इब्बेटसन ने व्यवस्थापक सभा में एक बिल उपस्थित किया, जो सन् १६०४ ई० में क़ानून नं० १० पहला कोआपरेटिव ऐक्ट के नाम से पास हुआ। इसके पास होने से २ वर्ष के अन्दर २८०० समितियों की स्थापना हुई और प्रति वर्ष उत्तरोत्तर संख्या बढ़ती गई। कुछ समय कार्य करने के बाद यह क़ानून कुछ त्रुटि-पूर्ण ज्ञात हुआ और उसमें परिवर्त्तन करने की आवश्यकता अनुभव हुई। तब सन् १६१२ ई० में दूसरा क़ानून नं० ११ पास हुआ। इसी क़ानून के आधार पर भारत में आज कल सहकारी-समितियों का संचालन होता है। केवल बम्बई और ब्रह्मा में अभी हाल में बने हुये स्थानीय क़ानून द्वारा कार्य होता है। सन् १६१५ में फिर सरकार ने सहकारिता के प्रचार का अनुसन्धान करने के लिये मेक्लेगन कमीशन बिठाया। इसकी रिपोर्ट प्रकाशित होने के पश्चात् इस धन्धे को गहरी उत्तेजना मिली। प्रान्तीय बैंकों की स्थापना का श्रेय इसी कमीशन को प्राप्त है।

वर्त्तमान सहकारी संस्थाओं को ३ श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

१—ग्रामीण समितियाँ, २—सेण्ट्रल बैंक, ३—प्रान्तीय बैंक।

ग्रामीण समितियाँ—सहकारिता का आर्थिक संगठन इन ग्रामीण समितियों से आरम्भ होता है। यह समितियाँ ऋण लेने और न लेनेवालों का, जो एक गाँव में रहते हैं, एक दूसरे को जानते पहचानते हैं और स्वाभाविक रूप से एक दूसरे की भलाई-बुराई में दिलचस्पी लेते रहते हैं, मण्डली होती है। इस मंडली द्वारा एक गाँव के भिन्न भिन्न स्थिति के लोग उस गाँव के आर्थिक संगठन में शामिल होते हैं और एक दूसरे को भ्रातृभाव-पूर्वक सहायता पहुँचाते हैं। इस प्रकार की समितियों का जन्म संसार में सर्वप्रथम जर्मनी में हुआ और ऐसे समय में हुआ, जब वहाँ के कृषक आर्थिक संकट से पिस रहे थे और कृषक तथा छोटे कारीगर लालची सूदख़ोरों द्वारा लूटे जा रहे थे। उनकी बढ़ती हुई इस असह्य ग़रीबी और असहाय अवस्था को देखकर उस देश की दो परोपकारी आत्माओं का हृदय क्षुब्ध हो उठा और उन्होंने अर्थ-पीड़ितों का संकट दूर करने के लिये सहकारिता की स्थापना की। मिस्टर सूलज़डेलिटश (Schulze-Delitzsch) ने छोटे दस्तकारों और व्यापारियों की और मिस्टर रेफ़िशन ने कृषकों की समितियाँ बनाना आरम्भ किया। वहाँ इन समितियों से ऋण-ग्रस्त कृषकों और छोटे कारीगरों को अधिक लाभ पहुँचा; इसलिये इस प्रणाली का संसार के प्रत्येक देश ने अनुकरण किया है। भारत में भी सहकारी समितियाँ रेफ़ीशन की सूझ के नमूने की नक़ल हैं; लेकिन यहाँ इन समितियों की स्थापना प्रजा के उद्योग से नहीं हुई,

बल्कि भारत-सरकार ने कृषक-समुदाय की बढ़ी हुई सूदख़ोरी से रक्षा करने और कृषि-कार्य्य के लिये कम ब्याज पर आर्थिक सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से की है। इनके प्रबन्ध और संचालन के लिये प्रत्येक प्रान्त में एक-एक रजिस्ट्रार नियुक्त किया गया है, जो इन समितियों के तमाम मामलों को देखता व सुनता है और इनके सदस्यों के कार्य्य का निरीक्षण और प्रबन्ध करता है। निःसन्देह रजिस्ट्रार कृषक-प्रजा का परम मित्र, शुभ-चिन्तक और पथ-प्रदर्शक होता है।

इनका संगठन बिलकुल साधारण है। उस गाँव का प्रत्येक रहनेवाला, जो साथी मेम्बरों की दृष्टि में भला आदमी हो, समिति का मेम्बर बन सकता है। दस व्यक्ति मिलकर एक सभा बना सकते हैं। सभा की पूँजी में वह तमाम ज़मीन, जायदाद, पशु इत्यादि सम्पत्ति शामिल है, जो उसके मेम्बरों की है। इसका ब्योरा नक़शा हैसियत (Property statement) में दर्ज किया जाता है। इस नक़शा हैसियत का पुनर्मीलान प्रति वर्ष होता रहता है और इसको हमेशा सही रखा जाता है। इसको सावधानी से तैयार करना और पुनर्मीलान करना सभा का प्रमुख कार्य्य है। क्योंकि ऋण देने का सारा आधार इसके अंकों पर निर्भर रहता है। नक़शा हैसियत के आधार पर मेम्बर को ऋण देने की सीमा क़ायम की जाती है। यह समितियाँ अपने मेम्बरों की सम्मिलित और असीमित ज़िम्मेदारी पर बड़ी समितियों—सेण्ट्रल-बैंक और प्रान्तीय-बैंकों से ऋण लेती हैं और अपने

मेम्बरों को उधार देती हैं, लेकिन ये समितियाँ अपने सदस्यों के अतिरिक्त अन्य लोगों की अमानतें जमा नहीं रखती हैं। ऐसी समितियाँ ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में लगभग १ लाख के हैं, जिनके सदस्यों की संख्या लगभग ४० लाख तक पहुँच चुकी है।

सेंट्रल-बैंक—एक ज़िले की समस्त समितियाँ मिलकर एक केन्द्रीय समिति क़ायम करती हैं, जिसे सेंट्रल-बैङ्क कहते हैं और इनका दफ़्तर आमतौर पर ज़िले के सदर मुक़ाम पर या किसी ख़ास क़सबे में होता है। ये बैंक अधिकांश में सीमित ज़िम्मेदारी के साथ स्थापित किये जाते हैं और इनकी पूँजी हिस्सों द्वारा संग्रह की जाती है। इनके मेम्बर सहकारी समितियों के अतिरिक्त दूसरे लोग व्यक्तिगत रूप से भी हो सकते हैं। इनका संचालन एक व्यवस्थापक-मण्डल (Board of Directors) द्वारा होता है, जिसमें सहकारी समितियों के अतिरिक्त व्यक्तिगत मेम्बरों के चुने हुए व्यवस्थापक भी होते हैं। ये बैङ्क ज्वाइंट-स्टॉक-बैङ्कों की भाँति, सर्वसाधारण की सब प्रकार की अमानतें जैसे मियादी, करेण्ट और सेविंग्ज़ बैङ्क आदि की कम सूद पर जमा रखते हैं। ये इम्पीरियल बैङ्क से भी उधार लेते हैं। ये जमा रखी हुई और उधार ली हुई रक़में ग्रामीण सहकारी समितियों को कुछ अधिक ब्याज की दर से उधार देते हैं। ब्याज की न्यूनाधिक दर से इनको जो लाभ होता है, उसको ये अपने हिस्सेदारों में विभाजित करते हैं, लेकिन आम तौर पर ६ प्रतिशत से अधिक

मुनाफ़ा नहीं बाँटते। कहीं कहीं बारह प्रतिशत भी बाँटा जाता है। बम्बई प्रोविन्शियल कोआपरेटिव बैङ्क ने दस प्रतिशत और कोटा स्टेट कोआपरेटिव बैङ्क लिमिटेड कोटा ने ६ प्रतिशत से अधिक मुनाफ़ा बाँटने की क़ानून द्वारा रोक लगा रखी है। इस प्रकार के बैङ्कों की संख्या ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में लगभग छः सौ के है, जिनका मूलधन और रिजर्व फ़ंड लगभग चार करोड़ के है और जिनमें २० करोड़ के लगभग अमानतें जमा हैं।

प्रान्तीय बैंक—प्रत्येक गवर्नरी-प्रान्त के समस्त सेण्ट्रल कोआपरेटिव बैङ्क मिलकर एक बड़ी केन्द्रीय सभा स्थापित करते हैं, जिसको प्रान्तीय बैङ्क कहते हैं। यह बैङ्क सर्वसाधारण की अमानतें कम ब्याज पर खींचने में समर्थ हो जाते हैं। इन्होंने इम्पीरियल बैङ्क तथा ज्वाइण्ट स्टाक बैङ्कों से उधार लेने का प्रबन्ध भी कर रक्खा है। इस प्रकार संग्रह की हुई पूँजी को ये सेंट्रल बैङ्कों को उधार देते हैं। इसके अतिरिक्त ये बैङ्क ज्वाइण्ट स्टॉक बैङ्कों की भाँति सब प्रकार का बैङ्किङ्ग व्यवसाय जैसे व्यक्तिगत मेम्बरों को अनाज, ज़ेवर आदि वस्तुओं पर उधार देना चेक, हुण्डी, बिल को संग्रह करना और देश के अन्दर भुगतान करना आदि करते हैं। इन बैङ्कों का एक संयुक्त इंडियन प्रोविन्शियल को-आपरेटिव बैङ्क एसोसियेशन है, जो इनको आर्थिक, क़ानूनी और शासन-सम्बन्धी सहायता दिलाने के लिये प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार के भारत में ८ बैङ्क हैं यथा :—आसाम, बंगाल, बिहार,

उड़ीसा, बम्बई, ब्रह्मा, मध्य-प्रान्त, मद्रास और पंजाब में। इन सब-का मूल धन और रक्षित-फ़ंड रु० १,४५,५४,०००) है और इनमें रु० ६,१२,२१,०००) की अमानतें जमा हैं। गवर्नरी-प्रान्तों में केवल संयुक्त प्रान्त ही ऐसा है, जहाँ इस प्रकार का बैङ्क नहीं है। यह इस प्रान्त में भारी कमी है, जिसको दूर करने के लिये संयुक्त प्रान्तीय बैङ्किंग इंक्वाइरी कमेटी ने ज़ोरों के साथ सिफ़ारिश की है।

सहकारिता की उन्नति समस्त भारत में एक सी नहीं हुई है। रोयल कमीशन के शब्दों में पंजाब, मद्रास और बम्बई के अतिरिक्त प्रान्तों में यह प्रथा ग्रामीण प्रजा तक बहुत कम पहुँची है। संयुक्त प्रान्त में केवल १·८ प्रतिशत लोग इससे लाभ उठा पाये हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि भारतीय कोआपरेटिव बैङ्किंग की उन्नति संतोष-जनक नहीं हो रही है। बीस वर्ष के प्रचार के बाद भारत में कृषि-उधार-सहकारी समितियों द्वारा उधार दी हुई पूँजी ३० करोड़ से अधिक नहीं बढ़ी। भारत के कृषकों पर अनुमानतः ९०० करोड़ रुपयों का ऋण समझा जाता है; अतः जहाँ ७ रुपया कोआपरेटिव सोसाइटी का एक कृषक परिवार की ओर लेना है, वहाँ २०० रु० महाजनों का उन पर चाहिये। इसके अलावा २५ वर्षों में एक लाख जनसंख्या पीछे ३३·५ समितियाँ* स्थापित हुई हैं, जो इसकी

* एक समिति में ४० सदस्यों का औसत है।

पिछड़ी हुई अवस्था की द्योतक है। इस सम्बन्ध में सर डेनियल हेमिल्टन् ने निराशाजनक शब्दों में यह कहा है :—

"हमारे यहाँ (भारत में) सात लाख गाँव हैं। वर्तमान प्रगति के अनुपात से प्रत्येक गाँव में सहकारी समिति स्थापित होने के लिये सन् २२०० तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता है।"

भूमि-बन्धक बैङ्क

(LAND MORTGAGE BANK)

जो बैङ्क जुताऊ-भूमि को रहन रखकर लम्बी अवधि अर्थात् ५०-६० वर्ष तक के लिये उधार देते हैं, उन्हें भूमि-बंधक बैङ्क कहते हैं।

उधार लेनेवाला व्यक्ति अपनी भूमि को इन बैङ्कों में रहन कर देता है और उसकी ज़मानत पर उधार ली हुई रक़म को धीरे धीरे ५०-६० वर्षों में छोटी छोटी क़िस्तों से, जो ब्याज से कुछ ही अधिक रक़म की होती हैं, चुका देता है। इस प्रकार के बैङ्क ज्वाइण्ट स्टाक बैंक या व्यावसायिक बैङ्क के समान और कोई धन्धा नहीं करते और न चल्लू खाते में तथा थोड़ी अवधि की मियादी अमानतें, जमा रखते हैं। ये आम तौर पर लम्बी मियाद के लिये रक़में जमा रखकर और डिबेञ्चर जारी करके पूँजी बढ़ाते हैं।

लम्बी अवधि के लिये अमानतें प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है, इसलिये अधिकतर ये बैंक डिबेञ्चर द्वारा पूँजी संग्रह करते

हैं। डिबेञ्चर छोटी रक़म के होते हैं, जिन्हें साधारण स्थिति के लोग भी ख़रीद सकने में समर्थ हो सकते हैं।

इस प्रकार के बैंकों का सूत्रपात सर्वप्रथम जर्मनी में हुआ है। वहाँ इनके द्वारा कृषि की पर्याप्त उन्नति हुई है। उसको देखकर दूसरे देशों ने भी अपने यहाँ इस प्रकार के बैंकों का प्रचार बढ़ाया है। अनेक देशों में इन बैंकों को सरकार से यह क़ानूनी सुविधा प्राप्त है कि ये प्रतिज्ञानुसार कृषक के रुपया न चुकाने पर भूमि पर बिना अदालती कार्रवाई किये अधिकार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार इस प्रकार के बैंकों को हर तरह से अधिक सहायता प्रदान करती है—ये तीन प्रकार के होते हैं :—

१—सहकारी (Co-operative)
२—असहकारी (Non-co-operative)
३—अर्ध-सहकारी (Quasi-co-operative)

भारत में केवल पहिली श्रेणी के बैंकों का कोआपरेटिव क़ानून के आधीन स्थापित होना आरम्भ हुआ है। इस प्रकार के बैंक पञ्जाब, मद्रास, बम्बई और छोटे रूप में आसाम और बंगाल में काम कर रहे हैं, इनकी कुल संख्या ६४ है :—

पंजाब	१२
मद्रास	४२ (इस प्रान्त में सेण्ट्रल मोर्टगेज बैंक भी है।)
बम्बई	३
बंगाल	२
आसाम	५
जोड़	६४

शेष प्रान्तों में ऐसे बैंक नहीं हैं। वहाँ अनुभव रूप में चालू करने के लिये सम्बन्धित प्रान्तीय बैंकिंग इन्क्वाइरी कमेटियों ने सिफ़ारिशें की हैं।

पोस्ट-आफ़िस-सेविंग्ज़-बैङ्क

इम्पीरियल-बैंक, ज्वाइण्ट-स्टाक बैंक और कोआपरेटिव बैंकों ने अपने यहाँ दूसरी प्रकार की जमाओं के साथ साथ सर्व-साधारण द्वारा बचाई हुई पूँजी को जमा करने के लिये सेविंग्ज़ बैंक के नाम से खाते खोल रखे हैं, लेकिन इस प्रकार की बचत को जमा करने में प्रमुख स्थान पोस्ट-आफ़िस-सेविंग्ज़-बैंक ने प्राप्त कर रखा है। भारत में इस प्रणाली का सूत्रपात सन् १८३३ ई० से हुआ है। आरम्भ में सरकारी सेविंग्ज़ बैंक प्रेसीडेन्सी शहरों में खोले गये थे। सबसे पहिला गवर्नमेण्ट सेविंग्ज़ बैंक १ नवम्बर सन् १८३३ ई० को कलकत्ते में स्थापित हुआ था। इसके बाद सन् १८७० में चुने हुये ख़ज़ानों से सम्बन्धित ज़िला सेविंग्ज़-बैंक खोले गये। सन् १८८२ ई० में एक बहुत उपयोगी पोस्ट-आफ़िस सेविंग्ज़ बैंक-सम्बन्धी क़ानून पास हुआ तब से पोस्ट-आफ़िस सेविंग्ज़ बैंकों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। पोस्ट-आफ़िस का विस्तृत और सुदृढ़ संगठन है। प्रत्येक अच्छे बड़े गाँव के पोस्ट-आफ़िस में सेविंग्ज़ बैंक का धन्धा होता है। इनमें छोटी छोटी अमानतें बहुत अधिक जमा होती हैं, जिनमें अधिकतर जमा करनेवाले मध्य श्रेणी के तनख़्वाहदार

नौकर होते हैं। सन् १९२८ के अन्त तक १२,३२६ सेविंग्ज़-बैंक थे, जिनमें २६,०६,०७१ जमा करनेवालों के ३२,६६,६८,१८८) रु० जमा थे। इससे यह प्रगट होता है कि प्रत्येक पोस्ट-आफ़िस में २६,८२७) रुपये और प्रत्येक जमा करनेवाले के पीछे १२६) रुपये जमा थे। सन् २८ के बाद सम्भव है थोड़ी-बहुत और वृद्धि हुई हो, लेकिन अभी पोस्ट-आफ़िसों द्वारा और सुविधाएँ दी जाकर लोगों की बचाकर जमा करने की आदत को और बढ़ाया जा सकता है।

भारतवर्ष में सेविंग्ज़-बैंक के खातों और उनमें जमाशुदा रक़मों की संख्या संसार के किसी भी दूसरे देश की तुलना में बहुत ही कम है। इसका कारण यह है कि भारत की अधिक जनसंख्या देहात में रहती है। उसमें से भी अधिकांश ऋण के भार से ऐसी दबी हुई है कि सेविंग्ज़ बैंक में जमा करने के लिये १ पाई भी नहीं बचा पाती। जो थोड़ी-बहुत संख्या बचानेवाली है, वह अनुकूल साधन न होने से या तो ज़मीन में गाड़ती है या ज़ेवर वग़ैरह बनाकर रखती है।

बीमा-कम्पनियाँ

बीमा-कम्पनियाँ भी भारतीय बैंकिंग की उन्नति का एक अंग है। एक बीमा-कम्पनी न केवल सेविंग्ज़ बैंक की तरह सर्व-साधारण को बचत करने के लिये उत्साहित करती है, बल्कि सर्वसाधारण की बचत को देश के व्यापार और उद्योग-धन्धों

को आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिये सदैव तत्पर रखने में सहायता देती हैं; इसलिये बिना इनके विवेचन के भारतीय बैंकिंग का अन्वेषण अधूरा रह जाता है।

बीमा कम्पनियाँ मनुष्य के जीवन के बीमे के अतिरिक्त जल और अग्नि से नष्ट होनेवाले चल और अचल पदार्थों का और कुछ प्रकार की दुर्घटनाओं का बीमा भी चुकाती हैं। भारत में जीवन-बीमा-प्रणाली का जन्म अंग्रेज़ी राज्य के संस्थापन के बाद हुआ है, लेकिन व्यापारिक राहदारी-माल (Goods in transit) का बीमा भारत में अधिक प्राचीन काल से चला आता है। जोखमी हुण्डी ख़रीदनेवाला ठीक ऐसा ही काम करता था जैसा कि आजकल बीमा कम्पनियाँ करती हैं।*

भारत में कुल २७७ (सन् १९३० ई०) बीमा कम्पनियाँ हैं। इनमें १३० भारतीय और १४७ विदेशी हैं। भारतीय कम्पनियों में ९२ कम्पनियाँ केवल जीवन-बीमा का काम करती हैं, १८ जीवन-बीमा के साथ दूसरी प्रकार का बीमा भी करती हैं। २० कम्पनियाँ केवल दूसरी प्रकार का बीमा करती हैं, जीवन-बीमा का काम नहीं करतीं। विदेशी कम्पनियों में ९ कम्पनियाँ

---

* The buyer of such hundis (Jokhami) therefore acts, as an insurance Agent. "*Indigenous Banking in India*" *P. 78*.

केवल जीवन-बीमा, १४ कम्पनियाँ जीवन व दूसरी प्रकार का और १२४ कम्पनियाँ जीवन-बीमा को छोड़कर दूसरी प्रकार का बीमा करती हैं।

बैंकिंग का सम्बन्ध अधिकांश में जीवन-बीमा कम्पनियों से ही है; क्योंकि सर्वसाधारण की बचत वापस देने के लिये इन्हीं में जमा होती है, इसलिये यहाँ विशेष तौर से इन्हीं पर विचार किया जाता है।

भारतीय बीमा-कम्पनियों का व्यवसाय दूसरे देशों की समता में अभी तक बहुत पिछड़ा हुआ है, हालाँकि यहाँ जीवन-बीमा का प्रचार १९ वीं सदी के मध्य ही में आरम्भ हो गया था। सबसे पहिली जीवन-बीमा कम्पनी का मद्रास प्रान्त में, मद्रास इक्वीटेबल कम्पनी के नाम से सन् १८२९ ई० में जन्म हुआ था, किन्तु महायुद्ध के बाद इसका अन्त हो गया। पुरानी कम्पनियों में सबसे प्रसिद्ध भारतीय कम्पनी, जो आज तक उत्तरोत्तर उन्नति करती चली आ रही है, बम्बई की ओरियण्टल कम्पनी है, जो सन् १८७४ ई० में स्थापित हुई थी। तत्पश्चात् स्थापित होनेवाली अनेक कम्पनियाँ हैं, जिन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की है, लेकिन इनकी विशेष उन्नति सन् १९२० ई० के बाद आरम्भ हुई है:—

बीमा कम्पनियों का प्रगति-सूचक कोष्ठक*

वर्ष	वर्षान्तर्गत काम	वर्ष के अन्त में रहा हुआ काम
१६२०	५१७ लाख	३१ करोड़
१६२१	५४६ ,,	३८ ,,
१६२२	५६४ ,,	३७ ,,
१६२३	५८५ ,,	३६ ,,
१६२४	६८६ ,,	४२ ,,
१६२५	८१५ ,,	४७ ,,
१६२६	१०३५ ,,	५३ ,,
१६२७	१२७७ ,,	६० ,,
१६२८	१५४१ ,,	८१ ,,
१६२६	१७२६ ,,	८२ ,,
१६३०	१६५० ,,	८६ ,,

उपरोक्त कोष्ठक से पता चलता है कि सन् १६२० ई० से सन् १६३० ई० तक लगभग तिगुनी उन्नति हुई है। दूसरे देशों में यह धन्धा कहीं अधिक मात्रा में बढ़ा हुआ है। उनसे तुलना करने पर हम अपने आपको सबसे पीछे पाते हैं। यथा:—

* The Indian Insurance Year-book 1931. P. 4

[प्रति मनुष्य पीछे बीमे का तुलनात्मक कोष्ठक]*

देश	प्रति मनुष्य (डालर)	प्रति मनुष्य (रुपया)
संयुक्त राज्य अमेरिका	८४३	२३१८.२
कनाडा	६४०	१८६०.०
न्यूज़ीलैण्ड	३५८	९८४.५
आस्ट्रेलिया	२७३	७५०.७
संयुक्त प्रदेश	२६६	७३१.५
स्वीडन	२०५	५६३.७
इटली	१५२	४१८.०
नारवे	१३७	३७६०.७
नेदरलैण्ड	१२३	३३८.२
भारतवर्ष	२	५.५

भारतीय बीमा-कम्पनियों के पास सर्वसाधारण की २७ करोड़ के लगभग पूँजी है, जिसका ७६ प्रतिशत सरकारी ज़मानतों पर लगा हुआ है, लगभग १ प्रतिशत पोलिसियों की वसूल-शुदा रक़म को ज़मानत पर उधार दे रक्खा है और ३$\frac{१}{३}$ करोड़ के लगभग भारत के बाहर लगाया हुआ है। विदेशी कम्पनियों के पास भारतवासियों की लगभग ३४ करोड़ की सम्पत्ति है। इसके

* Indian Finance Year-book 1932 P. 113.

में भिन्न भिन्न मत हैं। "कलकत्ता के प्रोफ़ेसर रामचन्द्र राव तो इसे फ़ारसी भाषा का शब्द बतलाते हैं, जिसका अर्थ है, संग्रह करना (To collect)। दूसरे मिस्टर सी० एन० कूक का कथन है कि यह शब्द हिन्दी और हिन्दू का अपभ्रंश है"।* बम्बई के प्रोफ़ेसर टैनन के शब्दों में हुंडी शब्द संस्कृत के 'हुण्ड' शब्द से बना है, इसका अर्थ करते हुए बंगला के शब्द कल्पद्रुम कोष में लिखा है "राशिः करोतीत्यर्थः" अर्थात् धन संग्रह करना। हुंडी भी धन संग्रह करने का ही काम करती है। इसका लिखनेवाला अपना इधर उधर पड़ा हुआ रुपया बड़ी आसानी के साथ संग्रह कर सकता है। अस्तु, इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'हुण्ड' शब्द से होना अधिक सही है। इसके विशद प्रचार के सम्बन्ध में अति प्राचीन दो-तीन कथायें भी लोक में प्रसिद्ध हैं।

कथायें—(१) वस्तुपाल ने एक हुंडी दस करोड़ रुपये की अहमदाबाद के एक नगरसेठ पर बारहवीं सदी में की थी। इसी रक़म से दिलवारा का मन्दिर सन् ११९७ और १२४७ के बीच में बनाया गया है। (२) दूसरी प्राचीन और प्रसिद्ध कथा नृसिंह मेहता के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें लिखा है कि जूनागढ़ के नृसिंह मेहता ने द्वारिका के साँवला सेठ पर लगभग २५०० वर्ष पहले भगवान् कृष्ण के ज़माने में हुंडी की थी। (३) इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि शिवाजी के समय में सूरत के आत्मा-

---

* Journal of the Indian institute of Bankers, Jan. 1932., P. 27.

राम बुखानन् के यहाँ बड़ा विस्तृत साहूकारी धन्धा था। उसकी हुंडियाँ सुदूरस्थ स्थानों में सिकारी जाती थीं। उसकी ऊँची साख के सम्बन्ध में यह कथा प्रसिद्ध है—एक पुरुष को, जब वह जंगल में होकर गुजर रहा था, रुपये की आवश्यकता हुई। उसके पास आत्माराम बुखानन् की हुण्डियाँ थीं।* उनमें से एक को उसने वृक्ष की एक शाखा से बाँध दिया। एक व्यापारी ने जो उसी मार्ग से होकर गुज़र रहा था, यह समझकर कि वह एक बड़े साहूकार की हुण्डी है, वहीं उस हुण्डी का रुपया दे दिया।

हुण्डी की व्याख्या—यद्यपि हुण्डी का विस्तृत व्यवहार एक बड़े प्राचीन काल से चला आता है, परन्तु अभी तक इसकी कोई व्याख्या किसी क़ानून में उपलब्ध नहीं है, निगोशियेबिल इन्स्ट्रूमेण्ट ऐक्ट की दफ़ा ५ में बिलस आव् एक्सचेञ्ज की व्याख्या की गई है, जो बिल, प्रोमेसरी नोट, चेक और बहुधा हुण्डियों पर लागू होती है। हुण्डियों के झगड़े सिकारने के समय जहाँ जैसा रिवाज और अमल होता है, उसके अनुसार तय किये जाते हैं। जहाँ विशेष रिवाज नहीं होता है, वहाँ क़ानून में किये गये अर्थानुसार बिल आव् एक्सचेञ्ज के तौर पर अमल किया जाता है, क्योंकि स्टाम्प ऐक्ट में

---

* पुराने ज़माने में रुपया साथ में ले जाना बड़ा जोखिम का काम था; इसलिये लोग बहुधा अपने साथ मोतबिर साहूकारों की हुण्डियाँ रक्खा करते थे।

बिल आव् एक्सचेञ्ज की व्याख्या के अन्तर्गत हुण्डी को शामिल कर लिया गया है। साधारण शब्दों में हुण्डी का अर्थ यह है—"हुण्डी आम तौर पर शर्त-रहित एक आज्ञा-पत्रिका होती है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को आज्ञा देता है कि माँगने पर या कुछ निर्धारित समय पश्चात् एक ख़ास रक़म, जो उसमें लिखी गई हो, उस व्यक्ति को, जिसका नाम उसमें लिखा हो, दे दी जाय।" हुण्डी की इस व्याख्या और बिल आव् एक्सचेञ्ज की व्याख्या में एक विशेष अन्तर है; क्योंकि अंग्रेज़ी बिल सर्वथा शर्त या हिदायत-रहित होता है और जोखमी हुण्डी कुछ शर्त या हिदायत के साथ होती है, जिसके पूरा होने पर रुपया दिया जाता है। इस प्रकार की हुण्डी पहले ज़माने में बहुधा की जाती थी। आजकल इसका रिवाज नहीं है।

हुण्डियों का उद्देश्य—हुण्डी न केवल अन्तर्राष्ट्रीय "विनिमय-पत्र" का काम करती है, प्रत्युत इससे कई काम लिये जाते हैं। जो मुख्यतः ये हैं—(१) निश्चित समय पर वापिस किये जाने की शर्त पर उधार भी लिया जा सकता है। (२) दूसरे दिसावर भेजे जानेवाले माल पर उसकी बिक्री होने से पहले हुण्डी के द्वारा एडवान्स (पेशगी) लिया जा सकता है (३) इसके द्वारा एक दिसावर से दूसरे दिसावर में रुपये का भुगतान किया जा सकता है। हुण्डी से केवल वे ही व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं, जिनकी साख बाज़ार में अच्छी

होती है। हर एक व्यक्ति जो बाज़ार में अपरिचित हो अथवा प्रतिष्ठित न हो, लाभ नहीं उठा सकता।

हुण्डियों की श्रेणियाँ—हुण्डियाँ दो प्रकार की होती हैं— (१) दर्शनी, (२) मुद्दती। इनका लिखनेवाला कहलाता है "लिखनेवाला धनी (Drawer)", जिसके ऊपर यानी जिसको रुपया चुकाने के लिये सम्बोधन करके लिखी जाती है, उसको "ऊपरवाला धनी (Drawee)" कहते हैं और जिसके हक़ में लिखी जाती है, उसको "राख्यावाला धनी (Payee)" कहते हैं।

दर्शनी-हुण्डी—दर्शनी-हुण्डी उसको कहते हैं, जिसका रुपया माँगते ही या दिखाते ही दिया जाता है। अंग्रेज़ी में इसको (Sight or demand bill) कहते हैं। इस प्रकार की हुण्डियों में कई जगह रिवाज के अनुसार ख़रीदने, बेचने या लिखने के रोज़ से रुपया दिलाने की तारीख़ कुछ रोज़ बाद की लिखी जाती है, लेकिन हुण्डी लिखने की तारीख़ भी वही लिखी जाती है, जो दिखाने की होती है; जैसे—१ मार्च को रतलाम का १ व्यापारी रामलाल-शिवलाल, दूसरे व्यापारी को १०००) की बम्बई की दर्शनी हुण्डी बेचता है तो वह बम्बई में रुपया देने की ६ तारीख़ दर्ज करेगा और नीचे भी जो लिखने की तारीख़ से मुराद है ६ मार्च दर्ज करेगा।

दर्शनी हुण्डियों पर पहले स्टाम्प ड्यूटी लगती थी; किन्तु अब बन्द हो गई है। दर्शनी हुण्डियाँ ४ प्रकार की होती हैं—(१) धनीजोग, (२) शाहजोग, (३) फ़रमानजोग, (४) देखाड़नार जोग।

धनीजोग उस हुण्डी को कहते हैं, जिसका रुपया केवल उसी व्यक्ति को मिल सकता है, जिसके हक़ में वह लिखी गई है या जिसके ऊपर लिखी गई है।

शाहजोग उस हुण्डी को कहते हैं, जिसका रुपया मोतबिर व्यक्ति या फ़र्म ही को दिया जा सकता है। 'मोतबिर' उस व्यक्ति या फ़र्म से मुराद है, जो बाज़ार में जाना या जानी हुई हो या जिसको ऊपरवाला धनी जानता पहचानता हो—यह एक प्रकार की क्रोस चेक की तरह होती है। यदि 'शाह' किसी अनधिकारी व्यक्ति की ओर से या खोई हुई, जाली अथवा झूठी हुण्डी का रुपया संग्रह कर लेगा तो ६% सूद-सहित वह हुण्डी का रुपया वापस देने का ज़िम्मेदार है।*

फ़रमान जोग—हुण्डी का रुपया 'राख्यावाला' की हिदायत के अनुसार दिया जा सकता है, अंग्रेज़ी में इसको Payable to Order bills कहते हैं।

---

* Bansidhar V/S Jwala Prasad 16 Bombay L. R. 434; 1 Lah. 429 (1920)

देखाड़नार जोग—हुण्डी का रुपया प्रत्येक हुण्डी दिखानेवाले व्यक्ति को मिल सकता है, यह Bearer चेक के तौर पर है। इसका रिवाज इसी सदी से बम्बई प्रान्त में चालू हुआ है। देखाड़नार हुण्डी को रिवाज में लाने का श्रेय सर्राफ़ा एसोसियेशन बम्बई को है।*

इन उपरोक्त चार प्रकार की हुण्डियों में शाहजोग हुण्डी ही अधिक व्यवहार में लाई जाती है; क्योंकि इसमें गुम होने पर या धोखा देकर अनजान आदमी के रुपया वसूल करने की बहुत कम सम्भावना होती है। नमूने के लिये हुण्डी का मज़मून परिशिष्ट नं० १ में देखिये—

मुद्दती हुण्डी उस हुण्डी को कहते हैं, जिसका रुपया उस मियाद के बाद मिलता है, जो उसमें लिखी हुई होती है। ऐसी हुंडियाँ ११, २१, ४१, ५१, ६१ और इस तरह से ३६१ दिन तक की होती हैं। राजपूताना व सेण्ट्रल इण्डिया में ४१ व ६१ दिन की मियादी, बम्बई में ४१, पंजाब में १२१ और यू० पी० में ६१ व ६१ दिन, बंगाल में ६१ दिन की अधिकतर व्यवहार में लाई जाती हैं। इनको अंग्रेज़ी में Deferred and

---

* Bombay Provincial Banking Enquiry Committee 1929-30 para 194.

Usance Bills कहते हैं। इन पर स्टाम्प ड्यूटी इस प्रकार ली जाती है :—

२००) तक	≡)	५०००) से ऊपर ७५००) तक	६III)
२००) से ऊपर ४००) तक	I=)	७५००) " " १००००) "	९)
४००) " " ६००) "	II-)	१००००) " " १५०००) "	१३II)
६००) " " ८००) "	III)	१५०००) " " २००००) "	१८)
८००) " " १०००) "	III≡)	२००००) " " २५०००) "	२२II)
१०००) " " १२००) "	१=)	२५०००) " " ३००००) "	२७)
१२००) " " १६००) "	१II)	और ३००००) से ऊपर प्रत्येक	
१६००) " " २५००) "	२I)	१००००) या इसके किसा भाग	
२५००) " " ५०००) "	४II)	पर ९) अधिक।	

ये हुण्डियाँ अधिकतर उधार या माल पर एडवान्स लेने के लिये जारी की जाती हैं। इन हुण्डियों में और तो सभी बातें दर्शनी हुण्डी के समान होती हैं, केवल ये देखाड़नार जोग नहीं होती हैं।

जोखमी हुण्डी—प्राचीन काल में जोखमी हुण्डी होती थी, जो भेजे हुये माल की क़ीमत के बदले में की जाती थी, जैसे अंग्रेज़ी में Documentry bill of exchange होते हैं। इसमें कई शर्तें दर्ज रहती थीं, उनके अनुसार अगर माल रास्ते में गुम जाय अथवा नष्ट हो जाय तो लेखक वा 'राख्यावाला' उस नुक़सान को भुगतता था। ऊपरवाला धनी का हित सर्वथा सुरक्षित

रहता था। ऐसी हुण्डियों के ख़रीदनेवाले एक बीमा-कम्पनी के एजेण्ट के तौर पर होते थे। इसमें ३ आसामियाँ होती हैं।

(१) माल भेजनेवाला या लेखक
(२) हुण्डी वाला (हुण्डी का ख़रीदनेवाला)
(३) मालवाला (माल पानेवाला)

मान लीजिये कि 'माल भेजनेवाला' एक दूकानदार कच्छ से बम्बई, जहाज़ के द्वारा अपने आढ़तिया को माल भेजता है। तब वह माल को क़ीमत वसूल करने के लिये एक हुंडी मालवाले (माल पानेवाले) के ऊपर उस माल की क़ीमत के बराबर लिखकर हुण्डीवाले या बीमावाले को बेचता है और बीमा का शुल्क (Premium) काटकर बाक़ी रुपया नक़द वसूल कर लेता है। हुंडीवाला हुण्डी को बम्बई अपनी दूकान या आढ़तिया के नाम भेज देता है। वह हुण्डी उस माल के, जिसकी क़ीमत के लिये वह की गई, बम्बई सुरक्षित पहुँच जाने पर मालवाले की दूकान पर उपस्थित की जावेगी। वह या तो उसमें लिखा रुपया चुकाकर माल छुड़ा लेगा या माल लेने की इच्छा न होने की हालत में उस माल को हुण्डीवाले के हवाले कर देगा। हुण्डीवाला अपने नफ़ा-नुक़सान के लिये माल भेजनेवाले से रक़म वसूल कर सकता है, लेकिन मालवाले (माल पानेवाले) पर कोई नालिश दायर नहीं कर सकता। यदि सारा माल रास्ते में गुम जावे या नष्ट हो जावे तो हुण्डी

उपस्थित नहीं की जावेगी और उसका नुक़सान हुण्डीवाले (हुण्डी ख़रीदनेवाले) को भुगतना पड़ेगा।

रिश्रायती दिन (Days of Grace)—इनको साहूकारी भाषा में गिलास के दिन कहते हैं। अंग्रेज़ी बिल श्राव् एक्सचेञ्ज में ३ दिन मिलते हैं, किन्तु मुद्दती हुण्डियों में रिश्रायत के दिनों का तरीक़ा भिन्न है। दर्शनी हुण्डी में, जो ११ दिन से कम की होती है, बिलकुल भी रिश्रायत के दिन नहीं मिलते। मुद्दती हुण्डी में ११ दिन या इससे ऊपर २० दिन तक की मुद्दती हुण्डी में ३ दिन रिश्रायत के मिलते हैं। २० दिन से ऊपर के दिनों की हुण्डी में ५ दिन रिश्रायत के मिलते हैं।

हुण्डियों की लिया-बेची—एक जगह से दूसरी जगह पर सुरक्षित रीति से रुपया भेजने के लिये जैसे नोटों का व्यवहार होता है, उसी तरह व्यापारी लोग अपनी सुगमता के लिये हुण्डी का व्यवहार करते हैं। नोटों में रजिस्ट्रेशन फ़ीस =) सैकड़ा अधिक लगता है तथा एक रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़े का ३०००) से ज़्यादा का बीमा नहीं चुकाया जाता; इसलिये अधिकांश में व्यापारी लोग हुण्डियों ही द्वारा एक से दूसरे देश में रुपये भेजते हैं।

नियमानुसार लिखी हुई हुण्डी बाज़ार भाव से हर वक़्त, हर जगह और हर एक को बेची जा सकती है और हर एक ख़रीद सकता है। बेची हुई हुण्डी पुनः बेची जा सकती है।

इस तरह एक हुण्डी कई दफ़ा बिक सकती है और सुदूरस्थ देशों में रुपया चुकाने के लिये भेजी जा सकती है।

मान लो अमरावती का एक व्यापारी कोटे से चने ख़रीदकर मँगाता है, अमरावती का दूसरा व्यापारी रूई ख़रीदकर बम्बई भेजता है और कोटे का एक व्यापारी बम्बई से शक्कर और कपड़ा मँगाता है। अब अमरावती के एक व्यापारी को चने की रक़म कोटा भेजनी है, दूसरे व्यापारी को बम्बई से रूई की रक़म मँगानी है और कोटे के व्यापारी को कपड़े और शक्कर की रक़म बम्बई भेजनी है। इन तीनों जगह का भुगतान एक हुण्डी से इस तरह हो सकता है कि अमरावती का चने मँगानेवाला व्यापारी अपने शहर के बम्बई रूई भेजनेवाले व्यापारी की हुण्डी ख़रीद लेगा और रुपया उसको अमरावती में चुका देगा। यह हुण्डी वह कोटे के व्यापारी के यहाँ भेज देगा। कोटे में चने भेजनेवाला व्यापारी इस हुण्डी को बम्बई से कपड़ा और शक्कर मँगानेवाले अपने शहर के व्यापारी को बेच देगा और नक़द रुपया ले लेगा। यह व्यापारी बम्बई के व्यापारी को, जिसके यहाँ से या जिसकी मारफ़त इसने शक्कर व कपड़ा मँगाया है, भेज देगा। वह व्यापारी बम्बई में उस व्यापारी को, जिसके ऊपर हुण्डी लिखी हुई है, दिखाकर रुपये ले लेगा और हुण्डी पर रसीद लिखकर दे देगा। इस तरह तीनों स्थानों के व्यापारियों को अपना अपना रुपया आसानी से मिल गया और कोई दिक़्क़त नहीं आई।

हुण्डी के भाव में कमीबेशी का कारण—जब हुण्डी ख़रीदनेवाले ज़्यादा और बेचनेवाले कम होते हैं तो हुण्डी का भाव १०० से ऊपर ॥) ।॥) अधिक बढ़ जाता है और जब बेचनेवाले अधिक और ख़रीदनेवाले कम होते हैं तब १०० से ॥) ।॥) तक नीचे गिर जाता है। इस कमीबेशी को 'हुण्डावन' कहते हैं। लाभ उठाने के लिये व्यापारी लोग आवश्यकता न होने पर भी भविष्य में लाभ होने की दृष्टि से हुंडी की लियाबेची करते रहते हैं।

हुण्डी का लिखना, बेचाण करना

(ENDORSEMENT)

दिखाना, सिकारना इत्यादि

लिखना—हुण्डी के लिखने का नमूना परिशिष्ट नं० १ में देखिये।

बेचाण करना (Endorsement)—बेचाण पाँच प्रकार की होती है; यथा :—(१) लेणी-भेजी, (२) बटावणी-भेजी (३) ख़रीद-भेजी, (४) हुण्डी-बेची, (५) विशेष बेचाण।

(१) लेणी-भेजी उस हुण्डी पर लिखते हैं, जो उसी जगह भेजी जाती है, जहाँ के ऊपर वह हुण्डी लिखी गई है अर्थात् जब बम्बई के व्यापारी पर की हुई हुण्डी बम्बई भेजी जावेगी तब उस पर लेणी-भेजी लिखा जावेगा।

(२) **बटावणी-भेजी** उस हुण्डी पर लिखते हैं, जो तीसरी जगह भेजी जाती है, जैसे बम्बई की हुण्डी बम्बई न भेजकर दिल्ली भेजी जावे, उस पर बटावणी भेजी लिखा जायगा।

(३) **ख़रीद-भेजी** उस अवस्था में लिखा जावेगा जब कि हुण्डी का भेजनेवाला हुण्डी मँगानेवाले की जोखम पर हुण्डी ख़रीद कर भेजेगा। उदाहरणार्थ—बम्बई के एक व्यापारी ने कोटे के एक व्यापारी के यहाँ बीस बोरी बादाम अपने घरू बेचने के लिये भेजी और यह आदेश दिया कि इसकी बिक्री की रक़म की हुण्डी ख़रीदकर भेज देना। कोटे का व्यापारी बादाम की बिक्री की रक़म, कोटे के किसी व्यापारी से हुण्डी ख़रीदकर बम्बई भेजेगा। उसमें वह ख़रीद-भेजी करके लिखेगा। इसमें हुण्डी ख़रीदकर भेजनेवाला व्यापारी उसके न सिकारने की जोखम से सुरक्षित रहता है।

(४) **हुण्डी-बेची** उस वक़्त लिखते हैं जब कि 'राख्या वाला-धणी' या वह व्यक्ति, जिसके पास कारबार के सम्बन्ध में हुण्डी पहुँची हो, नक़द रुपया लेकर किसी को मुन्तक़िल करे।

(५) **विशेष बेचाण** उसको कहते हैं, जो लेणी-भेजी के स्थान पर काम में लाई जाती है और उसमें यह हिदायत होती है कि इसका रुपया केवल अमुक व्यक्ति को दिया जावे। उस हालत में उस हुण्डी का रुपया उस अमुक व्यक्ति ही को मिलेगा और वह दूसरे को मुन्तक़िल न हो सकेगी।

सिरा या अरडास—साधारण बेचाण के अतिरिक्त "ऊपरवाला धणी नहीं सिकारे तो अमुक धणी को दिखाई जावे" इबारत बढ़ाई जाती है, इसको सिरा या अरडास कहते हैं। इस प्रकार सिरा मारने पर अर्थात् उक्त इबारत लिखने पर ऊपरवाला धणी नहीं सिकारे तो वह हुण्डी उस व्यक्ति को दिखाई जायगी, जिसके लिये बेचाण में हिदायत की गई है। इसको अंग्रेज़ी में भारतीय क़ानून के अनुसार Drawee in case of need कहते हैं। यह व्यक्ति ऊपरवाला धणी का स्थान ग्रहण करके बेचाण करनेवाले आसामी के खाते हुण्डी सिकार देता है। यह सिरा इसलिये मारा जाता है कि हुण्डी के न सिकरने पर निकराई-सिकराई का, जो लिखनेवाले को हर्जे के रूप में देनी पड़ती है, लाभ सिरा मारनेवाले को मिल जाता है। यदि जिसके नाम सिरा मारा गया है, वह भी हुण्डी को नहीं सिकारे तो सिरा मारना कोई मूल्य नहीं रखता और साधारण बेचाण के समान उसका असर रहता है। ख़रीद भेजी बेचाण करनेवाले के सिवाय हर एक प्रकार का बेचाण करनेवाला (Endorser) हुण्डी के जायज़ काबिज़ के प्रति रुपये का ज़िम्मेदार है।

निशाणी—निशाणी का अर्थ है 'बाबत' (On account of) इसके लिखने की हर वक्त आवश्यकता रहती है। इससे ऊपर-वाले धणी को यह मालूम करने में सुभीता रहता है कि हुण्डी का रुपया किसके खाते नावें लिखा जायगा।

हुण्डी का उपस्थित करना—जिस तारीख़ को हुण्डी पहुँचती हो, उस दिन या बाद में कभी भी जिसके ऊपर वह हो उसे स्थानीय रिवाज के मुताबिक़ दिखाई जाती है। यदि ऊपर-वाला धणी हुण्डी सिकारना स्वीकार करेगा तो उसका रुपया उसी रोज़ या बाद में जैसा रिवाज होगा, भेज देगा। यदि उसको सिकारना मञ्जूर न होगा तो खड़ी बोल देगा।

खड़ी रखना या नहीं सिकारना:—हुण्डी लिखने के साथ ही हुण्डी का लेखक ऊपरवाले धणी को हुण्डी की नक़ल लिखकर सिकारने की हिदायत करता है। नक़ल में साफ़ तौर से लेखक, राख्यावाला, ऊपरवाला धनी का नाम, अदायगी की तारीख़, नम्बर व निशानी लिखी हुई होती है। जब तक नक़ल नहीं मिल जावे, ऊपरवाला धणी बिना उक्त बातें मिलान किये हुण्डी नहीं सिकार सकता; इसलिये ऐसी हालत में खड़ी बोलता है। खड़ी बोली हुई हुंडी ३ या ६ दिन तक रिवाज के मुताबिक़ सिकारने के इन्तज़ार में, उपस्थित करनेवाले के पास रक्खी रहती है। इस अवधि के अन्दर तार द्वारा या पत्र द्वारा समाचार प्राप्त कर लिये जाते हैं और समाचार आते ही हुण्डी सिकार दी जाती है। यदि लिखनेवाले धणी का रुपया ऊपरवाले धनी के पास हुण्डी से कम हो या न हो और खड़ी रहने की अवधि के अन्दर भी रुपया न आवे तथा ऊपरवाला धणी लेखक की रक़म से अधिक की हुण्डी सिकारना न चाहे तो सिकारने से इंकार कर सकता है। इसके अलावा अगर

हुण्डी के लिखने में कोई त्रुटि जैसे दस्तख़त वग़ैरह न करना या सूचना के अभाव में अन्य व्यक्ति के दस्तख़त होना आदि रहने से भी सिकारने से इंकार कर दिया जाता है। इस प्रकार हुण्डी न सिकारने से लेखक की स्थिति पर सन्देह उत्पन्न होता है और कभी कभी दिवालिया समझा जाने लगता है। हुण्डी के सिकारने से इंकार होने पर हुण्डी पंचायती दूकान या देशी बैंकर्स एसोसिएशन के यहाँ भेजी जाती है। वह ऊपरवाला धणी को बुलाकर उस हुंडी पर तस्दीक़ की मोहर लगा देती है। यह मोहर इस बात का प्रमाण होती है कि ऊपरवाले धणी ने हुण्डी सिकारने से इंकार कर दिया है। तत्पश्चात् हुण्डी सिलसिले से तत्सम्बन्धी आसामियों के पास होती हुई लिखनेवाले धणी के पास वापस आ जाती है। उसको उसी वक़्त हुण्डी की रक़म, निकराई-सिकराई, व्याज तथा अन्य-ख़र्च सहित देनी पड़ती है। निकराई-सिकराई २) रु० सैकड़ा तक होती है।

हुण्डी की प्रतिलिपियाँ—असली हुण्डी के खो जाने पर लेखक से उसकी प्रतिलिपि मिलती है। उसको 'पेठ' कहते हैं। यदि 'पेठ' भी गुम हो जाय तो दूसरी प्रतिलिपि दी जाती है, जिसको 'पर-पेठ' कहते हैं। यदि 'पर-पेठ' भी गुम जावे तो तीसरी प्रतिलिपि और दी जाती है, जिसको 'मेजर' कहते हैं। पहली दो प्रतिलिपियाँ तो लेखक द्वारा ही लिखी जाती हैं, किन्तु तीसरी प्रतिलिपि (मेजर) जिस शहर से हुंडी लिखी हुई होती है, वहाँ

के सर्राफ़ा पंचायत के पाँच पंचों की ओर से ऊपरवाले शहर के पाँच पंचों के नाम लिखी जाती है।

हुंडियों द्वारा ब्याज कमाना—पाठकों को यह तो भली भाँति मालूम हो गया होगा कि हुण्डियाँ भारत में विनिमय और भुगतान का उसी तरह का प्रधान साधन है, जैसे विदेशों में अंग्रेज़ी बिल आव् एक्सचेञ्ज; लेकिन ये ब्याज पर रुपया लगाने के लिये भी अच्छा साधन बन रही हैं। देशी बैङ्कर्स में बहुत से ऐसे हैं, जो हुण्डियाँ बेचते नहीं हैं, बल्कि दो या तीन महीने की मुद्दती हुण्डियाँ ख़रीदकर रख लेते हैं और अच्छा ब्याज कमाते हैं। बम्बई के मुल्तानी बैङ्कर इस धन्धे को विशेष तौर पर करते हैं, ऐसी मुद्दती हुण्डियाँ ।।) से ।।।) सैकड़ा मासिक तक कमी के साथ ख़रीदी बेची जाती हैं और पुनः इम्पीरियल बैङ्क द्वारा भी ख़रीद की जाती हैं। मुल्तानी बैंकर व इम्पीरियल बैंक के पुनः ख़रीदने में भाव का जो अन्तर होता है, वही मुल्तानी बैंकर कमाते हैं। भारतीय ज्वाइण्ट-स्टॉक बैंक भी इन हुण्डियों का लेन-देन करते हैं; किन्तु विदेशी बैंक मुद्दती हुण्डियों से कोई सरोकार नहीं रखते।

पुर्जा

हुण्डियों के अतिरिक्त दूसरा प्राचीन साख-पत्र पुर्जा है। इसका बङ्गाल प्रान्त में अधिक चलन है। यह उधार लेनेवाले की ओर

से देनेवाले के नाम उसमें लिखी हुई रक़म, उस व्यक्ति को और उस सूद की दर से, जिसका वर्णन उसमें होता है, देने के लिये एक प्रार्थना-पत्र होता है। अदायगी का समय उसमें नहीं लिखा जाता। इसका अनुमान या तो प्रचलित प्रथा के अनुसार किया जाता है या उस पुर्ज़े के साथ नत्थी किये हुए एक पर्चे पर समय लिख दिया जाता है। इस पर कोई गवाही नहीं होती। यह केवल उधार ली हुई रक़म की रसीद के रूप में होता है। इसका उपयोग थोड़े अवसर पर अर्थात् अधिक से अधिक ३ महीने की मुद्दत के लिये ली हुई उधार के वास्ते किया जाता है।

प्रोमेसरी नोट

प्रोमेसरी नोट वह लिखित दस्तावेज़ है, जिसमें बिना शर्त के लिखनेवाले के दस्तख़त से केवल एक नियत संख्या में नक़द रुपये अदा करने की प्रतिज्ञा इस प्रकार की गई हो कि एक ख़ास मनुष्य को या जिसको वह दिलावे, उसको या उस दस्तावेज़ के उपस्थित करनेवाले (हामिल) को उसमें लिखा हुआ रुपया दिया जावेगा। यह भी हुंडी की तरह दो प्रकार का बेचे जाने योग्य (Negotiable) साखपत्र होता है—दर्शनी और मुद्दती। मुद्दती प्रोमेसरी नोट बहुत कम लिखे जाते हैं। यह साख-पत्र दूसरे तमाम साखपत्रों से आसान हैं। इसका मज़मून निश्चित सा है। इसमें क़ानूनी कार्रवाई बहुत थोड़ी होती है। गवाही

नहीं होती; किन्तु तारीख़ होना आवश्यक है। यह काग़ज़ के एक तरफ़ लिखा जाता है और माँगने पर अदा करने योग्य (on demand) होता है, इस पर २५०) रुपये तक -) आने का इससे ऊपर १०००) तक =) आने का और तद् उपरान्त ।) आने का टिकट लगता है। मुद्दती प्रोमेसरी नोट पर मुद्दती हुंडी के अनुसार स्टाम्प लगाये जाते हैं। इसका प्रयोग मध्य-प्रान्त, संयुक्त-प्रान्त तथा भारत के अन्य प्रान्तों में पुराने ज़माने से था। अब इसको लगभग समस्त बैंकों ने थोड़ी-बहुत भाषा में परिवर्तन करके विशेष रूप से अपना लिया है। इससे इसका चलन बहुत बढ़ गया है।

चेक

प्रचार—भारत में चेकों का प्रचार आधुनिक बैंकों के जन्म के साथ हुआ है। बैंकों से लेन-देन रखनेवाले व्यक्तियों को इस साखपत्र से रुपया संग्रह करने और भेजने में हुंडियों की भाँति बड़ी सुविधा होती है। प्रत्येक देश में साख की वृद्धि करने के लिये यह आवश्यक है कि मुद्रा का प्रयोग कम किया जावे और इसके स्थान पर चेकों का चलन बढ़ाया जावे। यही कारण है कि तमाम प्रमुख देशों में चेकों के प्रचार के लिये हर प्रकार की सुविधा दी जा रही है। हमारे देश में भी इन पर से स्टाम्प ड्यूटी हटाई जाकर इनके प्रचार को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। क्लियेरिङ्ग हाउसों की स्थापना से इनका लेना-देना बड़ी आसानी से निपट

जाता है; इसलिये इनका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। लड़ाई से पहले अर्थात् सन् १९१३ ई० में पैंसठ हज़ार पैंतीस रुपये के चेक क्लियेरिङ्ग हाउसों द्वारा सिकारे गये थे। उसके बाद बढ़ते बढ़ते उनकी तादाद सन् १९२९ ई० में तिगुनी हो गई अर्थात् दो लाख तीन हज़ार आठ सौ सात के चेक क्लियेरिङ्ग हाउसों द्वारा सिकारे गये।

व्याख्या—चेक भी एक लिखित दस्तावेज़ होती है, जिसके द्वारा लेखक अपने बैंकर को यह हिदायत करता है कि उस व्यक्ति को, जिसका नाम उसमें लिखा है या उसकी हिदायत के अनुसार किसी दूसरे व्यक्ति को या उपस्थित करनेवाले किसी व्यक्ति को उसमें लिखी हुई रक़म अदा की जावे, लेकिन इसमें प्रोमेसरी नोट की तरह सूद की दर लिखी हुई नहीं होती। इसमें भी हुण्डियों की तरह तीन आसामियाँ होती हैं :—

(१) लेखक।

(२) ऊपरवाला।

(३) राख्यावाला।

चेक तीन प्रकार के होते हैं :—

श्रेणियाँ—(१) बेयरर (Bearer) इसका रुपया देखाड़नार हुण्डी की तरह बैंक के काउण्टर पर हर एक उपस्थित करनेवाले को मिल जाता है।

(२) ऑर्डर (Order) यानी हिदायती चेक, इसका रुपया उस व्यक्ति को दिया जाता है, जिसके लिये बैंक को

हिदायत की गई हो या जिसके नाम अन्तिम बार मुन्तक़िल हुआ हो।

(३) क्रॉस्ड (Crossed)—इसका रुपया किसी व्यक्ति या संस्था को नक़द नहीं दिया जाता; बल्कि बैंक के खाते में जमा किया जाता है। बेयरर और आर्डर चेक में राख्यावाला (Payee) के नाम के आगे तत्सम्बन्धी शब्द लिखे हुए होते हैं। इन दोनों प्रकार के चेकों को क्रास किया जाता है। पहचान के वास्ते चेक के सीधी ओर पूरी चौड़ाई पर दो समानान्तर रेखायें खींच दी जाती हैं। इस प्रकार क्रॉस किया हुआ चेक 'क्रोस्ड-चेक' कहलाता है। चेक वही लोग लिखते हैं, जिनके खाते बैंकों में होते हैं और उन्हीं फ़ार्मों पर लिखे जाते हैं; जो बैंक द्वारा अपने खातेदारों को चेकबुक के रूप में दिये जाते हैं।

बैंक-ड्राफ़्ट

हुण्डियों की भाँति बैंकों द्वारा जो ड्राफ़्ट उनकी निजी ब्राञ्चों या एजेण्टों पर लिखे जाते हैं, उनको बैंक-ड्राफ्ट कहते हैं। ये भी दर्शनी और मुद्दती दोनों प्रकार के होते हैं, लेकिन आम तौर पर दर्शनी लिखे जाते हैं। उनका मज़मून हिदायती चेक की भाँति होता है। इन पर स्टाम्प नहीं लगाया जाता।

बिल आव् एक्सचेञ्ज

ये बिलाशर्ती मुद्दती हुंडी के समान और देशी या विदेशी दोनों प्रकार के होते हैं उदाहरणार्थ:—'क' एक व्यापारी 'ख'

से १५०) रुपयों का माल एक महीने की उधार पर ख़रीदता है, इसलिये 'ख' बेचे हुये माल के बीजक के साथ एक महीने की मुद्दती हुण्डी 'क' पर लिखता है, उसको 'क' सिकारना स्वीकार कर लेता है तब माल या बिल्टी 'क' के हवाले कर दी जाती है। यह माल के परिवर्तन में लिखी हुई हुण्डी बिल ऑव् एक्सचेञ्ज कहलाती है। इसी प्रकार विदेशी बिल देश के बाहर रहनेवाले व्यापारियों पर लिखे जाते हैं। इनकी आम तौर पर ३ प्रतियाँ होती हैं, जो भिन्न भिन्न डॉक से इसलिये भेजी जाती हैं कि किसी एक प्रति के गुम जाने से रुपया मिलने में देर न हो और दूसरी प्रति से रुपया वसूल कर लिया जावे। तीनों प्रतियों में से किसी एक को सिकार देने पर शेष दोनों प्रतियाँ रद्द हो जाती हैं। ये आम तौर पर मुद्दती होते हैं।

एण्डोर्समेण्ट अथवा बेचान

हुंडियों की बेचान-प्रणाली पर ऊपर पर्याप्त रूप से लिखा जा चुका है। 'पुर्जा' बेचाण योग्य (Negotiable) नहीं है। प्रोमेसरी नोट यदि देशी भाषा में लिखा हो तब तो उसके लिये किसी विशेष नियम की पाबन्दी की आवश्यकता नहीं है, लेकिन अंग्रेज़ी भाषा में लिखा होने पर तथा अन्य साख-पत्र, जैसे—चेक, बैङ्क ड्राफ़्ट, बिल आव् एक्सचेंज पर, नियमित रूप से एण्डोर्स किया जाता है। अंग्रेज़ी में लिखे साख-पत्रों पर आम तौर से अंग्रेज़ी एण्डोर्समेण्ट स्वीकार किये जाते हैं। देशी भाषा के एण्डोर्समेण्ट

से लेनेवाले को बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़ती है। एण्डोर्समेण्ट आम तौर पर ३ प्रकार के प्रयोग में आते हैं—ख़ाली (Blank), विशेष (Special) और सीमित (Restrictive)।

ख़ाली एण्डोर्समेण्ट में केवल हस्ताक्षर पर्याप्त होते हैं।

विशेष एण्डोर्समेण्ट में जिसके पक्ष में एण्डोर्स किया जाता है, उसका नाम लिखा जाता है और उसको दूसरे के नाम पर मुन्तक़िल (Transfer) करने का अधिकार होता है।

सीमित एण्डोर्समेण्ट में साख-पत्र का रुपया केवल वह व्यक्ति पा सकता है, जिसके पक्ष में एण्डोर्समेण्ट किया गया है। वह दूसरे को मुन्तक़िल नहीं कर सकता।

१—इस अध्याय में के सब साखपत्रों के नमूने परिशिष्ट नं० १ में देखिये।

२—इन साखपत्रों के सम्बन्ध में विशेषकर क़ानूनी और व्यावहारिक बातें जानने के वास्ते लेखक की दूसरी पुस्तक "भारतीय बैङ्किङ्ग का व्यावहारिक और क़ानूनी ज्ञान" की प्रतीक्षा कीजिये।

पाँचवाँ अध्याय

बैङ्क और उद्योग-धन्धे

भारत में जितने ज्वाइंट-स्टाक-बैंक हैं, वे सब व्यापारिक शहरों और क़स्बों में ख़ज़ाञ्ची या रोकड़िया का काम करते हैं और थोड़ी-बहुत रुपयों के भुगतान में सुविधा और कुछ कुछ बड़ी बड़ी व्यापारिक फ़र्मों को मानी हुई ज़मानतों पर आर्थिक सहायता देते हैं। इस देश के उद्योग-धन्धों को न तो ज्वाइंट-स्टाक बैंकों से जैसी चाहिये वैसी सहायता मिल रही है और न इम्पीरियल बैंक ही इस सम्बन्ध में कुछ मदद करता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि यहाँ के अधिकांश धन्धे पनपने नहीं पाते और जीवन के थोड़े समय बाद ही काल के ग्रास बन जाते हैं। इस सम्बन्ध में कभी कोई विशेष उल्लेखनीय उद्योग भी नहीं हुआ है। सन् १९१८ ई० में भारतीय-इण्डस्ट्रीयल-कमीशन ने उद्योग-धन्धा-सहायक बैंकों की आवश्यकता पर विशेष प्रकाश डाला था, जिसका अनुकरण करते हुए जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, प्राइवेट प्रयत्न से टाटा-इण्डस्ट्रियल-बैंक की स्थापना हुई थी; किन्तु दुःख है कि यह बैंक अपनी ५-६ वर्ष की अवस्था में ही असफल होकर सन् १९२३ में सेण्ट्रल बैंक आव् इण्डिया

में मिल गया। इससे भारतीय बैंकिंग संसार में निराशा सी छा गई और इस प्रकार का फिर कोई प्रयास नहीं किया गया। वास्तव में वर्तमान ज्वाइंट-स्टाक-बैङ्क अपने पिछले कटु अनुभवों के कारण भारतीय उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता देने में असमर्थ हैं और जब तक इनकी पीठ पर सहायता करनेवाला बैङ्कों का बैङ्क राष्ट्रीय-बैंक स्थापित न हो जाय तब तक ये बैंक सहायता कर नहीं सकते।

जर्मनी में उद्योग-धन्धों की सहायता करने के लिये वहाँ के बैंक संगठित रूप से भारी प्रयत्न करते हैं। उनके लिये यह मानी हुई बात है कि उनमें और उद्योग-धन्धों के बीच में गहरा प्रेम और सहानुभूति-पूर्ण सम्बन्ध स्थापित है। ये बैङ्क जिस ढङ्ग से जर्मनी में उद्योग-धन्धे की सहायता करते हैं, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

सहायता-इच्छुक प्रत्येक संस्था, दूकान या कम्पनी को सहायता माँगने से पहले किसी बैङ्क के साथ चल्लू खाता खोलना पड़ता है। चल्लू खाते के साधारण लेन-देन में कभी खातेदार के रुपये बैङ्क में जमा रहते हैं और कभी खातेदार बैङ्क का देनदार हो जाता है। ब्याज दोनों ही ओर से लिया दिया जाता है। लड़ाई के पहिले आम तौर पर जर्मन-बैंक चल्लू खातों के लिये बैंक रेट से एक या डेढ़ परसेण्ट ब्याज कम देते थे और एक प्रति शतक बैंक रेट से अधिक; किन्तु कम से कम ५ प्रति शतक ब्याज खातेदार से वसूल करते थे। इस हिसाब की अवधि कम

से कम छः माह रहती है; किन्तु बीच में भी दोनों पार्टियों में से किसी भी पार्टी को खाता बन्द करने और बाक़ी रुपया माँगने का अधिकार हर वक्त रहता है। यहाँ पर यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि यहाँ की अधिकांश दूकानें चल्लूखाते में जमा से अधिक रुपया उधार लेने की चेष्टा करती हैं। यह केवल इसलिये नहीं कि चल्लू काम के लिये रुपया मिल जाता है, बल्कि भविष्य में स्थायी रूप से सहायता प्राप्त करने के लिये पेशबन्दी करते हैं।

पर्याप्त समय तक चल्लू खाता रख लेने पर यदि कोई कम्पनी अपना मूलधन बढ़ाना या स्थायी ऋण की वृद्धि करना चाहती है तो वह उसके लिये अपने बैंक को दरख़्वास्त करती है। प्रायः एक बैंक तमाम जोखिम उठाना नहीं चाहता; बल्कि कुछ बैंक मिलकर जोखिम उठाते हैं। इस काम के लिये एक अस्थायी रूप से संगठित संस्था बनाते हैं, जिसको कन्सोर्ट्यून (Konsortiun) कहते हैं। यों तो इस सम्बन्ध में कई प्रणालियाँ प्रचलित हैं; किन्तु दृष्टान्त रूप से यहाँ एक प्रणाली का वर्णन किया जाता है। उस संस्था (Konsortiun) का प्रत्येक सदस्य उस धन्धे में होनेवाले नफ़ा-नुक़सान का हिस्सा इच्छानुसार उठाना स्वीकार करता है और तदनुसार रक़म देता है। जैसे एक प्रार्थी कम्पनी को १००००) देना निश्चय हुआ और उस Konsortiun में ५ सदस्य हैं, उनमें से प्रत्येक सदस्य १०, १५, २०, २५, ३० प्रतिशतक नफ़े-नुक़-

सान का साझेदार क्रमशः बनता है तो उनको १०००), १५००), २०००), २५००) और ३०००) देने होंगे। बैंक सदस्यों में से एक बैंक, हिसाबात करने और लेन-देन करने के लिये डाइरेक्टर चुन लिया जाता है। इस भय से कि उन सदस्यों में से कोई नियम-विरुद्ध काम न कर सके, प्राप्त ज़मानतें आपस में नहीं बाँटी जाती हैं; किन्तु जब तक निश्चित मूल्य की ज़मानतें न बिक जायँ, सब ज़मानतें डाइरेक्टर बैंक के पास रक्खी रहती हैं। यह बैंक मध्यस्थ बनकर पुरानी ज़मानतों की असली क़ीमत क़ायम रखने का प्रबन्ध करता है और तत्सम्बन्धी हिसाबात रखता है तथा आवश्यकतानुसार रक़म संग्रह करने तथा बाँटने के लिये सदस्यों को बुलाता है। इस Konsortiun के टूट जाने पर मेम्बर नफ़ा-नुक़सान या बची हुई ज़मानतें अपने अपने हिस्सों के अनुसार विभाजित कर लेते हैं। ये संस्थाएँ एक निश्चित अवधि के लिये क़ायम की जाती हैं; किन्तु बीच में भी तोड़ी जा सकती हैं और पुनः इच्छा होने पर नवीन शर्तों के साथ फिर चालू की जा सकती हैं।

अमेरिका के बैंकों ने भी जर्मनी के बैङ्कों का अनुसरण किया है।

अंगरेज़ी बैङ्कों ने भी तटस्थ रहने की अपनी पुरानी रफ़्तार छोड़ दी है। इन्होंने बैङ्कर्स-इण्डस्ट्रियल-डिवलपमेण्ट-कम्पनी संगठित की है, जो औद्योगिक संस्थाओं के चालू करने की स्कीम को तत्सम्बन्धी विशेषज्ञों से अनुसन्धान कराकर उस उद्योग की उपयुक्तता और लाभ-हानि के सम्बन्ध में तस्दीक़

करती है और इसकी सिफ़ारिश पर उन उद्योगों को आवश्यक धन प्राप्त होता है।

जापानियों ने भी ५ करोड़ 'यन' के मूलधन से एक इण्डस्ट्रियल-बैंक क़ायम किया है। इसको अपने मूलधन से १० गुने डिवेञ्चर जारी करने का अधिकार है। यह औद्योगिक संस्थाओं के बोण्ड्स, डिवेञ्चर, शेयर, जहाज़ और जहाज़ों के सामान की ज़मानतों पर उधार देता है। जापान के उद्योग-धन्धों की उन्नति करने में वहाँ की सरकार का पूर्ण रूप से सहयोग रहा है। यही कारण है कि जापान की काया एक दम पलट गई। सन् १८६८ में जापान की आर्थिक अवस्था भारत को सन् १७५७ की आर्थिक अवस्था से भी ख़राब थी; किन्तु अर्धशताब्दी के थोड़े से समय में यह देश जहाँ तक उद्योग-धन्धों से सम्बन्ध है, संसार के अत्यधिक उन्नतिशील देशों की श्रेणी में आ पहुँचा। सन् १८६८ में जापान के निर्यात व्यापार में बनी हुई चीज़ों का औसत १·१४ प्रतिशतक था। सन् १९२८ में यह औसत बढ़ कर ४२·५२ प्रतिशतक हो गया। इसी तरह सन् १८६८ से बनी हुई चीज़ें बाहर से ६०·५७ प्रतिशतक में आती थीं, जो सन् १९२८ में घट कर १५·१६ प्रतिशतक रह गईं। यह सब कुछ उन्नति योकोहामा स्पेशी बैंक (१८८०) और इण्डस्ट्रीयल बैंक ऑव् जापान (१९०२) के क़ायम होने के पश्चात् हुई है। अस्तु, भारत के उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये भी इसी प्रकार के बैंकों की स्थापना की आवश्यकता है।

छठा अध्याय

बैङ्क और विदेशी व्यापार को आर्थिक सहायता

भारत के विदेशी-व्यापार (आयात और निर्यात दोनों) का जोड़ लगभग ६ सौ करोड़ रुपया वार्षिक है। सन् १६२८-२६ में दस करोड़ से ऊपर का लेनदेन जिन देशों से हुआ है, वे इस प्रकार हैं :—

(१) यूनाइटेड किंगडम्स	... ...	१८३ करोड़
(२) संयुक्त-राज्य अमेरिका	... ...	५६ "
(३) जापान	... ...	५१ "
(४) जर्मनी	... ...	४७ "
(५) नीदर लैण्ड, डच और ईस्ट इण्डीज़	...	३० "
(६) फ्रांस	... ...	२२ "
(७) इटली	... ...	२२ "
(८) बेलजियम	... ...	२० "
(६) सीलोन	... ...	१६ "
(१०) स्ट्रेट सेटलमेण्ट्स	... ...	१३ "
(११) आस्ट्रेलिया	... ...	१५ "

इस विदेशी व्यापार को दो प्रकार से आर्थिक सहायता दी जाती है—(१) भारतीय बन्दरगाह से विदेशी बन्दरगाह तक या विदेशी बन्दरगाह से भारतीय बन्दरगाह तक, (२) भारतीय व्यापारिक शहरों से भारतीय बन्दरगाहों तक माल पहुँचाने या भारतीय बन्दरगाहों से भारतीय व्यापारिक शहरों को माल विभाजित करने में।

विदेशी बैंक—प्रथम श्रेणी में वर्णित व्यवसाय विदेशी हुण्डियों द्वारा निपटाया जाता है, जो पूर्णतया विदेशी विनिमय बैंकों के हाथ में है। जैसा कि पिछले पृष्ठों में वर्णन किया जा चुका है, इनकी संख्या १८ है। इनमें से दो मेसर्स थामस कुक ऐण्ड सन (बैंकर्स) और अमेरिकन एक्सप्रेस कम्पनी इन्कोरपोरेटेड विदेशी विनिमय की आर्थिक सहायता-सम्बन्धी धन्धे में कोई विशेष उल्लेखनीय भाग नहीं लेते। यह अधिकतर यात्रियों के लेन-देन (Tourist traffic) ही से अपना सम्बन्ध रखते हैं। शेष में से निम्नलिखित ५ का अधिकांश व्यापार भारत में है (१) चारटर्ड बैंक आव् इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना, (२) नेशनल बैंक आव् इण्डिया, (३) पी० ऐण्ड ओ० बैंकिंग कोरपोरेशन, (४) ईस्टर्न बैंक, (५) मरकेण्टायल बैंक आव् इण्डिया।

बाक़ी ११ उन बड़े बैंक-संस्थाओं की शाखाएँ और एजेन्सियाँ हैं, जिनका अधिकांश व्यापार विदेशों में है। यह विनिमय बैंक ब्रिटिश चेम्बर ऑव् कॉमर्स के मेम्बर हैं और ये जो कुछ भी खेल भारत में खेलते हैं, वह सब ब्रिटिश बैंकों के इशारे पर खेलते हैं।

जातीय भेदभाव—इन बैंकों के द्वारा जो सुविधा और आर्थिक सहायता विदेशी व्यापार को मिलती है, वह सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी की बहुमत रिपोर्ट के शब्दों में व्यापारिक दृष्टि से संतोषजनक है; किन्तु अंग्रेज़ी और विदेशी व्यापारियों के दृष्टि-कोण से है न कि भारतीय दृष्टिकोण से। इन बैंकों का सभी जातियों के व्यापारियों के प्रति समान व्यवहार नहीं है। जहाँ ये साधारण से साधारण अंग्रेज़ व्यापारियों और कम्पनियों को अधिक से अधिक सहायता और सुविधा देने में प्रस्तुत रहते हैं, वहाँ भारत के बड़े से बड़े और अच्छी स्थितिवाले व्यापारी, बैंक और कम्पनी की सहायता करने में सदा उपेक्षा करते हैं। यह विदेशी बैंकों के लिये आम शिकायत है। इस सम्बन्ध में सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी के सामने भारतीय व्यापारियों, बैंकों और कम्पनियों ने अनेक आपत्तियाँ प्रकट की हैं। उनमें से उदाहरणार्थ कुछ का सारांश नीचे दिया जाता है:—

(१) विदेशी माल, जो भारत में आता है और भारत से बाहर जाता है, की रक़म दो प्रकार के बिलों (हुण्डियों) से वसूल की जाती है और चुकाई जाती है। इनको डी० ए०* और डी० पी०† ड्राफ़्ट कहते हैं। डी० ए० का अर्थ है हुण्डी को स्वीकार कर

* Documents against acceptence.

† Documents against payment.

लेने पर ही तत्सम्बन्धी बिल्टियाँ ऊपरवाले धनी को अर्थात् माल मँगवानेवाले को दे देना और डी० पी० का अर्थ है—रुपये चुकाने पर माल की बिल्टियाँ देना। भारत से जो विदेशों में माल जाता है, उसकी क़ीमत की हुण्डी भारत का व्यापारी डी० ए० श्रेणी की और तीन महीने की मुद्दती करता है और विदेशों से भारत में आनेवाले माल की क़ीमत की हुण्डी विदेशी व्यापारी भारत के व्यापारी पर डी० पी० श्रेणी और ६० दिन की मुद्दती करते हैं। विदेशी व्यापारियों को डी० ए० श्रेणी की हुण्डियों से यह सुविधा है कि बिना रक़म चुकाये केवल साख पर हुण्डी सही करते ही बिल्टियाँ मिल जाती हैं, जिससे माल बेचकर तीन महीने बाद इनका रुपया चुका देते हैं, लेकिन भारतीय व्यापारी को इस तरह केवल हुण्डी सिकारना स्वीकार कर लेने पर बिल्टियाँ नहीं मिलतीं; बल्कि रुपया चुकाने पर मिलती है। इस सुविधा के अभाव के कारण विदेशी बैंक ही हैं; क्योंकि ये भारतीय व्यापारियों की अच्छी आर्थिक स्थिति का हवाला (Reference) विदेशी व्यापारी को नहीं देते। इसमें इनका स्वार्थ यह है कि डी० पी० श्रेणी के बिलस प्रचलित रहने से विदेशों से आनेवाले माल की ज़मानत पर ऊँचे ब्याज की दर से रुपया उधार देने पर इनको अच्छी आमदनी होती है।

(२) दूसरी शिकायत यह है कि साख-पत्र* प्राप्त करने के

* यह एक पत्र होता है, जिसमें भारत-स्थित बैङ्क, दूसरे किसी देश के व्यापारी या बैङ्क को यह लिखता है कि अमुक समय तक अमुक आसामी

लिये भारतीय माल मँगानेवाली ऊँचे दर्जे की कम्पनियों को भी माल की क़ीमत का दस से पन्द्रह रुपया सैकड़ा तक विदेशी विनिमय बैंकों में जमा करना पड़ता है; किन्तु कलकत्ते की अंग्रेज़ी कोठियों से इस प्रकार की जमा नहीं माँगी जाती।

(३) भारतीय बड़ी बड़ी और सुसंगठित फ़र्मों के लिये भी यह बैंक संतोषजनक हवाला (Reference) विदेशी व्यापारियों को नहीं देते; लेकिन भारत-स्थित विदेशी फ़र्मों को, जिनकी आर्थिक स्थिति भारतीय व्यापारियों से कम दर्जे की होती है, संतोषजनक हवाला (Reference) मिल जाता है।

(४) जब विदेशी व्यापारी भारतीय व्यापारी पर हुण्डी करता है और वह हुण्डी भारत में स्थित विनिमय बैंकों के यहाँ रुपये संग्रह करने के लिये आती है तब माल मँगानेवाले भारतीय व्यापारी को बैंक के बेचनेवाले दर्शनी हुण्डी के भाव पर रुपया जमा करना पड़ता है; किन्तु किसी दूसरे विनिमय बैंक की दर्शनी हुण्डी, जो अधिक अनुकूल भावों में मिल सकती है, ख़रीद-कर या अपने किसी लन्दन के आढ़तिया पर चैक जारी करके

के अमुक तादाद तक ख़रीदे हुए माल की क़ीमत के बदले बिल्टियों के साथ-वाली अमुक दिन की मुद्दती हुण्डी हमारे ऊपर की जा सकती है। उसको हम सिकारना स्वीकार करेंगे और ठीक समय पर उसका रुपया चुकावेंगे। इस ख़ास-पत्र को पाकर दूसरे देशों के व्यापारी बिना कुछ पेशगी लिये भारत के व्यापारी को माल रवाना कर देते हैं।

अदायगी नहीं कर सकता। जहाँ तक कलकत्ते के व्यापार से सम्बन्ध है, भारतीय माल मँगानेवाला अपने ऊपर आनेवाली हुण्डी की अदायगी में ऐक्सचेञ्ज बैंक एसोसियेशन के किसी दूसरे बैंक को तार की हुण्डी दे सकता है, उस पर कोई चार्ज नहीं किया जाता; किन्तु और जगह ऐसा नहीं होता। सेण्ट्रल बैंकिङ्ग इंक्वायरी कमेटी के सामने विदेशी बैंकों के प्रतिनिधि भी यह बात स्वीकार कर चुके हैं कि भारतीय माल मँगानेवाले से उसके ऊपर आनेवाली हुण्डी की अदायगी में लन्दन-स्थित आढ़तिया पर चेक लेने के लिये इंकार करना न्यायोचित नहीं है।

(५) विदेशी बैंक भारतीय माल भेजनेवाले को अपने माल का बीमा विदेशी बीमा कम्पनी में कराने के लिये मजबूर करते हैं और हिन्दुस्तानी बीमा कम्पनी में कराया हुआ बीमा स्वीकार नहीं करते।

इस जातीय भेद-भाव और पक्षपात के कारण विदेशियों को भारत के विदेशी व्यापार में भारतीयों की अपेक्षा अधिक सुविधा और सहायता दी जाती है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि विदेशी कोठियाँ अपने अतुलित साधनों से भारतीय व्यवसायियों के साथ प्रतियोगिता कर रही हैं और भारतीय व्यापारियों के हाथ में जो कुछ थोड़ा-बहुत धन्धा रह गया है, उसको भी छीनने की कोशिश कर रही हैं।

इस व्यवसाय में विदेशी बैंकों या अन्य व्यापारियों की आय का औसत कमीशन के रूप में दो प्रतिशत है। इससे दस

करोड़ रुपये के लगभग विदेशी फ़र्मों को आय होती है। अतिरिक्त इसके, वे माल के क्रय-विक्रय की दलाली, विनिमय और बीमा की दलाली आदि अनेक प्रकार से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया कमाती हैं। इससे भारतीय व्यापारियों की बड़ी हक़तलफ़ी हो रही है।

दूसरी श्रेणी में वर्णित व्यवसाय अर्थात् उत्पादक क्षेत्र से बन्दरगाहों तक पैदावार पहुँचाना और बन्दरगाहों से आयात माल को भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में विभक्त करना भारतीय व्यापारियों के हिस्से में आया है।

यहाँ हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि भारतीयों में विदेशियों के समान देशी और विदेशी व्यापार को किसी भी प्रकार से सुचारु रूप से सम्पादन करने की योग्यता और क्षमता नहीं है। अंग्रेज़ों के आगमन और विदेशी बैंकों की स्थापना से पूर्व विदेशी व्यापार सोलहो आना भारतीयों के हाथ में था और अनेक लब्धप्रतिष्ठित व्यापारी इस व्यवसाय को बहुत बड़े पैमाने पर, साधारण से डोंगों और लकड़ी के बने हुए जहाज़ों द्वारा संसार के भिन्न भिन्न देशों से सफलता-पूर्वक करने में सफल हुए हैं। इस पर यह प्रश्न होता है कि फिर क्या कारण है कि यह व्यवसाय इन सौ वर्षों में भारतीयों के हाथों में से विदेशियों के पास सिमिट गया? इसके प्रधान कारण हैं सारे जहाज़ों पर विदेशियों का अधिकार होना और विदेशी विनिमय बैंकों को सरकार द्वारा अनेक सुविधाएँ मिलते रहना।

जहाँ दूसरे देशों में विदेशी बैंक खोलनेवालों के मार्ग में अनेक

रुकावटें तथा प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, जिनकी वजह से वे वहाँ के स्थानीय बैंकों से प्रतियोगिता करके उनका व्यवसाय अपहरण करने में असमर्थ हो पाते हैं; वहाँ दुःख है कि भारत में विदेशी कम्पनियों, फ़र्मों और बैंकों के लिये न केवल हर वक़्त दर्वाज़ा खुला हुआ है; बल्कि उनको उनके भाई-बन्धु द्वारा सब प्रकार की सुविधाएँ दी जाकर, फलने-फूलने का अवसर दिया जाता है। इस भेदभाव के कारण भारतीयों द्वारा होनेवाला व्यापार विदेशी कम्पनियों, बैंकों और व्यापारियों के पास पहुँच गया है। अब इन विदेशी संस्थाओं ने अपना संगठन व शक्ति इतनी बढ़ा ली है कि ये हर वक़्त भारतीय प्रयास को दबाने में सफल हो जाती हैं और भारत में भारतीयों द्वारा चालू की हुई संस्थाएँ पनपने नहीं पातीं। उदाहरणार्थ :—(१) मौजूदा विनिमय बैंकों में से नेशनल बैङ्क आव् इण्डिया रुपयों के मूलधन से भारत में क़ायम हुआ था और जिसके बोर्ड आव् डाइरेक्टर्स में भारतीय डाइरेक्टर्स भी थे, इसको अपना मूलधन शीघ्र ही पौंडों में बदलना पड़ा और अपना हेड आफ़िस भारत से लन्दन ले जाना पड़ा। (२) अलाइन्स बैंक शिमला को, जो विदेशी विनिमय का ख़ासा व्यापार करता था, सन् १९२३ ई० में अपने दर्वाज़े बन्द करने पड़े। (३) टाटा इण्डस्ट्रीयल बैंक को भी, जिसने विदेशी विनिमय और व्यापार में अपना क़दम बढ़ाया था, छः वर्ष की आयु में मृत्यु की गोद में सोना पड़ा।

सातवाँ अध्याय

कृषि और बैंक

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ का सबसे बड़ा, विस्तृत और प्रधान उद्योग-धंधा कृषि है। इस पर २३ करोड़ अर्थात् ७० प्रतिशत मनुष्यों का जीवन-निर्वाह निर्भर है। खेती के लिये भी दूसरे उद्योग-धंधों से धन की कम आवश्यकता नहीं होती है—यह निर्विवाद बात है और जिसको एक स्वर से सभी देशों ने माना है। भारतीय कृषकों को ऋण की पद पद पर आवश्यकता होती रहती है। उनका कोई कार्य ऐसा नहीं है, जो ऋण लिये बिना आरंभ और पूरा हो सके; क्योंकि उनके पास कुटुम्बी जनों के अनुपात से भूमि कम होती है, उत्पादन सदैव समयानुकूल और आवश्यकतानुसार वर्षा पर निर्भर रहता है। आये दिन अर्थात् तीन वर्ष में एक बार अतिवृष्टि और अनावृष्टि से दुष्काल पड़ते रहते हैं, जिनके कारण उनकी आशाओं और परिश्रम का सर्वनाश हो जाता है और उनको राज का लगान चुकाने, महाजनों की क़िस्त देने, आगे के लिये

खेती करने और अपने जीवन की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिये ऋण लेना पड़ता है। जैसा कि सर एफ़ निकोलसन ने उनकी इस करुण दशा का चित्र चित्रित करते हुए लिखा है :—

They Could not begin to Cultivate without borrowing seed, Cattle, grain for maintenance etc., so that their crop is pledged in advance, so that on settlement of accounts the cultivator has little to go on with and must again borrow. In famine years these men have practically no resource. The raiyat must feed himself and his family. He must pay his kists and if there is no money to pay them with as is usually the case and the Revenue officer stands at the door there is no alternative but to go to the *mahajan*.

भारत में एक्सचेंज बैंक हैं, वे केवल विदेशी व्यवसाय को सहायता करते हैं; ज्वाइंट स्टॉक बैंक हैं, वे देश के भीतरी व्यापार के पोषक हैं और इम्पीरियल बैंक भी, जो कृषकों से संग्रहीत सार्वजनिक धन का बिना ब्याज उपभोग करता है, इनकी बात नहीं पूछता। इन्स्योरेन्स कंपनियाँ अपना रुपया केवल सरकारी ज़मानतों पर लगाती हैं; रहे कोआपरेटिव बैंक—इनके द्वारा जो कुछ भी कृषकों को आर्थिक सहायता दी जाती है, वह

तदर्थ आवश्यकता को देखते हुए आटे में नमक के बराबर भी नहीं है* ।

कृषि को, जिस पर संसार के समस्त उद्योग-धंधे निर्भर हैं और जिसके बिना न व्यापारी न बैंकर और न सरकार जीवित रह सकती है, भारतीय बैंकिंग संगठन से सहायता नहीं मिलती, यह आश्चर्य की बात है। इससे यह कहा जा सकता है कि भारत का बैंकिंग संगठन अभी अपूर्ण है।† दुःख की बात है कि हमारी सरकार भी इस ओर जैसा चाहिये, वैसा ध्यान नहीं देती।

दूसरे देशों में कृषि को थोड़ी और लम्बी अवधि के लिये सहायता देनेवाली अलग अलग संस्थाएँ स्थापित हैं,

---

* The co-operative movement, therefore, provides about 7% of the finance required for this purpose. Bom. P. BK. I. C. 1929-30 p. 227. The credit facilities now provided by co-operative movement to agriculturists cover but a very small proportion of their needs. C.BK. I. Co. P. 199.

† When we have agriculture, which is by far the largest "INDUSTRY" in India, entirely out of touch, with the Commercial Banking ORGANISATIONS "Sir OSBORNE A. Smith".

जिनको वहाँ की सरकारें सदैव आर्थिक, क़ानूनी और प्रबन्ध-सम्बन्धी यथोचित सहायता देती रहती हैं।

थोड़ी अवधि के लिये

जर्मनी में सरकारी कृषि-बैंक (Presusische Central Geno.) को सरकारी पूँजी से २५ लाख पौंड सहायतार्थ प्रदान किया गया था।

फ्रान्स में सरकार सहकारिता के प्रचार को सरकारी अधिकारियों के बोर्ड द्वारा, जो Credit Agricole कहलाता है, विशेष सहायता प्रदान करती है। कुछ वर्ष पहले जब बैंक आव् .फ्रान्स का संस्थापन पत्र संशोधित हुआ था, उसके द्वारा बैंक आव् .फ्रान्स Credit agricole बोर्ड को ४ करोड़ स्वर्ण-फ्रान्क बिना ब्याज उधार देने और अपने लाभ में से एक लाख बीस हज़ार पौंड प्रति वर्ष सहायता-स्वरूप देने के लिये बाध्य है। Credit agricole इस रुपये को Regisnal Banks (ज़िला कोआपरेटिव बैंकों के समान होते हैं) को बिना ब्याज उधार देता है। ये पिछले बैंक ग्रामीण सहकारी सभाओं को अधिक से अधिक ३% पर उधार देते हैं।

इंगलैण्ड में कृषकों को थोड़ी अवधि के लिये बैंक द्वारा उधार दिलाने के वास्ते सन् १९२८ ई० में एक विशेष क़ानून की रचना की गई है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में उधार देनेवाली (Credit) और क्रयविक्रय करनेवाली (Marketing) सहकारी सभाएँ हैं, जिनको Federal Intermediate Banks और National agricultural credit Corporation कहते हैं। ये सब संस्थाएँ कृषकों को थोड़ी अवधि के वास्ते उधार देती हैं। इनकी स्थापना स्पेशल एग्रीकलचर क़ानून १९२३ के द्वारा हुई है। पहली प्रकार के बैंकों की संख्या १२ है, जो अपने अपने क्षेत्र में कार्य करते हैं। प्रत्येक का मूलधन ५० लाख डालर है, जो सबका सब सरकार द्वारा ख़रीदा जाता है।

लम्बी अवधि के लिये

(१) इंगलैण्ड में सरकार भूमि-बंधक बैंकों को The Agriculture Credit Act of 1928 के अनुसार सहायता-स्वरूप (१) ७१,००,००० पौंड तक ६० वर्ष के लिये बिना ब्याज उधार देने, (२) प्रबन्ध-ख़र्च के लिये १०,००० पौंड वार्षिक सहायता देने और (३) १२,५०,००० पौंड के डिबेञ्चर ख़ुद ख़रीदने को वाध्य है। इसके अतिरिक्त ५ करोड़ पौंड के डिबेञ्चर अंडर राइट करने में सहायता करती है। इन बैंकों के डिबेंचर ट्रस्टी सिक्योरिटी माने जाते हैं।

(२) सीलोन में एक कमेटी ने स्टेट मोर्टगेज बैंक की स्थापना के वास्ते एक तजवीज़ उपस्थित की है और सिफ़ारिश की है कि "सरकार २,५०,००,०००) रू० तक के

डिवेञ्चर की असल रक़म और ब्याज की गारंटी लेवे, ३०,००,०००) रु० तक के डिवेञ्चर ख़ुद ख़रीदे और बैंक को अपना रुपया ज़मानत में आई हुई जायदाद से कोर्ट में पुकार किये बिना ही वसूल करने का पूर्ण अधिकार दे।

(३) संयुक्त राज्य अमरीका में फ़ेडरल भूमि-बन्धक बैङ्कों की संख्या, फ़ेडरल इंटरमीजियट क्रेडिट बैङ्कों की भाँति १२ है। ये समस्त देश के १२ ज़िलों में बँटे हुए हैं। प्रत्येक बैङ्क को कार्य प्रारम्भ करने से पहले ७,५०,००० डालर के मूलधन की आवश्यकता होती थी। इस पूँजी के हिस्से बेचना आरम्भ करने की तारीख़ से ३० दिन के अन्दर बिना बिके हुए हिस्से सब सरकार को ख़रीदने पड़ते थे।

(४) फ़्रांस में The Credit Foncier de France बैङ्क सन् १८५२ में स्थापित हुआ था, जिसको सरकार ने १ करोड़ स्वर्ण फ़्रांक की सहायता दान के तौर पर दी थी। इसके बॉड ट्रस्टी-सिक्योरिटी समझे जाते हैं।

(५) जर्मनी में भूमि-बन्धक बैङ्कों के संचालन के वास्ते एक विशेष क़ानून है, जिसके द्वारा सरकार ऐसे बैंकों का प्रबन्ध करती है। सरकारी सहायता के कुछ उदाहरण यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

(१) Preussische Central-Boden Credit Actine-Gesselschaft बैंक जब सन् १८७० में स्थापित हुआ था तब सरकार और सरकार से सम्बन्धित बैङ्कों ने

इसके मूलधन में हाथ बँटाया था। बाद में जब बैंक अपनी उन्नतावस्था में पहुँच गया तब हिस्से बाज़ार में बेचे गये थे।

(२) Kur-und Newmarkisches Ritterschaftliches Kredit Institut etc. बैङ्क फ्रेडरिक दी ग्रेट द्वारा स्थापित किया गया था, जिसने इसको २०,००० डालर (जर्मनी का पुराना सिक्का १ डा० = ३ मार्क) दान के तौर पर प्रदान किये थे। आरंभ में यही इसका मूलधन था। इसका समस्त लाभ बैङ्क ही में रहता था और मूलधन में शामिल कर दिया जाता था। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते इसका मूलधन सन् १६०८ ई० में ७० लाख स्वर्ण-मार्क हो गया। साधारण से अधिक लाभ होने की हालत में बैङ्क के अधिकारी अधिक लाभ को उधार लेनेवालों में बाँटकर उनके ऋण में जमा कर लेते थे।

(६) आस्ट्रेलिया में भी कृषि को सहायता देने के वास्ते ख़ास तौर से सरकारी बैङ्क स्थापित किये गये हैं। ये अपनी पूँजी कुछ तो सरकार से प्राप्त करते हैं और कुछ डिबेञ्चर जारी करते हैं। ग्रामीण सहायता (Rural Credit) भिन्न भिन्न प्रकार की सहकारी समितियों और कोमनवेल्थ बैङ्क के Rural Credit डिपार्टमेण्ट द्वारा दी जाती है। इस बैङ्क को ३० लाख पौंड तक तो इस कार्य के

लिये सरकार सहायता देती है और २० लाख पौंड स्वयं अपने पास से लगाता है।

(७) जापान में कृषि तथा दूसरे छोटे छोटे उद्योगों को छोटे छोटे कृषि और औद्योगिक बैंकों द्वारा सहायता दी जाती है। इन बैंकों को Hypothec Bank of Japan, जो कि उनका केंद्रीय बैंक है, सहायता देता है। इन बैंकों का मुख्य उद्देश्य जायदाद की ज़मानत पर अधिक से अधिक ५० वर्ष की अवधि तक के लिये उधार देना है। Hypothec Bank of Japan का मूलधन ७,४८,७६,०६० येन है और इसको अपने मूलधन से ५० गुने डिबेञ्चर निकालने का अधिकार है। इसके समस्त व्यवस्थापक सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं।

उक्त उद्धृत किये हुए उदाहरणों से स्पष्ट हो गया है कि कृषि-उद्योग को संसार के दूसरे देशों में कितना महत्व-पूर्ण स्थान दिया गया है और उसको उन्नत करने के लिये किस प्रकार से आर्थिक सहायता पहुँचाने के साधन जुटा रक्खे हैं। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में भी इसी प्रकार के कृषि-सहायक बैंकों की आवश्यकता है।

आठवाँ अध्याय

पिछड़ी हुई अवस्था और उसके कारण

पिछड़ी हुई अवस्था—पिछले अध्यायों में संक्षिप्त रूप से कई प्रकार की बैंकिंग संस्थाओं का, जो भारत में काम कर रही हैं, वर्णन किया जा चुका है। यहाँ पर यह बतलाये जाने का प्रयत्न किया जाता है कि भारतीय बैंकिंग धन्धा दूसरे देशों की तुलना में कहाँ पर स्थित है और कितना पिछड़ा हुआ है या जो कुछ इस समय है, वह कहाँ तक पर्याप्त है। अतिरिक्त इसके उन कारणों पर भी विचार करना आवश्यक है, जो भारतीय बैंकिंग की उन्नति में रोड़े अटकाते हैं।

पिछले अध्याय में भारत में ज्वाइण्ट स्टाक बैंकिंग तीन श्रेणियों में विभक्त हुई है—इम्पीरियल बैंक, ज्वाइण्ट स्टाक बैंक और विनिमय बैंक। इन तीनों के हेड ऑफ़िस और शाखायें इस प्रकार हैं :—

नाम	हेड आफ़िस	शाखायें
इम्पीरियल-बैंक	३	१६५
विदेशी-विनिमय-बैंक	०	८८
ज्वाइण्ट-स्टाक-बैंक	१७०	४८०
इलाहाबाद-बैंक	१	३२
जोड़	१७४	७६५

उक्त ७६५ बैंकों में विदेशी विनिमय बैंकों की शाखाएँ और इलाहाबाद-बैङ्क, जो विदेशियों द्वारा संचालित होता है, भारतीय-बैंकिंग का वास्तविक भाग नहीं कहा जा सकता, की ३२ शाखायें भी शामिल हैं। भारत में लगभग २३०० शहर हैं। बैंकों की उक्त संख्या केवल ३३६ शहरों में विभक्त है; परन्तु यह विभाजन समस्त देश में समान रूप से न होने के कारण इस देश का बहुत बड़ा भाग बैंकिंग की सुविधाओं से लाभ उठाने से वञ्चित रहता है।

विदेशों से तुलना—भारतीय बैंकों की उक्त संख्या को यदि हम जनसंख्या में बाँटते हैं तो ४,४०,००० मनुष्यों के पीछे एक शाखा का औसत आता है। इन अंकों की जब हम विदेशों के बैंकों की संख्या से तुलना करते हैं तो अपने आपको बहुत पीछे पाते हैं। इंग्लैण्ड और वेल्स में ४५०० मनुष्यों के पीछे और यूनाइटेड किंगडम में ३५०० मनुष्यों के पीछे एक बैंक है। अतिरिक्त इसके सन् २७-२८ ई० में संसार के कुछ

देशों की बैंकिंग अवस्था का दिग्दर्शन "बैंकर्स-एलमेनिक" इस प्रकार कराता है:—

देश	बैंकों के दफ़्तर
संयुक्त राज्य अमेरिका	२५०००
ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड	१३१००
फ़्रांस	४४००
जर्मनी	३१००
बेलजियम	१२००

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत की जनसंख्या तिगुनी है; किन्तु वहाँ बैंकों के दफ़्तर भारत से ३३ गुने अधिक हैं। इस तरह वहाँ पर भारत से सौगुना अधिक बैंकिंग धन्धे का प्रचार है। यदि हम मूलधन और जमाशुदा अमानतों पर दृष्टि डालते हैं तो अमेरिका की तुलना में भारतीय बैंकों का मूलधन २ प्रतिशत भी नहीं है और अमानतें ३ प्रतिशत से भी कम जमा हैं। जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका में ८७ पौंड प्रति मनुष्य के पीछे रक़म जमा है, वहाँ भारतीय बैंकों में जमाशुदा अमानतों का औसत १५ शिलिङ्ग प्रति मनुष्य आता है। ऐसा ही परिणाम लगभग और देशों की तुलना से निकलता है। यह तो हुई एक देश से दूसरे देश के बैंकिंग की सामुहिक तुलना। अब हम कुछ विदेशों के प्रधान प्रधान बैंकों से भारत के बड़े बड़े बैंकों की तुलना करते हैं।

संसार के कुछ बैंकों का पूँजी-सूचक कोष्ठक

नाम बैङ्क	लाख पौण्ड में	
	मूलधन	जमा (अमानतें)
चार्टर्ड बैंक आव् इण्डिया, आस्ट्रेलिया ऐण्ड चाइना	७०·००	४४०
लॉयड्स बैंक	२५८·१०	३५२१·५७
नेशनल सिटी बैङ्क आव् न्यूयार्क	३२६·४०	२७८१·४७
कोम्पटायर नेशनल डी एसकोम्पृ डी पेरिस	१५७·८३	३६७०·५७
स्यूमीटोमा बैङ्क	७१·०६	४५७·६१
योकोहामा स्पेसी बैङ्क	१६९·२०	४८३·६६
इलाहाबाद बैङ्क	२·८६	८३·६४
बैङ्क आव् इण्डिया	७·५०	८३·०४
सेण्ट्रल बैङ्क आव् इण्डिया	१२·९१	१०६·२५
ज्वाइंट स्टाक बैङ्क ५ लाख से ऊपर मूलधनवाले	५१·९३	४५९·३०
ज्वाइंट स्टाक बैङ्क ५ लाख से कम तथा १ लाख से अधिक मूलधनवाले	९·३७	२५·६१
इम्पीरियल बैङ्क	४०·२२	५६४·११

पृष्ठ नं० ११५ का कोष्ठक यह बतला रहा है :—

मूलधन से तुलना

ब्रिटेन के बैंकों में लॉयड्स-बैङ्क का मूलधन इम्पीरियल बैङ्क से ६ गुना, सेण्ट्रल-बैङ्क आव् इण्डिया से २१ गुना और इलाहाबाद-बैंक से ८६ गुना अधिक है। इसी प्रकार चार्टर्ड-बैंक का मूलधन भी इम्पीरियल-बैंक से दूना, सेण्ट्रल बैंक से ५ गुना और इलाहाबाद-बैंक से २४ गुना अधिक है।

अमरीका के बैंकों में नेशनल-सिटी-बैंक आव् न्यूयार्क का मूलधन इम्पीरियल-बैङ्क से ८ गुना, सेण्ट्रल-बैङ्क से २६ गुना और इलाहाबाद-बैंक से ११० गुना अधिक है।

फ्रांस के बैङ्कों में कोम्पटोयर नेशनल डा पेरिस का मूलधन, इम्पीरियल-बैङ्क से चौगुना, सेण्ट्रल बैङ्क से १२ गुना और इलाहाबाद-बैङ्क से ५३ गुना अधिक है।

जापान के बैङ्कों में स्यूमीटोमा का मूलधन इम्पीरियल-बैङ्क से १॥। गुना, सेण्ट्रल-बैंक से ५ गुना और इलाहाबाद-बैङ्क से २५ गुना अधिक है। इसी तरह योकोहामा स्पेसी-बैङ्क का मूलधन इम्पीरियल-बैङ्क से ५ गुना, सेण्ट्रल-बैंक से १६ गुना और इलाहाबाद-बैंक से ६६ गुना अधिक है।

यदि हम एक लाख और इससे ऊपर मूलधनवाले समस्त ज्वाइण्ट-स्टाक बैङ्कों का मूलधन मिलाकर तुलना करने बैठें तो भी चार्टर्ड-बैङ्क आव् इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना और

स्यूमीटोमा-बैङ्क में से प्रत्येक के मूलधन से हमारे समस्त ज्वाइण्ट-स्टाक-बैङ्कों का मूलधन कम है। यदि हम भारतीय ज्वाइण्ट स्टाक-बैङ्कों के मूलधन में इम्पीरियल-बैङ्क का मूलधन मिला देते हैं तो भी हमारे समस्त बैङ्कों के मूलधन से लॉयड्स-बैङ्क का मूलधन ढाई गुना और नेशनल-सिटी-बैङ्क आव् न्यूयार्क का सवा तीन गुना अधिक होता है।

अमानतों से तुलना

ब्रिटेन के लॉयड्स-बैङ्क में इम्पीरियल-बैङ्क से ६ गुनी, सेंट्रल बैङ्क से सत्ताईस गुनी और इलाहाबाद-बैङ्क से बयालीस गुनी अमानतें अधिक जमा हैं!

अमरीका के नेशनल-सिटी-बैङ्क आव् न्यूयार्क में इम्पीरियल बैङ्क से चौगुनी, सेण्ट्रल-बैङ्क से २१ गुनी और इलाहाबाद-बैङ्क से ३३ गुनी अधिक अमानतें जमा हैं।

यदि हम अपने १ लाख से ऊपरवाले समस्त ज्वाइण्ट-स्टाक-बैङ्कों की धरोहर से, जिनमें इम्पीरियल-बैङ्क से भी कम धरोहर जमा है, तुलना करें तो उससे कहीं अधिक जमा विदेशों के प्रत्येक अच्छे बड़े बैङ्क में पाई जाती है। कितना आकाश-पाताल का अन्तर है।

भारतीय-बैङ्किङ्ग की दुरवस्था की करुण-कहानी यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती; बल्कि जब हम भारत के भिन्न-भिन्न श्रेणी के बैङ्कों के अङ्कों पर दृष्टि डालते हैं तो शोचनीय दशा का नग्नरूप और भी सामने आ जाता है; यथा—

बैङ्क	मूलधन तथा रक्षित फ़ंड (१००० रुपयों में)	जमाशुदा अमानतें (१००० रुपयों में)
इम्पीरियल-बैङ्क	१,१०,१७२	७,६२,५३०
विदेशी विनिमय-बैङ्क	२५,०५,६४०	७,११,३८६
ज्वाइंट-स्टॉक-बैङ्क	१,२२,९३९	६,६३,५०२
योग	२७,३८,७५१	२१,६७,४१८

उक्त तालिका से पता चलता है कि भारत-स्थित समस्त बैङ्कों में २१६.७ करोड़ रुपया जमा है। इनमें से ७१.१ करोड़ अर्थात् ३३ प्रतिशत विदेशी-विनिमय-बैङ्कों में, ७९.२ करोड़ अर्थात् ३६ प्रतिशत इम्पीरियल-बैङ्क में और ६६.३ करोड़ अर्थात् ३१ प्रतिशत ज्वाइंट-स्टाक-बैङ्कों में जमा है। पिछले बैङ्कों की जमा का बहुत कुछ भाग उन बैङ्कों में जमा है, जो विदेशी प्रबन्ध और पूँजी से संचालित होते हैं। केवल विशुद्ध भारतीय बैङ्कों में तो ४५ करोड़ के लगभग अर्थात् उक्त समस्त बैङ्कों की कुल भारतीय जमा का २० प्रतिशत जमा है। इतनी शोचनीय दशा संसार में किसी देश के बैङ्किङ्ग-धंधे की नहीं है।

कारण

भारतीय बैंकिंग व्यवसाय के इतना पिछड़ा हुआ होने के वैसे तो कई राजनीतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक कारण हैं; किन्तु उनमें चार ऐसे हैं, जिनका सुधार होने की अत्यन्त आवश्यकता है; यथा—

(१) विदेशी-बैङ्कों द्वारा प्रतियोगिता और विरोध।

(२) बैङ्कों का प्रतिवर्ष अधिक संख्या में फ़ेल होना।

(३) भारत सरकार की उदासीनता।

(४) अंग्रेज़ी भाषा का प्राधान्य।

अब हम इन पर संक्षिप्त रूप से पृथक्-पृथक् विचार करना चाहते हैं।

विदेशी बैंकों द्वारा प्रतियोगिता और विरोध—इन विदेशी विनिमय-बैङ्कों के विस्तार, प्रतियोगिता करने की नीति और भारतीय व्योपारियों की अपेक्षा विदेशी व्यापारियों को सुविधा और साधन देने में तरजीह देने की संकुचित मनोवृत्ति आदि के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, जिसके यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

इनका प्रभाव न केवल देश-विदेश के बाज़ारों ही पर है, प्रत्युत ये भारत सरकार और भारत मंत्री की कौंसिल तक में अपना प्रभाव रखते हैं। उन मामलात में, जिनका इन बैङ्कों पर असर पड़ता है, ये हमेशा अपना मतलब सीधा कर लेते हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण ऐसे हैं, जहाँ इनका विरोध सफल हुआ है। श्री० मनु सूबेदार तो यहाँ तक कहते हैं—"जहाँ तक मैं जानता हूँ, इनका विरोध कभी असफल नहीं हुआ। सरकार से इनका मेलजोल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों ही रूप से बढ़ा हुआ है। पेंशन-प्राप्त सरकारी अफ़सर इन विदेशी विनिमय बैङ्कों के होम-बार्ड स को सुशोभित करते हैं, जो इंडिया कौंसिल

की फाइनेन्स कमेटी-द्वारा, जिसकी सलाह पर भारत मंत्री आमतौर पर काम करते हैं, अपने विचारों का दबाव डालने में सफल हो जाते हैं" ।*

"भारत सरकार इनके प्रतिनिधियों से मिलने में बड़ी दिलचस्पी लेती है। इंडिया आफिस के अफसर भी इनकी बड़ी हिमायत करते हैं, चाहे उससे प्रजाहित की उपेक्षा क्यों न होती हो।"*

एक ओर इनका इस प्रकार बढ़ा हुआ प्रभाव है, दूसरी ओर ये केवल अपने ही लाभ की ओर दृष्टि रखते हैं। इनके हृदय में सार्वजनिक-हित का भाव अथवा इस देश (भारत) की भलाई का ध्यान किंचित् भी नहीं है; इसलिये इनका व्यवहार भारत की राष्ट्रीय-दृष्टि से असंतोषजनक है। इनकी बढ़ी हुई शक्ति और विरोधात्मक व्यवहार के जो परिणाम हो चुके हैं, उनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं—

(१) टकसाल का बन्द होना।

(२) प्रेसीडेंसी-बैंकों और बाद में इम्पीरियल-बैंक को लन्दन में दफ्तर खोलने तथा वहाँ अमानतें लेने और विनिमय का धन्धा करने में बाधायें उपस्थित होना और मनाही होना।

(३) कौंसिल-बिल की बिक्री की परिपाटी और परिमाण

---

* Minority Report Para 175.

† ,,——do——,, Para 174.

भारत के हितों के विपरीत होना। इन्होंने चाहा है कि कौंसिल-बिल अधिक मात्रा में बेचे जावें, चाहे लंदन में रुपये की आवश्यकता न हो और यह इसलिये कि इनको सोना लाने का कष्ट न उठाना पड़े। साथ ही इन्होंने यह भी चाहा है कि भारत मंत्री कौंसिल-बिल इन्हीं के द्वारा बेचा करें।

(४) टाटा इंडस्ट्रियल-बैङ्क के कौंसिल बिल ख़रीदने के लिये ग्रहण करने योग्य बैङ्कों की नामावलि में स्थान प्राप्त करने में, वाधा उपस्थित होना।

(५) भारत में सोने का माध्यम तथा सोने का सिक्का स्थापित होने और स्वतंत्र रूप से सोने का सिक्का ढालनेवाली टकसाल के खुलने में वाधा पड़ना।

(६) दूसरे देशों के नमूने के समान "सेंट्रल-बैङ्क" की स्थापना में रुकावट होना।

ये सदैव उन उपायों का विरोध करते रहते हैं, जिनसे किसी दूसरी एजेंसी का लन्दन या किसी दूसरे अर्थ-केन्द्र (Financial centre) से रक़म लाने में क़दम बढ़ता हो या जिनसे भारत में रुपये का मूल्य घटता हो, विशेष कर उस अवसर पर जब भारत से विदेशों में माल का निर्यात अधिक होता हो। इससे भारतवासियों को अपनी पैदावार सस्ते दामों में बेचकर गला कटाना पड़ता है।

उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि इनके प्रभाव और स्वच्छंदता से भारतीय बैङ्किंग को कितना धक्का लग रहा है, इससे अधिक लिखना पुस्तक को विस्तार देना है।

बैंकों का प्रतिवर्ष अधिक संख्या में .फेल होना—"भारत में आधुनिक बैंकिंग का आरंभ और विकास" शीर्षक अध्याय में बैङ्कों के फ़ेल होने का विवरण विस्तृत रूप से दिया जा चुका है। सन् १३ के आर्थिक-संकट में अर्थात् सन् १३—१७ पाँच वर्षों में १७८ लाख की प्राप्त पूँजीवाले बैङ्क .फेल हुए हैं, जो पिछले वर्ष के कुल ज्वाइंट-स्टाक-बैङ्कों की प्राप्त पूँजी से ५१ प्रतिशत पूँजी के अधिपति थे। यह ठीक है कि इनमें अधिकांश बैङ्क बहुत छोटे और निर्बल थे; किन्तु बड़े बैङ्कों की संख्या भी कम नहीं थी। यथा*—

(१) दी इंडस्ट्रियल स्पेसी-बैङ्क	पूँजी ७५ लाख	
(२) दी पीपलस-बैङ्क	" १३	"
(३) दी क्रेडिट-बैङ्क आव् इंडिया	" १०	"
(४) स्टैंडर्ड बैङ्क आव् बम्बई	" १०	"
(५) दी बैङ्क आव् अपर-इंडिया	" १०	"
योग	" ११८	"

इसके बाद फिर लड़ाई की समाप्ति पर भारतीय ज्वाइण्ट-स्टाक-कंपनियों के अधिक मात्रा में असफल होने के साथ साथ

* Indigenous Banking in India by 'Jain' Page 153.

अनेक बैङ्क फ़ेल हुए हैं। केवल सन् २३ में २० बैङ्कों के, जिनकी प्राप्त पूँजी ४६५ लाख रुपया थी, दर्वाज़े बन्द हुए हैं। इनमें प्रमुख-प्रमुख बैङ्क ये थे।*

(१) अलायंस-बैङ्क आव् शिमला	प्राप्त पूँजी	८८ लाख
(२) टाटा इंडस्ट्रियल-बैङ्क	"	२२६ "
(३) कलकत्ता इंडस्ट्रियल-बैङ्क	"	७६ "
	योग "	३६३ "

इस प्रकार एक बार नहीं बार बार और प्रति वर्ष बैङ्कों के फ़ेल होने का ताँता लग गया। सन् १६२२ से सन् १६३० तक १३६ बैङ्क ५७५ लाख की प्राप्त पूँजी के फ़ेल हुए हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष १६ बैङ्कों के ६४ लाख की पूँजी ले लेकर डूबते रहने के कारण भारतीय ज्वाइण्ट-स्टाक-बैङ्किंग को धक्का लगना स्वाभाविक है। धरोहर रखनेवाले लोगों के मन मर गये और शेयर-होल्डरों का दिल टूट गया; क्योंकि अधिकांश फ़ेल होनेवाले बैङ्कों के शेयर-होल्डरों को अपनी पूरी पूँजी से हाथ धोना पड़ा। फल-स्वरूप नये बैंक चालू करनेवाले लोगों का उत्साह भंग हो गया और इनकी बढ़ती हुई प्रगति रुक ही नहीं गई, बल्कि और पीछे को पिछड़ गई। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि सन् १६२२ से ३० तक बैंकों की संख्या और पूँजी में कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं हुई। इतना ही

* Minority Report Page 118.

नहीं; बल्कि सन् १६२१ की अवस्था के बराबर भी नहीं पहुँचे; जैसा कि निम्नलिखित तालिका* से प्रगट होता है :—

प्रगति-सूचक तालिका

	सन् १६२१			सन् १६३०		
श्रेणी	बैंकों की संख्या	प्राप्त मूलधन	धरोहर	बैंकों की संख्या	प्राप्त मूलधन	धरोहर
अ[1]	२७	१२४०	७६६०	३०	११८५	६३२२
ब[2]	३८	१००	३२६	५४	१३७	४३१
योग	६५	१३४०	८०१६	८४	१३२२	६७५३

उक्त तालिका के अवलोकन से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि सन् १६२१ में "अ" श्रेणी के बैंकों की संख्या २७ थी, उनका मूलधन १२४० लाख था और उनमें ७६६० लाख रुपये की धरोहर जमा थी। सन् १६३० में केवल ३ बैंक बढ़कर बैंकों की संख्या ३०

*Statistical tables relating to Banks in India 1930, page 2.

१ "अ" श्रेणी—जिनका मूलधन और रक्षित फ़ंड ५ लाख और ऊपर है।

२ "ब" श्रेणी—जिनका मूलधन और रक्षित फ़ंड १ लाख और ५ लाख के बीच में है।

हो गई; किंतु मूलधन और धरोहर की जमा में भारी कमी बनी हुई है अर्थात् ११८५ और ६३२२ लाख की पूँजी क्रमशः रह गई। हाँ, "ब" श्रेणी के बैंकों में अवश्य थोड़ी सी वृद्धि हुई है, जिसको भारत जैसे विशाल देश के लिए संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

भारत-सरकार की उदासीनता—यह मानी हुई बात है कि सरकार को देश के बैंकों का माता की तरह संरक्षण करना चाहिये; किन्तु भारत सरकार जहाँ रेलवे, पास्ट, टेलीग्राफ आदि की उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न करती है, वहाँ बैंकिंग की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देती; बल्कि बेसरोकार तमाशगीर की तरह विदेशी-बैंकों की बढ़ती हुई स्वच्छंदता को, प्रति वर्ष फ़ेल होने-वाले भारतीय बैंकों की संख्या को और भारत की पिछड़ी हुई आर्थिक अवस्था को देख रही है। "पहिले जब एसेम्बली के माननीय मेम्बर कंपनी-क़ानून के संशोधन के लिए प्रश्न पूछते थे तब उनको यह उत्तर मिलता था कि इङ्गलैंड में कंपनी-क़ानून के विचार के लिए ग्रीन्स-कमेटी बैठी हुई है, उसकी रिपोर्ट बन जाने पर भारत सरकार इस काम को हाथ में लेगी। सन् १९२९ में माननीय फ़ाइनेंस मेम्बर ने एसेम्बली के मेम्बरों को सूचित किया था कि इस विषय का विशेष कमेटी द्वारा विचार कराया जावेगा; किन्तु इन तमाम आश्वासनों के बाद कोई भी होने-वाली बात दिखाई नहीं दी। ग्रीन्स कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुए ७ वर्ष हो गये, उसकी सिफ़ारिशों के आधार पर इङ्गलैंड की

पार्लियामेंट ने सन् १९२९ में क़ानून भी बना दिया ; किन्तु यहाँ अभी तक उसके कोई चिह्न दिखाई नहीं देते।"* सन् १९३० में सेंट्रल-बैङ्किङ्ग-इंक्वायरी कमेटी ने भी विशेष बैङ्क-क़ानून बनाने और सब प्रकार की बैङ्किंग उन्नति के लिए अनेक सिफ़ारिशें की हैं। इसे भी ३ वर्ष पूरे हो गये; किन्तु उसपर कोई अमल होता हुआ दिखाई नहीं देता।

अंग्रेज़ी भाषा का प्राधान्य—भारतीय ज्वाइण्ट स्टाक बैङ्कों का भी सारा हिसाब-किताब अंग्रेज़ी में होता है, नियम अंग्रेज़ी में छपते हैं, बैलेंस शीट अंग्रेज़ी में प्रकाशित होती है और हिंदुस्तानी खातेदारों से पत्र-व्यवहार भी अंग्रेज़ी में होता है। चेक अंग्रेज़ी में छपते हैं और लिखे जाते हैं। यहाँ तक कि रक़म को जमा और बरामद भी अंग्रेज़ी के छपे हुए फ़ार्मों द्वारा कराया जाता है और उन पर हस्ताक्षर भी अंग्रेज़ी में कराये जाते हैं। जो खातेदार अंग्रेज़ी नहीं जानते, उनको बैङ्कों के अफ़सर के सामने चेक पर दस्तख़त करने के लिये विवश किया जाता है तथा चेक पर देशी भाषा में बेचाण (Endoresement) होने की हालत में किसी बैङ्क को तसदीक़ (Confirmation) माँगी जाती है। जो बैङ्क देशी भाषा के हस्ताक्षरों को अपनाते हैं, उनके यहाँ इस सम्बन्ध में ऐसे कड़े नियम हैं† कि जिनके कारण चेक में

---

*Bombay Chronicle, 6th march 1931

†Vernacular signature on the cheques should be made in the presence of, and initialled by, one of the officers of

रहनेवाली त्रुटियों से होनेवाली हानियों के प्रति ज़िम्मेदारी खातेदार की रहती है और बैङ्क सुरक्षित रहते हैं। संसार में भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ चेक-सम्बन्धी लेन-देन मेंदेशी भाषा को नहीं अपनाया जाता। यह अड़चन ऐसी है कि अंग्रेज़ी नहीं पढ़े-लिखे लोग, जिनकी संख्या १०० में ९९ हैं, बैङ्कों के साथ व्यवहार करने से वंचित रहते हैं।

---

the Bank. The Bank reserves to itself the right to refuse payment of cheques bearing vernacular signatures not so authenticated—

Central Bank of India's Delhi Current Account rule 13

—:o:—

नवाँ अध्याय

सुधार के उपाय—बैंक-क़ानून

पिछले अध्याय में भारतीय-बैंकिंग की वर्तमान पिछड़ी हुई अवस्था की करुणा-जनक कहानी पाठक पढ़ चुके हैं। अब स्वभावतः प्रत्येक पाठक के हृदय में यह प्रश्न उठता होगा कि भारतीय-बैंकिङ्ग को इस निर्बल, असहाय और अरक्षित अवस्था से मुक्त करके किस प्रकार सबल, सुदृढ़ और सुरक्षित बनाया जा सकता है? इसका उत्तर देना ही इस अध्याय का उद्देश्य है।

भारतीय-बैंकिंग को उन्नतिशील बनाने के लिये पहिली आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय बैंकों की विदेशी-बैङ्कों की प्रतियोगिता से रक्षा की जाय और भारतीय प्रजा के धन का, जो बैंकों में जमा हो, दुरुपयोग न हो और सुरक्षित रहे। दूसरी आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता देकर आगन्तुक-विपत्ति से बैंकों की रक्षा की जावे और फ़ेल होने से बचाने के उपाय किये जायँ। तीसरी आवश्यकता है—भारतीय-बैंकों के प्रति भारतीय जनता का गहरा विश्वास स्थापित हो और विदेशी-बैंकों की अपेक्षा भारतीय-बैंकों को अधिक अपनाया जावे।

ये तीनों आवश्यकताएँ इस प्रकार पूरी की जा सकती हैं:—

(१) नवीन बैंक-क़ानून की रचना की जावे, जिसमें (अ)—

विदेशी-बैंकों के फैलाव और धन्धे पर आवश्यक प्रतिबन्ध हों, (ब) भारतीय बैंकों का संगठन, प्रबन्ध और निरीक्षण उचित रूप से होने के नियम हों और हिस्सेदारों तथा धरोहर जमा करनेवालों को अपने हितों की रक्षार्थ आवश्यक अधिकार हों।

(२) एक ऐसे बैंकों के बैंक राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की जावे, जैसे कि दूसरे देशों में सेण्ट्रल-बैंक स्थापित हैं।

(३) भारतीय विदेशी-व्यापार, उद्योग-धन्धों और कृषि को आर्थिक सहायता देने के वास्ते भारतीय विनिमय-बैंक, औद्योगिक-बैंक, कृषि-सहायक बैंक स्थापित हों।

(४) भारतीय बैंकों का आपस में संगठन हो।

(५) देशी भाषा को अपनाया जावे।

(६) भारतीय जनता आतुरता त्यागकर धैर्य्य के साथ अपने बैंकों के प्रति विश्वास रखना सीखे। इसके लिये देश की सार्वजनिक संस्थाओं की ओर से वृहत् आन्दोलन किया जावे।

क़ानून की आवश्यकता—एक विशद और विभिन्न श्रेणियों से संयुक्त समाज में, जहाँ अधिकार, स्वत्व और कर्तव्यों के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न भिन्न भिन्न श्रेणियों के बीच में उठ सकते हैं या उठा करते हैं, वहाँ सामाजिक व्यवस्था, सुधार तथा शान्ति स्थापित रखने के उद्देश्य से समय समय पर परिस्थिति के अनुकूल क़ानून की सृष्टि होती रहती है। क़ानून का यह भी उद्देश्य है कि वह आर्थिक अवस्था का यथावत् सञ्चालन करे, जिससे समाज

रूपी यन्त्र सुगमता के साथ चलता रहे। क़ानून का धर्म है कि वह न्याय-तुला को संतुलन पर स्थिर रक्खे और सदैव सबल से निर्बल की रक्षा करने में तत्पर रहे। यह निश्चित है कि बिना सब प्रकार के क़ानून के मनुष्य-समाज व्यवस्थित रूप से नहीं रह सकता; किन्तु इसके साथ ही आदर्श स्वतन्त्रता-वादियों का यह भी सिद्धान्त है कि यथासम्भव राज्य का कम से कम हस्तक्षेप होना चाहिये; पर इसके विरुद्ध प्रत्येक देश में विशेष कर युनाइटेड किंगडम में समाज के जीवन और हल-चल के लिये अनेक क़ानून प्रचलित हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का, समष्टि की हित-रक्षा के सामने, गौण रूप से ध्यान रक्खा जाता है। जो राजकीय अधिक हस्तक्षेप के अनेच्छुक हैं, उनका यह कहना है कि "पार्लियामेण्ट के क़ानून द्वारा तुम किसी आदमी को संयमी नहीं बना सकते।*" इस पर भी बहुत कुछ विपरीत परिस्थितियों के वशीभूत होकर रूस और अमरीका† में नशीली चीज़ों का बनाना और बेचना क़ानून-विरुद्ध करार दिया गया है। भारत में इस कम से कम हस्तक्षेप के आदर्श को आर्थिक-समस्या के हल करते समय सामने रखने का यह अर्थ है कि भारत को संसार-व्यापी उन्नति की दौड़ में पीछा रखना है और बलवान संगठित और प्रभावशाली प्रतियोगिता

---

* "You can not make a people sober by an act of parliament."

† अमरीका में मदिरा-निषेध-क़ानून अभी हाल में मंसूख़ हो चुका है।
—लेखक

से यहाँ के उद्योग-धन्धे और व्यापार को चौपट करके इस दरिद्र देश को और भी दरिद्री बनाना है। बैंक-क़ानून के सम्बन्ध में तो यह आदर्श रखना भारत-विरोधी प्रबल शक्तियों की काली करतूतों पर पर्दा डालना है और साथ ही भारतीय बैंकों के संचालकों को मनमानी करते रहने के लिये स्वच्छन्द छोड़ देना है।

बैंक देश के सार्वजनिक कोषागार हैं। इनके सुसंगठन, सुप्रबन्ध और सदुव्यवहार का देश की आर्थिक अवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है; इसलिये बैंकों के नियन्त्रण और संचालन के वास्ते उपयुक्त होना अनिवार्य है।

वर्तमान बैंक-क़ानून—इस समय भारतीय बैंकों का नियन्त्रण भारतीय कम्पनी-क़ानून १९१३ के अनुसार होता है। इस क़ानून में ७ दफ़ायें (४, ३२, १३२, १३६, १३८, १४५ और २५९) ऐसी हैं, जो बैंकिङ्ग धन्धा करनेवाली कम्पनियों का दूसरी प्रकार की कम्पनियों से पृथक्करण करती हुई बैंकों के लिये विशेष नियम होना सूचित करती हैं; जैसे—१० से अधिक व्यक्तियों को शामिल होकर बिना कम्पनी की भाँति रजिस्ट्री कराये बैंकिङ्ग-धन्धा करने से रोकना, प्रतिवर्ष हिस्सेदारों की नामावलि रजिस्ट्रार के यहाँ प्रेषित कराना, नियत किये हुए फ़ार्म (एफ़) के अनुसार बैलेन्स-शीट तय्यार कराना और स्थानीय सरकार (Local Government) को, जारी-शुदा पूँजी (Issued capital) के $\frac{1}{5}$ के मालिक हिस्सेदारान की ओर से दरख़्वास्त प्राप्त होने पर

उस बैंक के मामलात की, एक या अधिक हिसाब-निरीक्षक नियुक्त करके जाँच कराने का अधिकार होना, इत्यादि। इतना भर बैंकों पर यथोचित नियन्त्रण रखने के लिये पर्याप्त नहीं है। प्रतिवर्ष फ़ेल होनेवाले बैंकों की संख्या इसका प्रबल प्रमाण है; अतएव बैंक-सम्बन्धी क़ानून में सुधार की भारी आवश्यकता है। इसकी पूर्ति दो प्रकार से की जा सकती है :—

(१) वर्तमान कम्पनी-क़ानून में बैंक-सम्बन्धी कुछ धाराएँ और जोड़कर।

(२) बिलकुल नया क़ानून बनाया जाकर।

नया क़ानून—पहले की अपेक्षा दूसरा उपाय अधिक स्पष्ट और उपयुक्त प्रतीत होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से 'ज्वाइण्ट-स्टाक' का सिद्धान्त बैंकिङ्ग और दूसरे धन्धों के लिये समान है; किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से दोनों में गहरा भेद है। साधारण 'ज्वाइण्ट स्टाक' कम्पनी के धन्धों में कुप्रबन्ध तथा अन्य कारणों से होनेवाले नुक़सान का असर सबसे पहिले हिस्सेदारों पर होता है। यदि कभी कम्पनी के पावनेदारों पर इसका असर पड़ता है तो प्रथम तो वे व्यापारिक सिलसिले में विचार-पूर्वक पावनेदार बनते हैं, दूसरे जो लोग इन कम्पनियों को उधार देते हैं, वे भी यह बात जानते हैं कि हम ऐसी कम्पनी को उधार दे रहे हैं, जो नफ़ा-नुक़सान उठाने के लिये ख़ुद का धन्धा करती है और कभी भी व्यापारिक तेज़ी-मन्दी के कारण असफल हो

सकती है। उन्हें कोई विवश नहीं करता; बलिक वे लोभ के कारण स्वयं जोखम उठाना स्वीकार करते हैं।

बैंक के पावनेदारों की स्थिति इससे बिलकुल भिन्न होती है। बैंकों के लिये लोगों का ऐसा ख़्याल होता है कि ये केवल कम ब्याज पर उधार लेकर कुछ अधिक ब्याज पर बड़े सोच-विचार के साथ सुरक्षित अवस्था में उधार देते हैं, ख़ुद कोई नफ़े-नुक़सान की जोखम उठाकर व्यापार नहीं करते; इसलिये इनमें नुक़सान होने की सम्भावना बहुत ही कम रहती है। इसके अतिरिक्त बैंक छोटी छोटी रक़में माँगते ही वापस देने के लिये ब्याज पर जमा रखते हैं और चेकों द्वारा छोटी छोटी रक़में अदा भी कर देते हैं। इन सुविधाओं से प्रेरित होकर लोग बैंक के साथ हिसाब रखने के लिये विवश होते हैं। आम तौर पर इनमें रक़में सुरक्षित रहने की दृष्टि से जमा की जाती है न कि केवल ब्याज कमाने के लिये। इस प्रकार बैंक देश के व्यवसाय और उद्योग-धन्धों के लिये सर्वसाधारण की बचत (Savings) को संग्रह करने में समर्थ होते हैं। इनके फ़ेल होने का, दूसरे धन्धों की अपेक्षा, लोगों पर अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है और देश के आर्थिक संगठन को लड़ी कमज़ोर होती है; अतएव बैंक-सम्बन्धी क़ानून कम्पनी-क़ानून से बिलकुल पृथक् होना चाहिये ताकि बैंक और प्रजा दोनों के बीच में एक दूसरे के साथ व्यवहार करने के लिये स्थिति स्पष्ट हो जावे।

भारत में बैंक-क़ानून की माँग "सन् १९१३ से की

जा रही है। सर्वप्रथम कराँची में होनेवाली भारतीय-इण्डस्ट्रीयल-कॉन्फ्रेन्स ने इसके लिये प्रस्ताव पास करके बैंकिंग-क़ानून बनाने के लिये सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। इसके बाद सन् १९१३—१५ में फ़ेल होनेवाले बैंकों की संख्या से भारत सरकार की आँखें खुलीं और उसने स्थानीय सरकारों और व्यापारिक संस्थाओं से इस सम्बन्ध में सम्मतियाँ माँगीं, उनमें बहुमत जल्दी क़ानून बनाये जाने के पक्ष में था। तत् पश्चात् सन् १९२० में बंगाल चेम्बर ऑव् कॉमर्स की प्रार्थना पर एक कमेटी ने इस प्रश्न पर विचार किया। उसने भी मूलधन-सम्बन्धी पाबन्दियाँ लगाने और उचित निरीक्षण होने के लिये नियम बनाने की सिफ़ारिश की थी।"* सन् १९३० में समस्त प्रान्तीय बैंकिंग इंक्वाइरी कमेटियों ने और अन्त में सेंट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी ने नवीन बैंक क़ानून बनाने की ज़ोरों से सिफ़ारिश की है।

क़ानून का उद्देश्य—क़ानून ऐसा सुगम, उपयुक्त और पूर्ण होना चाहिये, जिससे भारत-स्थित विदेशी बैंकों की प्रतियोगिता से भारतीय-बैंकों की रक्षा हो, फ़ेल होने से बचें और पिछड़ी हुई अवस्था दूर होकर भारतीय बैंकिंग धन्धा उन्नति को प्राप्त हो। इसके निम्नलिखित ५ उद्देश्य होने चाहिये :—

---

* Regulation of Banks in India by M. L. Tannan page 3, 4.

(१) विदेशी-बैंकों के कारोबार पर प्रतिबन्ध लगाना।

(२) भारतीय बैंकों का 'उपयुक्त संगठन' होना।

(३) भारतीय बैंकों का 'उत्तम प्रबन्ध' होना।

(४) भारतीय बैंकों का 'उचित निरीक्षण' होना।

(५) द्वेष-पूर्ण और झूठे आरोपों और आक्रमणों से बैंकों की रक्षा करना।

विदेशी बैङ्कों के लिये प्रतिबन्ध

कार्य-क्षेत्र-सीमा—विदेशी बैंक, जो विनिमय का धन्धा करते हैं, अपनी अपनी शाखायें उन देशों में, जिनसे उनके देश का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है, खोलते हैं, ताकि व्यापारिक भुगतान और चुकौता आसानी से हो सके। इनका व्यवसाय दूसरे देशों में विनिमय-सम्बन्धी लेन-देन तक ही सीमित रहता है। इनका काम केवल एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक आने-जानेवाले माल को आर्थिक सहायता देना है; किन्तु देश के भीतरी व्यवसाय से इनका कोई प्रयोजन नहीं होता है। "सन् १९२९ ई० में एक अन्तर्राष्ट्रीय-कान्फ्रेन्स पेरिस में बैठी थी, उसके सामने यह माँग पेश की गई थी कि विदेशियों के काम-काज और हलचल पर, जहाँ तक उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय की आवश्यकता से सम्बन्ध है, कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। इस पर वाद-विवाद होने के पश्चात् यह बात मान ली गई है कि विदेशियों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के अधिकारों

में देश के अन्दरूनी व्यापार से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। इसको प्रत्येक राष्ट्र अपने देशवासियों के लिये सुरक्षित रख सकेगा।"* दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सीमा केवल एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक आयात-निर्यात से है, न कि उस माल को देश के भीतरी भागों में विभक्त करने और भीतरी भागों से संग्रह करके निर्यात के लिये बन्दर-गाह तक पहुँचाने के व्यवसाय से।

"दूसरे देशों में विदेशी बैङ्कों का फैलाव इस बात की पुष्टि करता है। लगभग सभी देशों में विदेशी बैङ्कों का व्यावसायिक क्षेत्र मुख्य मुख्य व्यावसायिक केन्द्र; जैसे—पेरिस, बर्लिन, मिश्र, आस्ट्रेलिया, ब्राज़ील, अर्जनटाइन आदि के बन्दरगाहों के शहरों में सीमित है। ये अपने विज्ञापनों में भी यही प्रकट करते हैं कि उनकी शाखायें समस्त मुख्य मुख्य बन्दरगाहों में हैं; किन्तु देशों के भीतरी व्यापारिक शहरों में शाखायें होने का दावा नहीं करते। योकोहामा स्पेसी बैङ्क की ४० शाखायें हैं और सबकी सब बन्दरगाही शहरों में हैं। दी गारण्टी ट्रस्ट कम्पनी आव् न्यूयार्क की शाखायें केवल लन्दन, लिवरपूल, पेरिस, हावर, ब्रुसेल्स और एण्टवर्प में हैं। दी कोम्टोयर नेशनल फ्रान्स की चन्द शाखायें इङ्गलैण्ड, बेलजियम, आस्ट्रेलिया, भारत और इजिप्ट में खुली हुई हैं। ये सबकी सब बन्दरगाही शहरों में

---

*Minute of Dissent by Nalini Ranjan Sarkar, Para 11, 12 Majority Report of C. Bkg. E Com.

हैं।" तात्पर्य यह है कि समस्त विनिमय बैंकों ने दूसरे देशों में अपना कार्य-क्षेत्र बन्दरगाही शहरों तक समझा हुआ है; लेकिन भारत में इनकी शाखायें बन्दरगाही शहरों की सीमा को छलांग मारकर देश के भीतरी भाग; जैसे—अमृतसर, देहली, कानपुर, लाहौर, रावलपिण्डी, शिमला और श्रीनगर आदि अनेक शहरों में फैली हुई हैं, जो भारतीय बैङ्कों की उन्नति के मार्ग में अत्यन्त बाधक हो रही हैं।

अन्य प्रतिबन्ध—दूसरे देशों में केवल बन्दरगाही शहरों में विदेशी-बैंकों की खुलनेवाली शाखाओं पर, उस देश के बैङ्कों के साथ प्रतियोगिता, उस देश की पूँजी का दुरुपयोग और उस देश के निवासियों को उपेक्षा करना रोकने के लिये, अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं; यथा*—

डेनमार्क में विदेशी-बैंकों को अपना कारोबार फैलाने के लिये विशेष आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है। यह आज्ञा आसानी से नहीं दे दी जाती है, आज्ञा देने के साथ साथ कुछ शर्तें लगाई जाती हैं; जैसे—शाखाओं के कार्य-कर्त्ता, मैनेजर उस देश के निवासी (डेनिश) होने चाहिये।

फ़ान्स और इटली में शाखा खोलनेवाले विदेशी बैंकों पर उनके मूलधन और विनिमय के व्यवसाय पर विशेष टैक्स लगाया जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य प्रतियोगिता रोकना होता है।

---

*Bombay Chronicle, 2nd march, 1931.

ज़ेको-स्लेवेकिया में वहाँ की सरकार विदेशी-बैङ्कों को शाखायें खोलने से रोकती है।

जापान में विदेशी बैङ्कों को वहाँ के अर्थ-सचिव (Finance Minister) से लाइसेन्स प्राप्त करना पड़ता है; किन्तु लाइसेन्स का देना या न देना उसकी इच्छा पर निर्भर है। वह चाहे तो इंकार कर सकता है या स्थानीय अमानतों के जमा रखने की रुकावट डालकर और ऐसे कर लगाकर, जो उसके नज़दीक आवश्यक हो, लाइसेन्स दे देता है। इस पर भी वे बैंक जापान में अपने नाम के साथ 'बैंक' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। साथ ही जापानी सरकार विदेशी बैंक की प्रत्येक शाखा से १ लाख 'येन' ज़मानत के तौर पर जमा कराती है।

टर्की में कमाल पाशा की नवीन सरकार विदेशी-बैंकों की शाखाओं को ५० प्रतिशत तुर्की नौकर रखने के लिये विवश करती है। यह नियम पुराने समय से स्थापित बैंकों पर भी उसी प्रकार लागू है जैसा कि नवीन खुलनेवाले प्रार्थी बैंकों पर।

संयुक्त राज्य अमरीका में विदेशी बैंकों की शाखाओं को अमानतें जमा रखने का अधिकार नहीं है।

आस्ट्रेलिया और कनाडा—घर के नज़दीक़ ब्रिटिश साम्राज्य की गोद में इन दो बड़े उपनिवेशों के उदाहरण भी मौजूद हैं। आस्ट्रेलिया में कोई विदेशी बैंक शाखा नहीं खोल सकता। 'चार्टर्ड-बैंक आव् इण्डिया, आस्ट्रेलिया और चाइना' की शाखा

भी आस्ट्रेलिया में नहीं है, हालाँकि यह बैंक अपने नाम में 'आस्ट्रेलिया' शब्द का प्रयोग करता है। कनाडा में भी विदेशी बैंकों पर क़ानून-द्वारा प्रतिबन्ध लगे हुए हैं।

इंगलैण्ड जैसा शक्तिशाली देश भी, जिसका बैंकिंग धन्धा पूर्ण संगठित है और सुदृढ़ रूप से जमा हुआ है, व्यापारिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगा है। कन्लिफ़ कमेटी ने, जो लड़ाई के बाद करेन्सी और विदेशी विनिमय पर विचार करने के लिये बैठी थी, अपनी रिपोर्ट में कहा है—

"हमारे सामने चन्द गवाहों ने उस अवस्था की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो इस देश में विदेशी बैंकों के जमने के लिये खुला द्वार होने से उपस्थित हुई है; अतः हम प्रस्ताव करते हैं कि सम्राट की सरकार को इस ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिये।"*

इस रिपोर्ट पर उक्त कमेटी के समस्त सदस्यों ने एक मत होकर हस्ताक्षर किये हैं, जिनमें हमारे भूतपूर्व फ़ाइनेन्स मेम्बर

---

*"Several of our witnesses have called attention to the condition under which it is open to foreign banks to establish themselves in this country. We suggest that this is a matter which should receive the early attention of His Majesty's Government. "Organization of Indian Banking" by 'Thakur' page 249."

सर बेसिल ब्लेकिट के, जो उस वक्त ब्रिटिश ट्रेजरी के अर्थ-सचिव थे, हस्ताक्षर शामिल हैं।

लाइसेन्स की आवश्यकता—उपरोक्त पंक्तियों का सारांश यह है कि अधिकांश देशों में विदेशी बैंकों को अपनी शाखायें खोलने के लिये उस देश की सरकार से आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है। इस आज्ञापत्र ही को 'लाइसेन्स' कहते हैं। आज्ञा देना न देना उस देश के तत्सम्बन्धी अधिकारियों की इच्छा पर निर्भर होता है। आज्ञा देते समय कुछ बन्धन ऐसे लगा दिये जाते हैं, जिनसे वे बैंक वहाँ के देशी बैंकों के साथ प्रति-योगिता करके उनका व्यापार अपहरण करने में सफल न हो, सकें और वहाँ की राष्ट्रीयता को धक्का न लगे। इंगलैण्ड जैसे जिन देशों में अब तक प्रतिबन्ध नहीं है, वहाँ अब लगाने के लिये सोचा जा रहा है। हालाँकि उनकी सुसंगठित बैंकिंग को देखते हुए किसी प्रकार के प्रतिबन्धों की आवश्यकता नहीं है। ऐसी हालत में भारत जैसे देश में, जहाँ का बैंकिङ्ग धन्धा निर्बल अवस्था में है और जो विदेशी बैंकों के संगठन, प्रभाव और समृद्धि के आगे पनपने नहीं पाता और भी आवश्यकता इस बात की है कि स्थानीय बैंकों के संरक्षण के लिये, राष्ट्र हित की रक्षार्थ तथा यहाँ की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने के हेतु, भारत-स्थित विदेशी बैंकों की स्वच्छन्दता को रोकने और भविष्य में नवीन विदेशी बैंकों की स्थापना के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक प्रतिबन्ध लगाये जाकर लाइसेन्स-प्रथा जारी की

जाय। इसको भारतीय सेण्ट्रल बैंकिङ्ग इंक्वायरी कमेटी (१९३१) ने भी एक स्वर से मान लिया है और साथ ही विदेशी बैंकों के प्रतिनिधि ने उस कमेटी के सामने गवाही देते समय स्वीकार कर लिया है; यथा—"मैं यह कह सकता हूँ कि विनिमय बैंक किसी भी प्रकार के लाइसेन्स को, जो सरकार-द्वारा नियत किया जा सके, पूर्ण रूप से स्वीकृत करने को तैयार हैं।"*

लाइसेन्स की शर्तें—भारत की राष्ट्रीय दृष्टि से भारतीय बैंक और व्यापारियों की उन्नति के निमित्त तथा सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये निम्नलिखित शर्तें उपयोगी मालूम होती हैं—

(१) विदेशी विनिमय बैंकों की कार्यक्षेत्र-सीमा बन्दरगाही शहरों तक सीमित हो।

(२) इनका व्यवसाय केवल एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक आने-जानेवाले माल को आर्थिक सहयोग देने तक रहे। देश के भीतरी भाग के व्यवसाय से इनका कोई सम्बन्ध न हो।

(३) ये भारतीय प्रजा की मियादी और सेविंग बैंक खाते की अमानतें (Deposits) जमा न रख सकें, केवल चल्लू खाते में जमा रखने की स्वतन्त्रता हो।

---

* "I can say that the exchange Banks are perfectly willing to agree to any licence which government may prescribe."

Question no. 3292 (Minority Report Page 213.)

(४) इनकी भारतीय शाखाओं के कर्मचारियों में केवल मैनेजर को छोड़कर शेष अमला भारतीय हो।

(५) इनकी भारतीय शाखाओं के संचालन के लिये प्रत्येक शाखा के शहर में वहाँ के भारतीय व्योपारियों के बहुमत के साथ एक परामर्श-मंडल स्थापित करना आवश्यक हो।

(६) भारतीय क़ानून के अनुसार और भारतीय ज्वाइएट-स्टाक-बैंकों के समान, भारतीय शाखाओं के सम्बन्ध का लेखा-जोखा प्रकाशित करने के लिये पाबन्द हों।

(७) इनके फ़ेल होने पर लेने-देने का चुकौता करने के लिये भारतीय हाईकोर्ट द्वारा रिसीवर नियुक्त हों, जिनको इनकी पूँजी अपने अधिकार में लेने का अधिकार हो और ऐसी पूँजी के विभाजन पर सर्वप्रथम भारतीय पावनेदारों का स्वत्व रहे। यदि भारत-स्थित सम्पत्ति से भारतीय पावनेदारों की रक़म वसूल न हो सके तो विदेशों में होनेवाले सम्पत्ति-विभाजन में भारतीयों को हिस्सा बँटाने का अधिकार हो।

(८) इनको भी भारतीय बैंकों के समान इंकम्-टैक्स देना पड़े।

पहली और दूसरी शर्तों के सम्बन्ध में ऊपर विस्तृत रूप से लिखा जा चुका है। इनसे यह लाभ होगा कि मौजूदा भारतीय बैंकों को उन्नति करने का अवसर मिलेगा और नवीन खुलनेवाले बैंकों को सफलतापूर्वक कार्य करने के लिये उत्तम क्षेत्र प्राप्त होगा। अतिरिक्त इसके उन भारतीय व्योपारियों के हितों की

रक्षा होगी, जो देश के भीतर का व्यवसाय करते हैं और अब तक विदेशी बैंकों द्वारा सहायता-प्राप्त विदेशी कम्पनियों और व्यापारियों की प्रतिस्पर्धा से मुक़ाबला करने में समर्थ नहीं होते हैं।

अमानतों की रोक—यह माना हुआ सिद्धान्त है कि "सार्वजनिक प्रजा का धन सराफ़ा बाज़ार को धनी बनाने के काम आना चाहिये न कि विदेशों में भेजा जावे।"* संसार के समस्त देश इसका अनुकरण करते हैं। अमरीका में विदेशी बैंकों का अमानतें जमा रखना क़ानून द्वारा वर्जित है। दूसरे देशों ने भी अन्य कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाकर इस सम्बन्ध में रुकावटें डाल रक्खी हैं, जिनका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है।

"यह मानी हुई बात है कि भारत-स्थित विदेशी बैंकों के पास भारतीय विदेशी-व्यापार के लिये जितने धन की आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक अमानतें जमा हैं। सन् १९२८ में इन बैंकों में ६६·३ करोड़ में से ३८·८६ करोड़ रुपया केवल भारतीय-प्रजा का जमा था, जब कि विदेशी-विनिमय बिलों में केवल ११ करोड़ रुपया लगा हुआ था। प्रस्तावित-प्रतिबन्ध केवल भारतीय बचत (Savings) अर्थात् मियादी और सेविंग्स-बैंक की अमानतों को जमा होने से रोकता है और भारतीय लोगों के चलू खातों की जमाओं को तथा विदेशी लोगों, कम्पनियों और संस्थाओं की सब प्रकार की 'जमा' रखने के लिये स्वतन्त्रता

*Minority Report, para 222, para 204

देता है; अतः विदेशी लोगों की हर प्रकार की 'जमा' २७ करोड़ और चल्लूखाते की भारतीय 'जमा' २० करोड़ मिलकर ४७ करोड़ के लगभग होती है, जो इन बैंकों के विदेशी धन्धे की आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त ही नहीं, बल्कि अत्यधिक है। हाँ, यह अवश्य है कि मुफ़स्सलात से शाखाएँ हटा लेने पर इस जमा में अवश्य कमी आ जावेगी, लेकिन फिर भी चल्लूखाते की भारतीय 'जमा' में ११ करोड़ से कम होने की सम्भावना नहीं है।"

सेण्ट्रल बैंकिंग-इंक्वाइरी-कमेटी (१९३१) ने भी इस सम्बन्ध में पूर्ण विचार किया है। बहुमत रिपोर्ट में तो किसी भी प्रकार की 'जमा' पर प्रतिबन्ध लगाने की सिफ़ारिश नहीं की गई है; लेकिन श्रीमनु सूबेदार ने अपनी अल्पमत-रिपोर्ट में जो सिफ़ारिशें की हैं, उनमें चल्लू खातों की जमाओं पर भी प्रतिबन्ध लगाया है; किन्तु हमने चल्लू खाते की 'जमा' को प्रतिबन्धों से मुक्त रक्खा है। उसके कारण हैं :—

(१) जब तक भारतीय विनियम बैंक स्थापित होकर चल न निकले तब तक विदेशी व्यापार में गति रखनेवाले व्यापारियों को इन्हीं बैंकों से काम लेना पड़ेगा और एक बैंक को अपनी साख़ का परिचय दिलाने के लिये अनेक साधनों के साथ साथ चल्लू खाता रखना भी एक आवश्यक साधन है।

(२) चल्लू खाते की रक़म संचित-धन (Savings) नहीं कही जा सकती और न यह केवल सूद कमाने के लिये ही जमा की जाती है। यह बाज़ारू व्यापारिक रुपया होता है, जो व्यापा-

रिक लेन-देन का चुकौता करने के लिये दैनिक उपयोग में आता रहता है। भारतीय विनिमय-बैंक स्थापित होने पर भारतीय व्यापारियों का उससे लेन-देन आरम्भ होने के साथ इन विदेशी बैंकों से अधिक सम्बन्ध न रहने के कारण भारतीय व्यापारियों के चल्लू खाते की जमा अपने आप कम होती चली जायगी, इसलिये इस 'जमा' पर प्रतिबन्ध लगाये जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

जमा रखनेवाले का अधिकार—प्रत्येक मनुष्य अपने रुपये को अपनी इच्छानुसार उपयोग में लाने का पूर्ण अधिकारी है। बाज़ार में अनेक बैंक हैं, जो जनता का रुपया खींचने के लिये प्रतिस्पर्धावश एक दूसरे से उत्तम सुविधा उपस्थित करते हैं। इस विशेष साधन से जनता क्यों न विशेष लाभ उठावे? यह एक आवश्यक और महत्व-पूर्ण प्रश्न है, जो सर ओसबॉर्न स्मिथ ने सेण्ट्रल बैंकिंग इन्क्वाइरी कमेटी के सामने उठाया था।* इसका युक्ति-

* "There should be no interference with the deposit of Indian Money with foreign banks in India. I am strongly against any interference in matters on this sort, as people should have the right to invest their money as they wish : the more banks there are that compete for their money, the greater facilities the public will enjoy." Sir Osborne Smith (Minority Report, para 228).

युक्त और मार्मिक उत्तर श्रीमनु सूबेदार ने अपनी अल्पमत रिपोर्ट के पैरा नं० २२८ में बड़ी योग्यता से दिया है।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता—अपने निजी हित के लिये इच्छानुसार कार्य करने के वास्ते प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। यह सिद्धान्त उचित अवश्य है; किन्तु फिर भी नियन्त्रण-रहित नहीं है। उदाहरणार्थ—इस समय चीन और जापान दो देशों में लड़ाई है। जापान के व्यापारी को युद्ध-सम्बन्धी सामान की क़ीमत जापान की अपेक्षा उसके शत्रु-देश चीन से अच्छी मिलती है और उसको बेचने में निःसन्देह जापान के व्यापारी को बड़ा लाभ होता है, लेकिन वह ऐसा करने पर देशद्रोही समझा जाकर तुरन्त गिरफ़्तार कर लिया जावेगा और उसको कठोर दंड दिया जायगा।

व्यक्ति और राष्ट्र—शान्ति-काल में देश-विरुद्ध कार्यों की व्याख्या करना और उनको मालुम करना अधिक कठिन होता है; लेकिन प्रत्येक सुसंगठित राष्ट्र इस बात का सदैव ध्यान रखता है कि सामुहिक हित को व्यक्ति विशेष द्वारा हानि न पहुँचने पावे। इसकी वजह से कोई व्यक्ति ऐसा कोई काम नहीं कर सकता, जिससे राष्ट्र के सामुहिक कार्यों में बाधा पहुँचे। इस प्रकार देश के आर्थिक छिद्रों की ओर सचेत रहना प्रत्येक राष्ट्र का प्रधान कर्त्तव्य है। इसका ठीक ठीक पालन जापान, इटली और टर्की जैसे देशों ने किया है, जो किसी ज़माने में भारत से भी अधिक पिछड़ी हुई अवस्था में होने पर भी उन्नति करते हुए

अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में स्थान प्राप्त कर सके हैं। भारत-सरकार कई कारणों से इस कर्त्तव्य का पालन करने में उपेक्षा कर रही है, जिनका विवेचन करना यहाँ अप्रासंगिक है।

उपस्थित प्रश्न राष्ट्र के विरुद्ध व्यक्तिगत अधिकारों का है। राष्ट्रीय-जीवन का प्रथम उद्देश्य यह है कि समस्त व्यक्तियों को मिलकर विदेशी शक्तियों के विरुद्ध, चाहे लड़ाई का ज़माना हो या शान्ति का, सभी बातों में एक दूसरे को सहायता पहुँचाने का ध्यान रखना चाहिये। चूँकि सब देश-वासी मिलकर राष्ट्र और व्यक्तियों के हितों की रक्षा करने के लिये वाध्य हैं; इसलिये राष्ट्र की काम में आनेवाली शक्तियों से, चाहे सामुहिक हो या व्यक्ति विशेष की, लाभ उठाने का पहला अधिकार उस राष्ट्र के निवासियों का है। एतदर्थ राष्ट्र की सरकारी और निजी नौकरियों पर नियुक्त होने का सबसे पहले उस देश के क़दीमी नागरिकों का अधिकार है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दी जानेवाली सरकारी सहायता और रियायतों का उपभोग करने के एक मात्र अधिकारी उस देश के असली निवासी हैं। सरकार से संरक्षण पाने का केवल और सर्वोपरि अधिकार देश के पैतृक-निवासियों का है। अस्तु भारत में भी देश के साधनों का उपभोग करने में पहला स्वत्व भारतीय जनों का है। चूँकि सर्वसाधारण की बचाई हुई पूँजी (Savings) देश की पूँजी है। इसकी देश को व्यापार और उद्योग-धंधे बढ़ाने के लिये भारी आवश्यकता है;

इसलिये इसको कोई, भारतीय-जनों के अतिरिक्त; किसी दूसरे के हाथ में नहीं सौंप सकता।

सरकार और व्यक्तिगत सम्पत्ति—समस्त देशों में व्यक्तिगत-सम्पत्ति पर मालिकाना अधिकार पहले राष्ट्र का और बाद में मालिक का माना गया है। अनेक देशों ने झगड़े-टंटों से बचने और अधिक मात्रा में पराये स्वार्थ को दूर रखने के उद्देश्य से अपने यहाँ विदेशियों के लिये जायदाद ख़रीदने की मनाही कर रक्खी है। प्रत्येक राज्य के अन्दर व्यक्तिगत सम्पत्ति सरकार के दख़ल से सुरक्षित रहती है। जायदाद-सम्बन्धी समस्त व्यक्तिगत अधिकार सरकार द्वारा बनाये हुए क़ानून के आधीन होते हैं, जिनको सरकार देश के सम्मिलित हित के वास्ते हमेशा बदलने का अधिकार रखती है। जायदाद में मालिकाना अधिकार प्राप्त करने के लिये मालिक-द्वारा चुकाया हुआ प्रत्येक 'बदल' उचित नहीं होता; बल्कि वह बदल उचित होता है, जिसको सरकार उचित समझती है। सरकारी क़ानून जायदाद की मिलकियत की परिपाटी नियत करता है, उसके स्वत्व-परिवर्तन और दाख़िल-ख़ारिज होने के सिद्धान्त बनाता है। प्रत्येक सरकार को राष्ट्र के सम्मिलित हित के लिये जायदाद के लाभ में से टैक्स के रूप में हिस्सा बँटाने का अधिकार होता है, जिसको चुकाना प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनिवार्य होता है और ऐसा टैक्स व्यक्तिगत लोगों के सब प्रकार के निजी लेन-देन से सर्वप्रथम वसूल किये जाने-योग्य होता है। इस प्रकार क़ानून और टैक्स

को स्थापना करके भी सरकार व्यक्तिगत मिलकियत और उससे प्राप्त होनेवाले अधिकारों की सीमा बाँधने का अधिकार रखती है।

इन मौलिक सिद्धान्तों पर गहरा विचार करने के बाद यही परिणाम निकलता है कि एक व्यक्ति को अपनी बचाई हुई पूँजी पर देश के दूसरे व्यक्तियों के मुक़ाबले में अपनी इच्छानुसार उपभोग करने का अधिकार है, न कि राष्ट्र के मुक़ाबले में। सरकार राष्ट्र की संचालक है। वह राष्ट्र के ख़र्च से प्रत्येक व्यक्ति की पूँजी की रक्षा करने का प्रबन्ध करती है; इसलिये वह राष्ट्र के सम्मिलित हित को सामने रखकर आज्ञा दे सकती है कि व्यक्ति-विशेष को अपनी बचाई हुई पूँजी का क्या उपयोग करना चाहिये और क्या नहीं।

इन्हीं सिद्धान्तों की दुहाई देकर भारत सरकार ने कांग्रेस के सत्याग्रह-आन्दोलन जारी कर देने पर उसके सहायकों को सहायता देने से रोकने के लिये हुक्म जारी किये थे। दुःख तो इस बात का है कि ब्रिटिश-सरकार अपने या अपने देश (ब्रिटेन) वासियों के हित के लिये तो इन सिद्धान्तों का अनुकरण कर लेती है, लेकिन जब ब्रिटेन के विरुद्ध भारतीय-प्रजा के हित का प्रश्न सामने आता है तब व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का राग अलापती है। अस्तु

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्र के सम्मिलित हित की दृष्टि से संचालन करने के लिये सरकार का निजी

पूँजी के उपयोग-सम्बन्धी व्यक्तिगत अधिकारों में दख़ल देना सर्वथा उचित और दूसरे देशों में स्वीकृत नीति के अनुसार है; अतएव भारत सरकार को चाहिये कि विदेशी बैंकों में जमा होनेवाली भारतीय अमानतों को रोकने के लिये क़ानूनी नियम अवश्य बनाये।

कर्मचारी—विदेशी बैंक लगभग ७५ वर्ष से भारतीय पूँजी और व्यापार से लाभ उठाते आ रहे हैं; किन्तु इन्होंने इतने लम्बे समय के अन्दर एक भी भारतीय को उच्च पद पर नियुक्त नहीं किया। इससे अधिक भारतीयों की उपेक्षा का और क्या प्रमाण हो सकता है? सेण्ट्रल-बैंकिंग-इंक्वाइरी कमेटी के समस्त सदस्यों ने भी इस पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया है और उन्होंने यह परामर्श दिया है कि इनको इम्पीरियल बैंक की भाँति भारतीयों के लिये शिक्षण-योजना आरम्भ करनी चाहिये और काम के योग्य हो जाने पर उनको ज़िम्मेदारी के पदों पर नियुक्त करना चाहिये।* उक्त कमेटी के

---

* We are impressed by the fact that though the exchange banks have been operating in India for more than half a century, they have not employed a single Indian in the superior grades of their service. It can hardly be contended that the banks have been unable during all this time to find even one competent Indian who could be entrusted with a superior officer's position

सदस्यों में से श्री० नलिनिरंजन सरकार और श्री० मनुसूबेदार ने केवल परामर्श से सन्तुष्ट न होकर चौथी शर्त के अनुसार प्रतिबन्ध न लगाये जाने की सिफ़ारिश की है। ऊपर टर्की का उदाहरण उद्धृत किया जा चुका है। वहाँ विदेशी-बैंकों के लिये क़ानूनी नियम है कि ५० फ़ीसदी अमला तुर्की होना चाहिये। इसी प्रकार इटली में भी विदेशी-बैंक अपनी शाखाओं में अपने देश के मैनेजर कठिनता से रख सकते हैं। जब दूसरे उन्नतिशील देशों का यह हाल है तो भारत जैसे देश में कोरे उपदेशों से कैसे काम चल सकता है; अतएव इस सम्बन्ध में शर्त नं० ४ के अनुसार क़ानूनी नियम होना आवश्यक है।

परामर्श-मंडल—"बैंक और विदेशी व्यापार" शीर्षक अध्याय में बताया जा चुका है कि इन बैंकों का व्यवहार जातीय पक्षपात से पूर्ण और भारतीय-राष्ट्रीयता के विरुद्ध होता आ रहा है। ये सदैव विदेशी संस्थाओं को लाभ पहुँचाने के लिये भारतीय संस्थाओं की उपेक्षा करते रहते हैं; इसलिये भविष्य में इस कुटिल नीति पर अंकुश रखने के वास्ते आवश्यक है कि पाँचवीं शर्त के अनुसार परामर्श-मंडल की योजना का नियम हो।

---

in their organization. We recommend for the consideration of exchange banks that they should have scheme of probationary assistants on the model of the Imperial Bank of India Scheme (Majority Report, p. 474).

लेखा-जोखा—ये बैंक विदेशों में रजिस्टर्ड होते हैं। इनके डाइरेक्टर विदेशी होते हैं। इनका निरीक्षण बाहर होता है और ये भारतीय-व्यापार का लेखा-जोखा भी उपयुक्त मात्रा में प्रकाशित नहीं करते; इसलिये इनके सम्बन्ध में भारत-वासियों को कोई जानकारी नहीं होने पाती, अँधेरे में रहते हैं। अस्तु।

भारतवासियों को इनकी स्थिति से परिचित रखने के वास्ते छठवीं शर्त्त भी होनी चाहिये।

दिवाला निकलने पर—ऊपर लिखे हुए कारणों से भारतीय पावनेदारों के हितों की रक्षार्थ इस शर्त का होना बहुत ज़रूरी है। इसके लिये से० बैं० इ० कमेटी ने भी सिफ़ारिश की है। *

टैक्स-सम्बन्धी आठवीं शर्त इस प्रयोजन से होना चाहिये कि इन विदेशी बैंकों के साथ भारतीय-बैंकों की अपेक्षा कोई विशेष रिआयत न हो ताकि ये प्रतियोगिता करके भारतीय बैंकों को हानि पहुँचाने में समर्थ न हो सकें।

विशुद्ध भाव—जिन प्रतिबन्धों को लगाये जाने के लिये ऊपर जो प्रस्ताव किये हैं, वे द्वेष-वश नहीं किये हैं और न विदेशी बैंकों की बढ़ती हुई समृद्धि से हमें डाह है। हम हृदय से चाहते हैं कि इनकी उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होती रहे।

---

* Majority Report, Para 743.

हमारी प्राचीन सभ्यता हमें यही सिखाती है कि हम स्वप्न में भी किसी का बुरा न चाहें; लेकिन साथ ही हम यह अवश्य चाहते हैं कि दूसरों के प्रहारों से हम अपनी रक्षा कर सकें। हमारा देश भी दूसरे देशों के समान समृद्धिशाली हो, उद्योग-धन्धों से भरा-पूरा और कला-कौशल का केन्द्र हो, हम अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में स्वयं समर्थ हों और परमुखापेक्षी न रहें। भारतवासियों को भर-पेट रोटी मिले, इनका मान-सम्मान और गौरव संसार की किसी जाति से कम न रहे। अस्तु, ये प्रतिबन्ध केवल आत्म-रक्षा और स्वदेश के लिये चाहे गये हैं। हमारा ऐसा चाहना कोई नई बात नहीं है। हमारी परिस्थिति के समान ही नहीं, वरन् हमसे अधिक समुन्नता-वस्था में होते हुए भी दूसरे देशों ने इनसे भी अधिक कठोर प्रतिबन्ध लगाये हैं। स्वयं इंगलैण्ड ने इस सम्बन्ध में अधिक कठोरता का परिचय दिया है।

"लगभग चौदहवीं शताब्दी में लोम्बार्डी लोगों ने अपने देश लोम्बार्डी (इटली के उत्तरी भाग) को विदेशियों के लगातार आक्रमण से तंग आकर त्याग दिया था और वे मार्सी भूमि पर, जो उस समय लन्दन शहर का बाहरी हिस्सा था, बस गये थे। वहाँ उन्होंने बैंकिंग, बीमा और आयात-निर्यात का व्यवसाय आरम्भ किया था। इंगलैण्ड में बैंकिंग धन्धे के जन्मदाता ये लोम्बार्ड लोग ही थे। उन्होंने वहाँ थोड़ी ही अवधि में इंगलैण्डवालों से कमाई करके अपरिमित उन्नति

कर ली थी। यह अंग्रेज़ों से सहा नहीं गया। फल-स्वरूप वहाँ के राजाओं ने उनके विरुद्ध प्रतिबन्धक क़ानून पास किये। इतना ही नहीं, रानी एलिज़ाबेथ ने तो उनको निकल जाने का हुक्म दे दिया था।"* इस ऐतिहासिक घटना को हम अंग्रेज़ी बैंकों के सामने, जो उन्हीं के देश की है, उपस्थित करते हैं और विश्वास करते हैं कि वे हमारे प्रस्तावित बहुत हलके प्रतिबन्धों से रुष्ट न होंगे। विशेष कर इस अवस्था में कि जब इस प्रकार के प्रतिबन्ध आधुनिक जगत् के अनेक देशों में मौजूद हैं।

भारतीय-बैङ्क-सम्बन्धी क़ानून

दूर करने योग्य त्रुटियाँ—बैंकों का उपयुक्त संगठन, प्रबन्ध और निरीक्षण होने के वास्ते क़ानूनी नियम तजवीज़ करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि वे कौन सी त्रुटियाँ हैं, जिनको क़ानून-द्वारा दूर करना है। सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वाइरी कमेटी ने इस सम्बन्ध में गहरा अनुसन्धान करके निम्नलिखित त्रुटियाँ प्रमुख बताई हैं †:—

(१) प्रबन्ध में बेईमानी।

(२) डाइरेक्टरों की अयोग्यता, जो व्यावहारिक बैंकिङ्ग या व्यावसायिक चातुर्य से बिलकुल अनभिज्ञ होने के कारण चालाक

---

* Bombay chronicle, 2nd March, 1931.

† Its Report Para, 674.

प्रबन्धक, डाइरेक्टरों और मैनेजरों की कारस्तानियों को पकड़ने में असमर्थ पाये गये।

(३) खोटे और जोखमी धन्धों में रुपया लगाना।

(४) डाइरेक्टरों और उनसे सम्बन्धित संस्थाओं को बे रोक-टोक अंधाधुन्ध रुपया उधार देना।

(५) असावधानी से रुपया उधार देना।

(६) अल्पकालीन जमाओं को लम्बी अवधि के लिये उधार देना।

(७) प्राप्त-पूँजी (paid-up capital) का अपर्याप्त होना और उसका बहुत बड़ा भाग अचल-सम्पत्ति में लगा देना।

(८) रक्षित-फ़ंड (reserves) का कम होना।

(९) नक़दी के साधन कम होना। अस्तु,

इन त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए ही आगे उपाय बताये गये हैं।

उपयुक्त-संगठन

लाइसेन्स की आवश्यकता—भारत में शिक्षा का गहरा अभाव है। केवल १५ प्रतिशत आबाल-वृद्ध ऐसे हैं, जो लिख-पढ़ सकते हैं। इन पढ़े-लिखे लोगों में बहुत कम संख्या ऐसे लोगों की है, जो वर्तमान आधुनिक बैंकिङ्ग-प्रणाली से परिचित हैं। दुनिया में धोखा देनेवाले लोगों को कमी नहीं है। आजकल धोखेबाज़ी का कला की तरह प्रयोग होता है। मौजूदा क़ानून के

अनुसार कोई भी सात आदमी मिलकर एक बैंक खोल सकते हैं और रजिस्ट्रार उसकी रजिस्ट्री कर सकता है। इस सरलता का बेईमान लोग अनुचित लाभ उठाने में सफल हो जाते हैं। कितनी ही घटनायें ऐसी हुई हैं कि कुछ लोग बैंकिंग-संस्था खोलकर बैठ गये और थोड़े ही दिनों में जनता का रुपया खींच-कर दिवाला निकाल दिया; इसलिये इस बात की परम आवश्यकता है कि किसी भी प्रार्थी बैंकिंग-संस्था की रजिस्ट्री होने से पहले उसकी आर्थिक-अवस्था, उसके डाइरेक्टरों की योग्यता, क्षमता, मोताबेरी और निरीक्षकों की प्रतिष्ठा, आदि बातों की जाँच की जावे। ऐसी जाँच का परिणाम संतोष-जनक निकलने ही पर रजिस्ट्री कराने की आज्ञा दी जावे। श्री० ठाकुर* और टैननं† का भी यही मत है। सेण्ट्रल-बैंकिंग-इंक्वाइरी कमेटी$ (बहुमत) ने भी लाइसेन्स-प्रथा चालू करने की सिफ़ारिश की है; लेकिन श्री० मनुसूबेदार§ ने अपनी अल्प मत रिपोर्ट में भारतीय बैंकों के लिये लाइसेन्स-प्रथा के विरुद्ध सम्मति दी है। भारत जैसे देश में उपरोक्त कारणों को देखते हुए लाइसेन्स-प्रथा किसी अंश में भी हानिप्रद नहीं है। इससे भले और सत्पात्र लोगों के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी और साथ ही धोखेबाज़ और

---

* Organization of Indian Banking, P. 214.

† Regulation of Banks in India, P. 8, 9.

$ Majority Report, Para. 684.

§ Minority Report, Para. 315.

चालाक लोगों से भोलीभाली प्रजा की बहुत-कुछ अंश में रक्षा होगी।

जिस प्रकार लाइसेन्स की आवश्यकता नये खुलनेवाले बैंक के लिये है, उसी प्रकार हेड आफ़िस के स्थान के अतिरिक्त दूसरे स्थानों में ब्राञ्च खोलने के लिये भी लाइसेन्स लेना अनिवार्य होना चाहिये।

'बैंक' शब्द का प्रयोग—यह कई बार आ चुका है कि भारत में शिक्षा का अभाव है। यहाँ के अधिकांश लोग बैंक क़ानून से अपरिचित हैं और बैलेन्स शीट इत्यादि समझने का ज्ञान नहीं रखते। जिस दूकान या कम्पनी के नाम के साथ 'बैंक', 'बैंकिङ्ग' या 'बैंकर' शब्द देख लेते हैं, उसी पर विश्वास करने लग जाते हैं और अपना रुपया जमा कर देते हैं, लेकिन बाद में उसका दिवाला निकलने पर पछताते हैं; इसलिये क़ानून के अनुसार लाइसेन्स-प्राप्त करके रजिस्ट्री कराये बिना किसी दूकान या कम्पनी को अपने नाम के साथ बैंक, बैंकर या तद्रूप शब्द का प्रयोग करने की मनाही होनी चाहिये। जापान में ठीक ऐसा ही नियम है। "वहाँ कोई 'बैंक' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता, सिवाय इसके कि वह ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी हो और उसकी बैंक-क़ानून के अनुसार रजिस्ट्री हो रही हो*"।

सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वाइरी कमेटी ने अ-रजिस्टर्ड कम्पनियों

---

* Regulation of banks in India, P. 5,6.

और व्यक्तिगत फ़र्मों को 'बैंक' शब्द का प्रयोग करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ देने की सिफ़ारिश की है। श्री० टैनन ने व्यक्तिगत रूप से देशी बैंकरों के व्यापार के लिये राज-नियम होने के पक्ष में होते हुए भी फ़िलहाल उन्हें उक्त नियम से बाहर रखने ही की सलाह दी है।* हमें खेद है कि हम बहुत-कुछ सोच-विचार और प्रयत्न करने पर भी इस विषय में उक्त प्रामाणिक महानुभावों की सम्मति से सहमत होने में असमर्थ रहे। नवीन बैङ्क-क़ानून बन जाने पर लोगों का यह विश्वास और भी बढ़ जायगा कि बैङ्कों की राज पूरी देख-रेख करता है और फलस्वरूप वे प्रत्येक 'बैंक' शब्द का प्रयोग करनेवाली संस्था या दूकान को राज्य की देख-रेख में समझकर धोखा खावेंगे और इस प्रकार लाइसेन्स-प्रथा का उद्देश्य पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकेगा; बल्कि निरर्थक सिद्ध होगी। 'बैंक' या 'बैंकर' शब्द की मनाही होने से देशी बैंकर्स को कोई हानि नहीं हो सकती; क्योंकि ये भारत के प्राचीन शब्द नहीं हैं। भारत में इनका प्रयोग। अंगरेज़ों द्वारा बैंकिङ्ग व्यवसाय प्रारम्भ होने के साथ साथ हुआ है। देशी बैंकर्स की प्रतिष्ठा तो 'सेठ', 'साहूकार', 'बोहरा' इत्यादि शब्दों के विशेषण से ज्ञात हो जाती है, जिनका वे प्रयोग करते हैं और करते रहेंगे। इसके अतिरिक्त 'अन्य प्रयत्न' शीर्षक अध्याय में 'सर्व भारतीय बैंकर्स एसोसियेशन' के संगठन की

---

* Regulation of Banks in India, P. 5, 6.

योजना बतलाई है। उसके मेम्बर, भारत के सभी प्रान्तों के प्रतिष्ठित देशी बैंकर भी हो सकेंगे और वे 'बैंकर्स-एसोसियेशन के मेम्बर' शब्द का प्रयोग करने में स्वतन्त्र होंगे। इससे उनकी प्रतिष्ठा सुरक्षित रहेगी।

इस नियम से केवल बाज़ार में अनजान और साधारण व्यक्ति नवीन आडम्बर के साथ दूकान खोलकर बैंकिङ्ग व्यवसाय नहीं कर सकेंगे और ऐसा होना सर्वसाधारण के हित के लिये अच्छा भी है; अतएव यह नियम रजिस्टर्ड और वैयक्तिक फ़र्मों पर समान रूप से लागू होना चाहिये।

दूसरे धन्धे की रोक—दूसरी औद्योगिक-कम्पनियों की अपेक्षा बैंकों में कम सूद होते हुए भी लोग 'जमा' रखते हैं; क्योंकि इनमें रखा हुआ रुपया अधिक सुरक्षित समझा जाता है। यदि बैंक भी बैंकिंग धन्धे के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के धन्धे करेंगे या करते रहेंगे तो औद्योगिक तथा व्यावसायिक कम्पनियों से इनका विशेषत्व जाता रहेगा। तीसरे अध्याय में ऐसे कई बैंकों के उदाहरण मौजूद हैं, जिनके दिवाले निकलने का कारण बैंकिङ्ग धन्धे के साथ साथ व्यापार करना था। ताज़ा उदाहरण 'एलाइन्स बैंक आव् शिमला' का है, जो एक व्यापारिक फ़र्म से सम्बन्ध रखने के कारण डूबा है*; इसलिये बैंकों को

* सेण्ट्रल बैङ्किंग इंक्वाइरी कमेटी की बहुमत रिपोर्ट, पैरा ६९२।

बैङ्किंग-धन्धे के सिवाय दूसरा धन्धा करने की क़ानून-द्वारा सर्वथा मनाही होनी चाहिये।

मैनेजिंग-एजेन्सी-प्रथा संसार के किसी देश में नहीं है। इसका सूत्रपात भारत ही में हुआ है। पहले पहल इस देश में जो उद्योग-धन्धे खुले, वे ब्रिटिश पूँजी और उन कम्पनियों के प्रयत्न से, जिनकी रजिस्ट्री इङ्गलैण्ड में हुई, ऐसी अवस्था में सात समुद्र पार इङ्गलैण्ड के रहनेवाले हिस्सेदार और उनके डाइरेक्टरों के लिये भारत-स्थित कारख़ानों का संचालन करना वहाँ की उस समय की प्रचलित प्रणाली से कठिन था; इसलिये उन्होंने अपने सुभीते के लिये भारतीय कारख़ानों का संचालन करने के हेतु यहाँ की कुछ प्रतिष्ठित ब्रिटिश फ़र्मों को अपना मैनेजिंग एजेण्ट बनाना शुरू कर दिया। इन कार्य-संचालक एजेण्टों ही को 'मैनेजिंग एजेण्ट' कहते हैं।

भारतीय कम्पनियों के सामने उक्त समस्या उपस्थित नहीं थी। इनमें यहीं की पूँजी और यहीं के डाइरेक्टर थे। इनका संचालन बोर्ड ऑव् डाइरेक्टर्स, एक होशियार मैनेजर के द्वारा भली प्रकार से कर सकते थे, लेकिन यह देखकर कि मैनेजिंग एजेन्सी कामधेनु का काम करती है, हमारे व्यवसायी इस प्रणाली को यहाँ भी चलाने का प्रयत्न करते गये और अब इसका इतना विस्तार हो गया कि कोई कम्पनी ऐसी नहीं होती, जिसमें मैनेजिंग एजेण्ट न हो। यहाँ कम्पनियाँ मैनेजिंग एजेण्ट तलाश नहीं करतीं, बल्कि मैनेजिंग एजेण्ट बनने की इच्छा रखने

वाले ही कम्पनी को जन्म देते हैं। मैनेजिंग एजेण्टों को कम्पनी का कर्ता-धर्ता समझना चाहिये। बोर्ड आव् डाइरेक्टर्स की मीटिंग केवल उसकी बातों पर मोहर लगाने के लिये होती है।

सम्भव है यह प्रथा अन्य कामों में चाहे उपयोगी हो, किन्तु बैंकिङ्ग धन्धे के लिये यह हानिप्रद सिद्ध हुई है। आज-कल उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में भी इसकी खरी और आक्षेप-पूर्ण आलोचना होने लगी है। बैंकिङ्ग व्यवसाय-क्षेत्र में तो इस प्रथा के विरुद्ध एक स्वर से आवाज़ आती है। इसमें सन्देह नहीं कि मैनेजिङ्ग एजेण्ट एक संस्था के आरम्भ करने में अग्र-गण्य होते हैं; परन्तु ये इतने स्वार्थी होते हैं कि संस्था का धन्धा चल जाने पर, अपने परिश्रम का उचित पारिश्रमिक लेकर भी पद नहीं छोड़ते; बल्कि स्थायी रूप से अपना अधिकार और प्रभुत्व बनाये रखते हैं। यह इनके लिये बड़ा आसान होता है; क्योंकि कम्पनी की नियमावली और सिद्धान्त-पत्र इत्यादि ये अपनी मर्ज़ी के वकीलों से इच्छानुसार बनवा लेते हैं, जो हिस्से-दारों के सामने स्वीकृति के लिये उपस्थित नहीं किये जाते। बाद में उनमें परिवर्तन होना असम्भव हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि ये लोग हमेशा के लिये पुश्त दर पुश्त उस संस्था के सर्वेसर्वा बन जाते हैं और उसके धन का मन-माना उपयोग करते हैं। एक बैंक का मैनेजिङ्ग एजेण्ट दूसरी और भी कई औद्योगिक और व्यापारिक संस्थाओं का मैनेजिङ्ग एजेण्ट होता है और वह इस नाते से बैंक की पूँजी का बहुत

बड़ा भाग उन उद्योग-धन्धों को खुले दिल से उधार दे देता है। जब कभी किसी बैङ्क के मैनेजिङ्ग एजेण्ट से सम्बन्धित दूसरी कम्पनी की साख़ में कमज़ोरी आती है, तब उस बैङ्क पर जमा करनेवाले अपना रुपया वापस लेने के लिये टूट पड़ते हैं। इसके फल-स्वरूप कई बैङ्क डूब चुके हैं; इसलिये क़ानून-द्वारा यह प्रथा रोकी जानी चाहिये।

आपत्ति-जनक नियमों की रोक—यह ऊपर बताया जा चुका है कि कम्पनी के संस्थापक कम्पनी के नियम, सिद्धान्त पत्र अपनी इच्छानुसार तैयार करा लेते हैं। इन नियमों में वे ऐसे अधिकार ले लेते हैं, जो हिस्सेदारों के हितों के विपरीत होते हैं। इस अमल को रोकने की अत्यन्त आवश्यकता है। नमूने के तौर पर कुछ नियम परिणाम-सहित दिये जाते हैं:—

(१) एक हिस्सेदार को, जिस पर कम्पनी का किसी रूप में और किसी अवस्था में कुछ भी ऋण हो, मत देने और सदस्यता के किसी भी अधिकार का उपयोग करने से रोकना, विशेष आपत्ति-जनक है। यह रुकावट आवश्यकता से आगे बढ़ी हुई है। केवल चढ़ी हुई क़िस्तों के वाजिब होने पर न देने की अवस्था तक इसे सीमाबद्ध कर देना उचित है। बैंक के दिये हुए क़र्ज़ों के विरुद्ध अपने हिस्सों पर यह अधिकार (Lien) बरतना बाज़ार में अनजान हिस्से ख़रीदनेवालों के लिये बड़ा हानिकर होता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि भारत और इंगलैण्ड दोनों जगह "स्टाक एक्सचेञ्ज का व्यापार

करनेवाले साहूकारों ने ऐसे बैंकों के हिस्सों की लिया-बेची से हाथ खींच लिया है।

(२) बिना कारण बताये हुए हिस्से मुन्तक़िल करने से इंकार कर देने का सर्वथा अधिकार डाइरेक्टरों को रहता है। क़ानूनी फ़ैसलों ने भी इसको उचित मान लिया है, इसलिये डाइरेक्टरों की इस मनमानी के विरुद्ध अदालत में तब तक दावा नहीं किया जा सकता, जब तक मनोविकार और कपट साबित न किया जा सके और ऐसा तहरीर में कारण बताये बिना साबित होना कठिन है। इम्पीरियल बैंक आव् इण्डिया का बोर्ड पूरा मूल्य चुकाये हुए हिस्सों को मुन्तक़िल करने से इंकार नहीं कर सकता, फिर कोई कारण समझ में नहीं आता कि कम्पनी-क़ानून के अनुसार स्थापित बैंक ऐसा मनमाना अधिकार क्यों बरत सकते हैं। यदि कभी किसी मामले में उचित कारणों से इंकार करने की आवश्यकता हो तो डाइरेक्टर्स इंकार कर सकते हैं, किन्तु ऐसे इंकार के कारण उन्हें तहरीर में लाने चाहिये, ताकि ख़रीददार को अपने अधिकारों पर झगड़ने का मौक़ा मिल सके। ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं कि जब कभी हिस्सेदारों ने न्यायोचित अधिकारों के अनुसार बहुत वाजिब तरीक़े से जनरल मीटिंग में डाइरेक्टरों के कार्य की करारी आलोचना की तो, उनको बाद में न केवल उस कम्पनी के हिस्से देना रोक दिया, बल्कि दूसरी कम्पनियों के हिस्से भी, जिनमें डाइरेक्टर वही लोग थे, जो आलोचित कम्पनी के डाइरेक्टर

थे, नहीं दिये गये। यह कितना अनुचित है। इंगलैण्ड में लोयड्स मिडलैण्ड, बार्कले आदि बैंकों की नियमावली में केवल आंशिक चुके हुए हिस्सों के लिये ऐसा नियम है। पूरे चुके हुए हिस्सों के लिये ऐसी रुकावट नहीं है। ऐसे ही नियम यहाँ के बैंकों की नियमावली में होने चाहिये।

(३) नियमावली में बोर्ड आव् डाइरेक्टर्स के लिये बे-माँगी हिस्सा-पूँजी (Uncalled Capital) रहन रखने का अधिकार भी ले लिया जाता है, जो औचित्य की सीमा से परे है। अमानतें जमा करनेवाले व्यक्तियों को यह पूँजी उनकी अमानतें सुरक्षित रहने का विश्वास दिलाती है। इसको रहन करने का अर्थ दुनिया को धोखा देना है; इसलिये क़ानून-द्वारा बिना माँगे हुए मूलधन को रहन रखने की मनाही अवश्य होनी चाहिये।

मूलधन—इसकी संख्या लोगों की अमानतें खींचने में बड़ी सहायक होती है; इसलिये प्रायः बैंक मूलधन की एक बड़ी संख्या नियत कर लेते हैं और बेचने के लिये उसका कम भाग रखते हैं। इसमें भी प्राप्त मूलधन की संख्या बहुत कम होती है, यहाँ तक कि कई बैंकों में प्राप्त मूलधन नहीं होता और वे कार्य प्रारम्भ करने लग जाते हैं। सन् १९३० में फ़ेल होनेवाले बैंकों की संख्या १२ थी। उनमें ६ का ब्योरा इस प्रकार है*:—

* The Statistical tables relating to banks in India for 1930 P.35.

निराधार बैंक

संख्या	नाम	मूलधन (रुपये में)			तारीख़ रजिस्ट्री	तारीख़ दिवाला
		निर्धारित	बिका हुआ	प्राप्त		
१	पब्लिक आॅन्स बैंकिंग कं० (पंजाब)	५,००,०००)	+	+	७ ११/२४	३० ७/३०
२	कलकत्ता बैंक (बंगाल)	५०,०००)	+	+	८ ३/२७	११ १/३०
३	बिहार नेशनल बैंक (बिहार)	२,००,०००)	६७२०	१२३७	८ १२/२५	१३ ८/३०
४	रमा नाटकारा बैंक (मद्रास)	५०,०००)	४७७५	२५००	८ ३/२३	१० ४/३०
५	पुर्णिया कमर्शियल बैंक (बिहार)	२०,०००)	१०५०	३४०	५ ४/२२	१७ ४/३०
६	देहली सिण्डीकेट	२०,०००)	१२५०	११५०	८ १/२४	१० ४/३०

पृष्ठ नं० १६५ के कोष्ठक से प्रगट है कि पहले दो बैंकों के तो हिस्से बिलकुल ही नहीं बिके, शेष चार के हिस्से बराय नाम बिके हैं। उनमें भी ३ बैंक तो बिके हुए हिस्सों की पूरी पूँजी भी वसूल नहीं कर सके और काल-कवलित हो गये। अब अनुमान लगाया जा सकता है कि इनमें जमाशुदा अमानतों का, दिवाला निकलने पर क्या परिणाम निकला होगा। ऐसे छोटे निराधार बैंकों के खुलने से, जो अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकते, इस व्यवसाय को भारी धक्का पहुँचता है; अतः बाल्यावस्था में काल-कवलित होनेवाले बैंकों की उत्पत्ति रोकने के लिये नवीन क़ानून में इस बात की परम आवश्यकता है कि निर्धारित, बिके हुए और प्राप्त मूलधन की अलग अलग संख्या निश्चित कर दी जाय और तदनुसार धन संग्रह हो जाने पर धन्धा करने का प्रमाण-पत्र दिया जावे। इस सम्बन्ध में विदेशों में इस प्रकार नियम हैं :—

अमरीका में १९२३ में संशोधित नेशनल-बैंक क़ानून के अनुसार बैंकों का मूलधन इस प्रकार होना चाहिये :—

शहर की जनसंख्या निम्नलिखित हो या कम	कम से कम मूलधन
३,०००	२५,००० डालर
६,०००	५०,००० ,,
५०,०००	१,००,००० ,,
५०,००० से अधिक	२,००,००० ,,

इसके साथ वहाँ पर बैंक तब तक धन्धा प्रारम्भ नहीं कर सकता, जब तक आधी पूँजी वसूल न हो जावे।*

जापान में १० लाख येन से कम मूलधन का कोई बैंक स्थापित नहीं किया जा सकता। केवल छोटे क़सबों में, जिनकी जनसंख्या १० हज़ार से कम है, ५ लाख येन के मूलधन से बैंक खोला जा सकता है। बड़े बड़े शहरों में खुलनेवाले बैंकों का मूलधन अर्थ-सचिव के आदेशानुसार रखना पड़ता है, जो किसी भी हालत में २० लाख येन से कम नहीं होता।

कनाडा में मूलधन की कम से कम संख्या ५ लाख डालर निश्चित है। इसके आधे का, धन्धा प्रारम्भ करने से पहले वसूल होना अनिवार्य है।

भारत के लिये भी अमरीका और जापान के समान, जन-संख्या के अनुपात से मूलधन रखने की लोगों ने सलाह दी है। श्री टेनन ने इस प्रकार श्रेणीकरण किया है† :—

बैंकों की श्रेणियाँ	कम से कम बिका हुआ मूलधन रुपयों में
१—स्थानीय-बैंक :—	
उन शहरों में, जिनकी आबादी	
५,००० से अधिक न हो	३०,०००)
१०,००० ,, ,, ,,	६०,०००)

* Regulation of Banks in India by Tannan. P. 7, 8.

† Regulation of Banks in India P. 6.

२०,००० ,, ,, ,,	१,००,०००)
५०,००० ,, ,, ,,	२,५०,०००)
१ लाख से ऊपर डाइरेक्टर जनरल के आदेशानुसार; किन्तु कम से कम	१०,००,०००)
२—प्रान्तीय-बैंक	५,००,०००)
३—सर्व-भारतीय बैंक	१०,००,०००)
४—सार्वभौमिक बैंक	३०,००,०००)

श्री० बी० टी० ठाकुर ने भी लगभग इसी प्रकार श्रेणीकरण किया है, केवल संख्या में थोड़ा सा अन्तर है। * इसमें सन्देह नहीं कि बैंकों की स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिये और हैसियत से अधिक पाँव पसारने से रोकने के लिये उक्त महानुभावों की सम्मतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं; परन्तु भारत में अभी तक ज्वाइंट-स्टॉक-बैंकिंग-प्रणाली शिशु-अवस्था में है; इसलिये उक्त प्रकार का श्रेणीकरण अधिक प्रतिबन्धों का द्योतक है और इससे बैंकों की वृद्धि में भारी रुकावट होने की सम्भावना है। मान लीजिये बीकानेर-निवासियों ने एक बैंक बीकानेर में खोला। इसका बिका हुआ मूलधन १० लाख से कम है। इस बैंक को बीकानेर की सरकार ने अपने राज्य-निवासी व्यापारियों को राज्य के भीतर और बाहर आर्थिक सहायता देने के लिये

* Organization of Indian Banking P. 215

विशेष सहायता और सुविधा दे रक्खो है, अधिक संख्यक बोका-नेरी कलकत्ते में व्यापार करते हैं; इसलिये वे अपने बैंक की शाखा कलकत्ते में खुलवाना चाहते हैं; क्योंकि उस बैंक पर उनका भी गहरा विश्वास है और बैंक भी उनके राज्य का होने से उनकी आर्थिक स्थिति से भली प्रकार अवगत है; अतएव कलकत्ता-प्रवासी बीकानेरियों को अपने यहाँ के बैंक से सहायता प्राप्त करने में बड़ी आसानी हो सकती है, लेकिन उक्त प्रस्तावित श्रेणीकरण से ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी हालत में बीकानेरियों को यह एक प्रकार की बाधा अनुभव होगी। इस प्रकार की बाधायें इस समय, जब कि भारतीय बैंकिंग को उत्तेजना देना है, अधिकांश में हितकर प्रमाणित नहीं हो सकती। अस्तु, कनाडे के समान सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वाइरी-कमेटी की सिफ़ारिश उपयुक्त है। उसके अनुसार एक बैंक के लिये धन्धा प्रारम्भ करने से पहले ५०,०००) का प्राप्त मूलधन होना चाहिये। निर्धारित मूलधन बिके हुए के दूने से अधिक और प्राप्त मूलधन बिके हुए के आधे से कम नहीं होना चाहिये।*
रही हैसियत से अधिक क़दम बढ़ाने से रोकने के लिये नियमों की आवश्यकता, उसकी भी पूर्ति लाइसेन्स-प्रणाली से हो जाती है; क्योंकि ब्राञ्च के लिये भी लाइसेन्स लेना आवश्यक रक्खा गया है। चूँकि लाइसेन्स देनेवाला अधिकारी प्रार्थी बैङ्क

---

* Majority Report, Para 695.

की आर्थिक अवस्था, ब्रांच के स्थान की उपयुक्तता और आवश्यकता आदि पर विचार करके ब्रांच खोलने के लिये लाइसेन्स देगा, इसलिये कोई निर्बल बैंक अधिक ब्रांचें नहीं खोल सकेगा।

भारतीयकरण—पिछले पृष्ठों में भारत के प्रति विदेशियों की मनोवृत्ति क्या है, बताई जा चुकी है और विदेशी पूँजी से विदेशों में रजिस्टर्ड होनेवाले बैङ्कों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने के प्रस्ताव भी लिख चुके हैं। यह सब व्यर्थ होगा, यदि भारत में रजिस्टर्ड होनेवाले बैङ्कों में विदेशियों के प्रवेश को न रोका गया, अतएव भारत के हितों की रक्षार्थ, भारतीय बैङ्किंग को समुन्नत करने के लिये यह परम आवश्यक है कि भारतवर्ष में रजिस्टर्ड होनेवाले बैङ्कों पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध लगाये जावें :—

(१) कुल पूँजी के $\frac{3}{4}$ हिस्से भारतीयों को बेचे जावें।

(२) डाइरेक्टरों की संख्या में $\frac{3}{4}$ भारतीय हों।

(३) समस्त कर्मचारी भारतीय हों।

उत्तम प्रबन्ध

व्यवस्थापक-मंडल—बैङ्क का कार्य संचालन करने के हेतु एक व्यवस्थापक-मंडल (Board of Directors) बनाया जाता है। इसमें प्रतिष्ठित और अनुभवी आदमी होते हैं, जिनको पहले बैङ्क के संस्थापक चुन लेते हैं, बाद में हिस्सेदारों को इसमें परिवर्तन करने का अधिकार होता है, लेकिन प्रायः वही लोग

चुन लिये जाते हैं। इस व्यवस्थापक-मंडल की नामावली में प्रतिष्ठित और अनुभवी सज्जनों के नाम देखकर सर्वसाधारण उस संस्था के सुप्रबन्ध साख़ और सफलता का अनुमान लगाते हैं; इसलिये व्यवस्थापकों का कर्तव्य है कि उस संस्था (बैङ्क) के लेन-देन पर पूर्ण निगरानी रक्खें, उधार दी हुई रक़मों और ज़मानत में आनेवाली वस्तुओं के सम्बन्ध में पूरी सावधानी और उनके मूल्य में कमीबेशी होने का पूरा ध्यान रक्खें, बैङ्क की उत्तरोत्तर उन्नति हो, ऐसे उपाय सोचते रहें, उनको कार्य रूप में परिणत करते रहें और आर्थिक अवस्था की ओर सदैव सचेत रहें। यह सब तभी हो सकता है, जब मंडल की होने-वाली सब बैठकों में सब व्यवस्थापक उपस्थित हों; किन्तु दुर्भाग्य-वश ऐसा नहीं होता। एक एक सज्जन पचास-पचास, साठ-साठ कम्पनियों के डाइरेक्टर होते हैं, इसके अतिरिक्त अपने निज के विस्तृत धन्धे भी करते हैं। यह निश्चित है कि एक शरीर से जितना काम हो सकता है, उतना ही वह करेगा, उससे अधिक की आशा करना भूल है। यही कारण है कि हमारे डाइरेक्टरों को अधिक काम होने और समय कम होने के कारण बैङ्कों के काम में यथोचित भाग लेने का अवसर नहीं मिलता। फलस्वरूप बैङ्क उनके अनुभव और शक्ति से कोई लाभ नहीं उठाने पाते। साथ ही जैसा चाहिये, वैसा नियन्त्रण भी नहीं होने पाता। इसका परिणाम यह हो रहा है कि सारा काम मैनेजिंग-एजेण्ट या कर्मचारी गण अपनी इच्छानुसार चलाते हैं।

युनाइटेड किंगडम में भी, जहाँ ज्वाइण्ट-स्टॉक-प्रणाली विस्तृत और उन्नतावस्था में है, अत्यधिक व्यवस्थापकता (Multiple Directorship) को बहुत ही अनुचित समझा जाता है और इसके विरोध में वहाँ गहरा बावेला मचा हुआ है।* भारत में भी क़ानून-द्वारा इस त्रुटि को दूर करने की अत्यन्त आवश्यकता है; अतएव इस सम्बन्ध में यह क़ानूनी नियम होना चाहिये कि एक व्यक्ति अधिक से अधिक केवल दस कम्पनियों ही का व्यवस्थापक बन सकता है और उनमें भी बैङ्किग कम्पनियों में दो से अधिक का नहीं। इससे दो लाभ होंगे—एक तो अब तक व्यवस्थापक के पद पर केवल कुछ सीमित व्यक्तियों का ही अधिकार है, वह बढ़ जायगा और आधुनिक शिक्षित नव-युवकों को योग्य व्यवस्थापक बनने का अवसर प्राप्त होगा। दूसरे मौजूदा प्रतियोगिता के ज़माने में, एक कम्पनी के आन्तरिक भेद दूसरी कम्पनी को, जिसके साथ प्रतियोगिता है, दोनों में एक ही व्यवस्थापक होने से मालूम हो जाते हैं, न होंगे और कई कम्पनियाँ हानि उठाने से बचेंगी।

जमा करनेवालों का प्रतिनिधित्व—यह मानी हुई बात है कि प्रत्येक बैङ्किग संस्था में मूलधन से कई गुनी अमानतें जमा रहती हैं, जिनकी बदौलत बैङ्क को भारी लाभ होता है और हिस्सेदारों को अधिक से अधिक मुनाफ़ा मिलता है। हिस्सेदारों का बैङ्कों के प्रबन्ध में पूरा अधिकार है। इनके चुने हुए डाइरेक्टर

* Bombay Chronicle, 14th March, 1931.

लोग बैङ्क का सारा प्रबन्ध करते और अमानतदारों की अमानतों का अपनी इच्छानुसार उपभोग करते हैं। इनकी भूल, लापरवाही और बेईमानी का शिकार हिस्सेदारों के साथ साथ अमानतदारों को भी बनना पड़ता है और अमानतदार, अपना कोई प्रतिनिधि बोर्ड में न होने के कारण, चूँ तक नहीं कर सकते। सारांश यह है कि अमानतदारों को अपनी पूँजी जमा करने के एवज़ में केवल ब्याज मिलता है और बैङ्क के प्रबन्ध में उनका कोई हस्तक्षेप नहीं होता। यह अन्याय है। इसको दूर करने के लिये इस बात की आवश्यकता है कि व्यवस्थापक-मण्डल में अमानतदारों के भी कुछ चुने हुए प्रतिनिधि हों, जिनकी संख्या समस्त बोर्ड के मेम्बरों में $\frac{1}{3}$ और कम से कम २ नियत होनी चाहिये। इन डाइरेक्टरों की भी वही योग्यता हो, जो हिस्सेदारों के डाइरेक्टरों की होती है, केवल हिस्सों की रक़म के स्थान पर रक़म जमा की संख्या नियत कर दी जावे और इनका चुनाव जमा करनेवाले व्यक्तियों द्वारा हो; लेकिन ऐसी जमाओं पर उधार लेनेवालों में से नहीं होना चाहिये, यह अधिक कठिन नहीं है। करेण्ट एकाउण्ट के खातेदार लगभग स्थायी रूप से रहते हैं। मियादी अमानतों में अलबत्ता एक वर्ष या किसी निश्चित समय के लिये रक़में जमा होती हैं; किन्तु फिर भी उनका बहुत बड़ा भाग लगातार पुनः पुनः जमा (renew) होता जाता है। यह नवीन बात भी नहीं है। पीपल्स बैङ्क आव् नोदर्न इण्डिया, के फ़ेल होने पर इसके पुनः चालू करने की स्कीम, जो ता० २२ दिसम्बर, सन् १९३१ ई० को हाईकोर्ट से

स्वीकृत हुई है, में अमानत जमा करनेवालों को बोर्ड में ३ डाइरेक्टर चुनने का अधिकार दिया गया है। इसके अनुसार ५०) से अधिक जमा करनेवाले को डाइरेक्टरों के चुनाव में मत देने का अधिकार है और १५ हज़ार या इससे ऊपर रक़म का अमानतदार डाइरेक्टर बनने का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त बीमा कम्पनियों में भी पोलिसी-होल्डरों द्वारा डाइरेक्टरों का चुनाव होता है; अतः यह प्रणाली किसी न किसी रूप में इस समय प्रचलित है और कुछ संशोधन के साथ बड़ी आसानी से चालू की जा सकती है। यह बड़ी लाभदायक साबित होगी और इससे बैंकों पर विपत्ति के अवसर कम उपस्थित होंगे।

प्रोक्सी (प्रतिनिधि)—वर्तमान कम्पनी-क़ानून के अनुसार प्रत्येक हिस्सेदार, कम्पनी के प्रबन्ध में भाग लेने के लिये उसकी जनरल मीटिंग में एक हिस्से पीछे एक मत देने का अधिकारी है। मत स्वयं उपस्थित होकर या प्रतिनिधि-द्वारा दिया जा सकता है। इस प्रतिनिधि-प्रथा का आजकल बड़ा दुरुपयोग होने लगा है। जहाँ जनरल मीटिंग होने का समय आता है कि बैङ्क या कम्पनी के क्लर्क नगर में घूम घूमकर हिस्सेदारों से तत्सम्बन्धी संस्था के कर्मचारियों, डाइरेक्टरों और उनके पृष्ठ-पोषकों के नाम के प्रतिनिधि-पत्र संग्रह करते फिरते हैं। अधिकांश हिस्सेदार कम्पनी की कार्य-प्रणाली से अनभिज्ञ होने के कारण बिना इस सोच-विचार के कि इस मत का क्या उपयोग

होगा, कम्पनी या बैङ्क के कर्मचारियों या डाइरेक्टरों को प्रसन्न करने के लिये उनके नाम का प्रतिनिधि-पत्र लिख देते हैं। इसका परिणाम ठीक वैसा ही हानिकारक होता है, जैसा कि अपने पास का शस्त्र, शत्रु को सौंप देने पर निकलता है। यह बात यहीं पर समाप्त नहीं होती, बल्कि कम्पनी के प्रबन्धक अपने क्लर्कों और असिस्टेण्टों से, जो अधिकांश में बनावटी या स्वार्थी प्रबन्धकों के नियोजित (nominee) हिस्सेदार होते हैं, जनरल मीटिंग को भर देते हैं। ये लोग प्रबन्धकों के अनुकूल प्रस्तावों पर अपने अपने हाथ उठाकर प्रबन्धकों का अभिप्राय पूरा करने में सहायक होते हैं। इतना ही नहीं, ये लोग बीच में बाधा डालकर दूसरे हिस्सेदारों को भी स्वतन्त्र सम्मति देने से रोकते हैं; अतएव प्रतिनिधि-प्रणाली की आड़ में कम्पनी के प्रबन्धकों को अपनी मनमानी कार्यवाही करने का पूरा अवसर मिल जाता है। इससे हिस्सेदारों को कभी कभी गहरी क्षति उठानी पड़ती है। यह बुराई केवल भारत ही में नहीं है, दूसरे देशों में भी बेहद बढ़ी हुई है। वहाँ इसके रोकने के लिये उपाय भी किये गये हैं :—

इंगलैण्ड में इस बुराई को क़ानून-द्वारा रोकने के लिये बड़ा आन्दोलन हो रहा है। वहाँ के एक प्रसिद्ध पत्र 'एकाउंटेण्ट' ने इस प्रथा की बुराई करते हुए लिखा है—"यह प्रणाली स्वयं दोष-पूर्ण है, क्योंकि प्रतिनिधि-पत्र देना, हस्ताक्षर-युक्त कोरा (Blank) चेक देने के समान है। ऐसा केवल दस्तूर पूरा करना समझकर किया जाता है; लेकिन अकस्मात् मीटिंग के सामने

ऐसे प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं कि यदि उस समय प्रतिनिधि भेजनेवाला अनुपस्थित हिस्सेदार वहाँ उपस्थित होता तो वह प्रतिनिधि के मत के विरुद्ध सम्मति देता.........। इस कुप्रथा को रोकने का एक मात्र उपाय है कि प्रबन्धक लोगों का प्रोक्सी प्राप्त करना क़ानून-द्वारा रोका जावे"।*

कनाडा में जब इस प्रतिनिधि-प्रथा का अधिक दुरुपयोग किया जाने लगा तब वहाँ की सरकार ने बैङ्क के वेतनभोगी कर्मचारी हिस्सेदारों के वास्ते यह नियम बना दिया—"बैङ्क का कोई जनरल मैनेजर, मैनेजर, क्लर्क या दूसरे मातहत नौकर स्वयं उपस्थित होकर या प्रतिनिधि-द्वारा मत नहीं दे सकेगा और न मत देने के वास्ते प्रतिनिधि-पत्र प्राप्त कर सकेगा।" †

भारत में सेण्ट्रल-बैङ्किङ्ग-इंक्वाइरी कमेटी के सामने उपस्थित होनेवाले गवाहों ने कनाडे की भाँति नियम बनाने के लिये बड़ा ज़ोर दिया था; किन्तु उक्त कमेटी ने बैङ्क के कर्मचारी हिस्सेदारों का केवल प्रतिनिधि-पत्र प्राप्त करना रोकने के लिये सिफ़ारिश की है, लेकिन उनको हिस्सेदार के नाते से ख़ुद की सम्मति देने से रोकना उचित नहीं समझा‡। हमारी समझ में केवल इतने ही से इस प्रथा की वर्तमान बुराइयाँ दूर नहीं हो सकतीं।

---

* Bombay Chronicle, 14th March, 1931.

† Bombay Chronicle, 18th March, 1931.

‡ Majority Report, Para 714.

यहाँ पर मैनेजिङ्ग-एजेण्ट कम्पनी का सर्वाधिकारी होता है। बैङ्क के कर्मचारियों की नौकरी, वेतन-वृद्धि आदि उसकी इच्छा पर निर्भर होती है। ऐसी अवस्था में ये लोग अपनी स्वतन्त्र सम्मति नहीं दे सकते, क्योंकि उनको हिस्सेदार की अपेक्षा अपने दूसरे स्वार्थों का अधिक ध्यान रखना पड़ता है; अतएव कनाडे की तरह यहाँ भी कर्मचारियों के लिये मत देने की सर्वथा मनाही होना ही उचित है।

वैयक्तिक मताधिकार—जैसा कि ऊपर बताया गया है, एक हिस्से पीछे एक मत का अधिकार होता है। इस नियम से बैङ्क के ऊपर सारा अधिकार चंद हिस्सेदारों का हो जाता है। अधिकांश में बड़ी बड़ी संख्यावाले हिस्सेदारों का बैङ्क के साथ हिस्सेदार होने के अलावा दूसरा स्वार्थ विशेष रूप से होता है; इसलिये वे सब काम अपने स्वार्थों को सामने रखकर करते हैं। चूँकि बहुमत इनका होता है, इसलिये कम संख्या में हिस्से ख़रीदनेवालों की कोई सुनाई नहीं होती और उनके हितों की सदैव उपेक्षा होती रहती है; हालाँकि कम्पनी की पूँजी के बड़े भाग के मालिक छोटे हिस्सेदार ही होते हैं; इसलिये एक हिस्सेदार को केवल एक मत देने का अधिकार होना चाहिये। चाहे हिस्से कितनी ही संख्या में ले रक्खे हों, यह नियम सहकारी बैङ्कों में है। वहाँ इससे अब तक कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। यदि इतना न हो सके तो कम से कम एक व्यक्ति को पाँच से अधिक मत देने की मनाही अवश्य होनी चाहिये।

रोशन रखना, ऋण देना और रुपया लगाना—बैङ्क की साख, पावनेदारों को चुकाने के लिये पर्याप्त पूँजी रखने की अपेक्षा, अधिकतर अपने खातेदारों की माँग को पूरा करने पर निर्भर होती है। जो बैङ्क अपने खातेदारों की माँग को पूरा करने में असमर्थ होता है, उसको देने से अधिक पूँजी होते हुए भी अपने दरवाज़े बन्द करने पड़ते हैं; इसलिये बैंकों को अपने पास उचित परिमाण में नक़द रोशन रखनी चाहिये और पूँजी का बहुत बड़ा भाग इस ढंग से लगाना चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर खातेदारों की माँग को पूरा करने के लिये तुरन्त नक़द में परिवर्तन किया जा सके। इसके लिये भी श्री ठाकुर ने क़ानूनी नियम बनाने के वास्ते प्रस्ताव करते हुए लिखा है*:—

रोशन—१ लाख और इससे कम जनसंख्या के नगरों में काम करनेवाले स्थानीय बैंकों को माँगते ही वापस देने योग्य जमा का १५ प्रतिशत और दूसरी प्रकार की जमाओं का ५ प्रतिशत, रोशन में नक़द रखना चाहिये। दूसरे बैंकों को २० प्रतिशत माँगते ही वापस दी जानेवाली जमा का और ५ प्रतिशत दूसरी जमा का नक़द, रोशन में रखना चाहिये।

इस रोशन को इस प्रकार वितरण करना चाहिये :—

(अ) कम से कम $\frac{1}{3}$ बैङ्क की तिजूरी में।

---

* Organization of Indian Banking, Page 225—227.

(ब) दूसरा $\frac{1}{3}$ सेण्ट्रल बैंक या स्थानीय क्लियरिंग बैंक या अपनी ही तिजूरी में, जिस प्रकार सुविधाजनक हो।

(स) बाक़ी $\frac{1}{3}$ दूसरे बैंकों में।

रुपया लगाना—उपरोक्त रोशन के अलावा ३० प्रतिशत माँगते ही वापस दी जानेवाली जमा का और १० प्रतिशत दूसरी प्रकार की जमा का, तुरन्त भुननेवाली ज़मानतों पर लगाना चाहिये, ताकि बैंङ्क आकस्मिक माँग को पूरा करने में समर्थ रहे।

ऋण देना—निर्जोखिम (safety) तुरन्त भुनने योग्य (Liquid) जोखिम वितरण (Distribution of Risk) इन तोन सिद्धान्तों को सामने रखते हुए लिखा है :—

(१) अचल सम्पत्ति पर, प्राप्त पूँजो और रक्षित-धन या दिये हुए कुल ऋण में जो कम हो, उसके २० प्रतिशत से अधिक नहीं दिया जावे।

(२) एक व्यक्ति या संस्था को प्राप्त पूँजी और रक्षित-धन के $\frac{1}{50}$ से अधिक नहीं दिया जावे।

(३) सब प्रकार की कुल जमाओं के २० प्रतिशत से अधिक एक ही क़िस्म की ज़मानतों पर नहीं दिया जाय।

श्री० टेनन ने भी उपरोक्त बातों का समर्थन करते हुए थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ऐसे ही प्रस्ताव किये हैं।* इस प्रकार के क़ानूनी नियम डेनमार्क, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी है।

*Regulation of Banks in India, P. 12—14

इसमें सन्देह नहीं कि बैङ्कों का बुद्धिमत्ता-पूर्वक संचालन करने के वास्ते उक्त नियम बड़े उपयोगी हैं, इसलिये बैंकों के प्रबन्धकों को रुपया लगाते समय सदैव इन बातों को ध्यान में रखना चाहिये, लेकिन इन्हें क़ानून का रूप देने की बात अधिक उपयुक्त नहीं जँचती है। सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वाइरी कमेटी ने भी इस सम्बन्ध में पर्याप्त रूप से विचार किया है और वह भी इसी परिणाम पर पहुँची है।* क़ानून को बैंक के दैनिक धन्धे के सम्बन्ध में निर्णय करने की कसौटी नहीं बनाया जा सकता। यदि ऐसा करने की कोशिश की गई तो उससे लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना है; क्योंकि क़ानून यह निश्चय नहीं कर सकता कि किस धन्धे में जोखिम है और कौन सा निर्जोखिम है। रोज़ाना आर्थिक अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है, उसके अनुकूल क़ानून को तातारीख़ नहीं रक्खा जा सकता। जिस धन्धे में आज जोखिम ख़याल की जाती है, वही कल निर्जोखिम हो सकता है; इसलिये इन सब बातों को व्यवस्थापक-मंडल पर ही छोड़ा जाना अधिक मुनासिब है। क़ानून में इस बात की रुकावट अवश्य होनी चाहिये कि बैङ्क के डाइरेक्टर, कर्मचारी और ऑडिटर उनके या उनसे सम्बन्धित धन्धों के लिये बैङ्क की पूँजी का मनमाना उपयोग न कर सकें।

डाइरेक्टरों, कर्मचारियों और ऑडिटरों को ऋण—अनेक अच्छे अच्छे बैङ्क, डाइरेक्टरों को अन्धाधुन्ध ऋण

देने के कारण, काल-कवलित हुए हैं। "बर्मा-बैंक के लिक्वीडेटरों की रिपोर्ट से प्रगट होता है कि बैङ्क की पूँजी का उपयोग उसके डाइरेक्टर मेसेर्स क ख के धन्धों के लिये होता था। मिस्टर फ़िण्डले सिरास भूतपूर्व डाइरेक्टर आव् स्टेटिस्टिक्स ने इण्डस्ट्रियल कमीशन को जो लिखित बयान दिया था, उसमें उत्तरी भारत के एक प्रमुख बैंक का उल्लेख करते हुए बतलाया था कि उसकी कुल उधार दी हुई पूँजी का ७० प्रतिशत से भी अधिक अर्थात् १,०७,०७,०००॥=) * में से ७१,७२,६३७॥-) उन कम्पनियों और संस्थाओं को उधार दे रक्खा था, जिनसे चन्द डाइरेक्टरों का वैयक्तिक, साझे का या उनके भी डाइरेक्टर होने का सम्बन्ध था।"* अभी हाल १६३१ में दरवाज़े बंद करनेवाले पीपल्स बैंक आव् नॉर्दर्न इण्डिया की यही दशा थी। ता० ३१$\frac{12}{31}$ को इसको अपने डाइरेक्टरों की तरफ़ ८२६५१७१।) । अर्थात् मूलधन से दूना और जमाशुदा अमानतों का $\frac{1}{3}$ भाग था।

डाक्टर वाल्टर लोफ़ के शब्दों में "डाइरेक्टर न केवल हिस्सेदारों के, बल्कि अमानतदारों के भी ट्रस्टी हैं। ट्रस्टियों का इस तरह से अपने विश्वास-कर्ताओं की सम्पत्ति का दुरुपयोग करना विश्वास-घातकता है।" डाइरेक्टर ही बैङ्क के संचालक होते हैं और जब वे ही उधार लेने लगें अर्थात् 'बाड़ ही खेत को खाने

* The Journal of the Indian Institute of Bankers, January, 1931, Page 89.

लगें' तो उसे कौन रोक सकता है ? कोई भी नहीं। डाइरेक्टरों की इस स्वतन्त्रता से बैंक डूबते हैं और अभागे अमानतदार, जिनमें अधिकांश ग़रीब होते हैं और जो समय कुसमय के वास्ते अपनी गाढ़ी कमाई में से बचा बचाकर जमा करते हैं, दिन धोले लुट जाते हैं। खेद है कि उनकी रक्षा के लिये भारत में कोई क़ानून नहीं है।

इंगलैण्ड में "डाइरेक्टरों की इस प्रकार की चालाकी को मालूम करने के वास्ते कम्पनी-क़ानून सन् १९२९ में इस सम्बन्ध में कुछ नियम बने हुए हैं। उनके अनुसार प्रत्येक ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी के लिये अपनी बैलेन्स-शीट में, तत्सम्बन्धी वर्ष के अन्दर समय समय पर जो ऋण डाइरेक्टरों और अफ़-सरों को दिया गया हो, उसका ब्योरा और बैलेन्स शीट की तारीख़ को रही हुई बक़ाया, प्रगट करना अनिवार्य है।" अर्थात् न केवल बैलेन्स-शीट की तारीख़ को रही हुई बक़ाया ही बतलाई जाती है, बल्कि तत्सम्बन्धी वर्ष के अन्दर दिया हुआ कुल क़र्ज़ा बताना पड़ता है। इससे डाइरेक्टरों को बैलेन्स-शीट तैयार होनेवाली तारीख़ के दिन अपनी ओर की बक़ाया रक़म जमा कराकर और दूसरे रोज़ फिर उधार लेकर वास्तविकता छिपाने का अवसर नहीं मिलता। डाइरेक्टरों के ऋण में वह ऋण भी शामिल किया जाता है, जो उन्होंने उन दूसरी संस्थाओं से लिया हुआ है, जिनकी कि बैलेन्स-शीटवाली कम्पनी ज़ामिन होती है। यह क़ानून, बैङ्किंग कम्पनी हो अथवा दूसरे प्रकार

की, सब पर समान रूप से लागू है।* इन नियमों से हिस्सेदारों को अपने चुने हुए डाइरेक्टरों की करतूतें मालूम हो जाती हैं और दूसरे चुनाव के समय वे उन्हें निकाल बाहर करने में समर्थ हो जाते हैं।

कनाडा में "बैङ्क ऐक्ट में डाइरेक्टरों को ऋण देने की हद्दें नियत करने का अधिकार केवल हिस्सेदारों की जनरल मीटिंग को है और समस्त डाइरेक्टरों को दिये हुए ऋण की संख्या उस बैङ्क की प्राप्त पूँजी के $\frac{1}{10}$ से अधिक बढ़ाने की सख्त मनाही है।"†

भारत में मध्य प्रान्तीय बैङ्किंग इंक्वाइरी कमेटी ने डाइरेक्टरों को ऋण देने की प्रथा को क़तई रोकने के वास्ते क़ानूनी नियम बनाये जाने की सिफ़ारिश की है। श्री० मनुसूबेदार ने भी अपनी अल्पमत रिपोर्ट में यही सम्मति दी है।‡ बम्बई शेयर-होल्डर-एसोसियेशन ने इस पर खूब ज़ोर लगाया है। खेद है कि से० बैङ्किङ्ग इंक्वाइरी कमेटी ने इस सम्बन्ध में क़ानूनी रोक लगाने की आवश्यकता नहीं बतलाई। इस पर आलोचना

---

* Bombay chronicle, 20th March, 1931.

† The journal of the Indian Institute of Bankers, April 1931, Page 70.

‡ The Journal of the Indian Institute of Bankers, April 1931, Page 70.

करते हुए उक्त संस्था के तीसरे वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष श्री० क़ाज़ी जी ने अपने भाषण में कहा है :—

"इस घृणित प्रथा को रोकने के, सर्वविदित कारण कमेटी के सामने बहुत आग्रह के साथ उपस्थित किये गये थे, किंतु आश्चर्य है कि बहुमत ने इस प्रणाली को बिलकुल ही रोकने के पक्ष में सम्मति क्यों नहीं दी, हालाँकि ऐसे प्रमाण मौजूद हैं कि डाइरेक्टरों के लिये हुए ऋण ने अनेक बैंकों को डुबोया है। दुःख की बात है कि बहुमत ने क़ानून द्वारा इसको रोकने के लिये सिफ़ारिश करना उचित नहीं समझा"।

श्री० क़ाज़ी जी का कहना यथार्थ है। बैंकों की सुव्यवस्था की दृष्टि से डाइरेक्टरों का ऋण लेना अनुचित है और इसकी क़तई रुकावट के वास्ते क़ानूनी नियम होना आवश्यक है। यदि इतना न हो सके तो कनाडे के समान नियम अवश्य होना चाहिये, तभी यह अति को पहुँची हुई प्रथा क़ाबू में आ सकेगी, अन्यथा नहीं।

अपने हिस्सों की ज़मानत पर ऋण—एक बैंक के वास्ते अपने ही हिस्सों की ज़मानत पर ऋण देना अज्ञानता है। दी हुई उधार की ज़मानत में आई हुई ज़मानतें ऐसी होनी चाहिये कि जिन्हें तुरन्त भुनाया जा सके, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर निज के हिस्से बेच लेना न केवल बहुत कठिन, बल्कि कभी कभी असम्भव हो जाता है। "पहले बनारस-

बैंक* का दिवाला निज के हिस्सों की ज़मानत पर उधार देने के कारण ही निकला था। इम्पीरियल बैंक ने अपने हिस्सों की ज़मानत पर उधार देना आरम्भ ही से बन्द कर रक्खा है; हालाँकि दूसरे बैंक उनको प्रथम श्रेणी की ज़मानतें समझते हैं। कनाडे में तो बैंकों के लिये न केवल निज के हिस्सों की ज़मानत पर, बल्कि दूसरे बैंकों के हिस्सों की ज़मानत पर भी उधार देना क़ानून द्वारा वर्जित है†"; अतएव भारत में भी इसकी रुकावट होना अत्यन्त आवश्यक है और इसके लिये ऐसा क़ानूनी नियम होना चाहिये कि कोई बैंक न तो अपने निज के हिस्से ख़रीद सके न उनकी ज़मानत पर उधार दे सके, सिवाय इसके कि ऐसे हिस्से नेक नीयती के साथ दिये गये पूर्व ऋण की वसूली में लिये जावें। इस प्रकार आये हुए हिस्से भी छः महीने के अन्दर लाज़िमी तौर पर बिक जाने चाहिये।

एजेन्सी—इस आधुनिक जगत् में बैंक, बैंकिङ्ग धन्धे के अतिरिक्त अपने खातेदारों के वास्ते दूसरे कई काम करते हैं, उनमें एजेन्सी का धन्धा विशेष स्थान रखता है; जैसे—विनिमय-साध्य हिस्से, ज़मानतें तथा चाँदी-सोने के पाट ख़रीदना और बेचना, किराया, बीमा की क़िस्तें डिविडेण्ड (लाभ) चुकाना और प्राप्त करना, साख-पत्रों का संग्रह करना और ट्रस्टी बनना

---

* Minority Report, Para 381.

† Regulation of Banks in India by Tannan, P. 15.

इत्यादि। इंगलैण्ड, अमरीका और जर्मनी के ब्याज कमानेवाले लोगों (investors) ने बैंकों द्वारा ज़मानतें ख़रीदने और बेचने के लाभ को अच्छी तरह समझ लिया है। इस प्रथा को उत्तरोत्तर बढ़ाने के उद्देश्य से वहाँ के बैंक आम तौर पर अपने खातेदारों से इस काम के लिये कोई अलग ख़र्चा वसूल नहीं करते हैं, सिर्फ़ दलालों से आधा हिस्सा बँटा लेते हैं। चूँकि दलालों को बैंकों द्वारा बहुत बड़ी संख्या में काम मिलता है; इसलिये बैंकों द्वारा बँटाये हुए हिस्से की वे परवाह भी नहीं करते। बैंकों के खातेदारों को अपने अपने बैंकों की मारफ़त ज़मानतें ख़रीदने, बेचने में सबसे बड़ी सुविधा यह होती है कि रुपया देने और लेने की झंझट से बच जाते हैं और कोई विशेष ख़र्चा नहीं लगता। इसके अतिरिक्त जब खातेदार उन ख़रीदशुदा ज़मानतों को बैङ्क में ही रक्षार्थ जमा कर देते हैं और उनको लाभ और ब्याज वसूल करने का अधिकार दे देते हैं तब ज़मानतों के खोने, जलने इत्यादि के भय और ब्याज या लाभ प्राप्त करने के लिये उपस्थित करने की तारीख़ों को याद रखने की चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं। इसके साथ साथ ज़मानतों का भेजने और मँगाने में होनेवाले डाकख़र्च की बचत भी होती है। इसी प्रकार दूसरे कामों में भी खातेदारों को बैंकों से आराम मिलता है। बैंकों के लिये भी इस धन्धे में लाभ के सिवाय किसी प्रकार की आर्थिक हानि होने की कोई सम्भावना नहीं है। भारत में भी कुछ बैंक इन कामों को करते हैं, लेकिन अभी इस धन्धे को बहुत उत्तेजना

देना है; इसलिये इस सम्बन्ध में बैंकों को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिये। किसी प्रकार के क़ानूनी नियम बनाकर अड़चन पैदा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ट्रस्ट व्यवसाय—किसी एक आदमी या आदमियों के हाथ में, किसी दूसरे आदमी या आदमियों, एक संस्था या संस्थाओं के लाभार्थ, जायदाद वसीयत से छोड़ना 'ट्रस्ट' कहलाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में ट्रस्ट-कम्पनियों को ट्रस्ट-व्यवसाय के साथ साथ बैंकिंग धन्धा करते हुए देखकर वहाँ के बैङ्कों ने भी ट्रस्ट-व्यवसाय करना प्रारम्भ कर दिया है। इसका अनुकरण दूसरे देशों के बैङ्कों ने भी किया है। इङ्गलैण्ड के 'बड़े पाँच' बैङ्कों ने इस व्यवसाय को करने के लिये अपने यहाँ या तो पृथक् विभाग खोले हैं या अपने स्वामित्व और प्रबन्ध में सहायक कम्पनियाँ स्थापित की हैं।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि बैङ्क इस काम के लिये बहुत ही उपयुक्त संस्था है। प्रथम तो बैंक व्यक्तियों के समान नाशवान् नहीं होते हैं। किसी व्यक्ति को ट्रस्टी बनाने की हालत में यदि ट्रस्टी, वसीयत-कर्ता से पहले मर गया तो वसीयत-कर्ता के सामने फिर वही ट्रस्टी तलाश करने की मुसीबत आ जाती है, जो अच्छे बैंक को ट्रस्टी बनाने की हालत में नहीं आ सकती। यदि खातेदार यह चाहे कि बैङ्क वसी (executor) के मरने पर काम करे तो कई बैङ्क इसके लिये उद्यत हो सकते हैं, जिनमें से किसी को भी मरनेवाले वसी या

ट्रस्टी का स्थानापन्न बनाया जा सकता है और ऐसा परिवर्तन आसानी से तितम्मा-वसीयत (Codicel) द्वारा हो सकता है। दूसरे कई मित्रों में कुछ ही ऐसे होते हैं, जिन पर विश्वास किया जा सकता हो; लेकिन बैंक आमतौर पर व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं। तीसरे ट्रस्ट में आई हुई जायदाद का प्रबन्ध करने की समस्या बड़ी कठिन होती है, इसके लिये विशेष अनुभव और व्यापारिक कुशलता की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति, बैंक अधिक काम मिलने के कारण अपने अमले में तत्सम्बन्धी काम के विशेष अनुभवी नौकर रखकर कर सकते हैं। इस प्रकार ट्रस्टों का प्रबन्ध व्यक्तियों की अपेक्षा बैंकों द्वारा लगातार, सुचारु रूप से और कम खर्च में हो सकता है। इसके अलावा वसीयतकर्ता को अपने मित्रों की, इस काम को हाथ में लेने के लिये ख़ुशामद नहीं करनी पड़ती है। भारतीय-बैंकों ने जहाँ तक मेरा अनुमान है, इस व्यवसाय की ओर ध्यान नहीं दिया है, लेकिन भविष्य के लिये यह धन्धा उपेक्षा करने योग्य नहीं है; इसलिये भारतीय-बैंक क़ानून में बैंकों के लिये इस काम के करने की आज्ञा होनी चाहिये।

रक्षार्थ वस्तुयें जमा करना—भारतीय बैंकों को अपने खातेदारों से ज़मानतें (Securities) और मूल्यवान् वस्तुयें, रक्षार्थ प्राप्त करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। दूसरे देशों के आधुनिक बैंक इस धन्धे को बढ़ाने के वास्ते नित्य नई सुवि-

धाएँ प्रस्तुत करते रहते हैं। यदि कोई बैंक का खातेदार ज़मानतें या दूसरी मूल्यवान् वस्तुएँ बैंक के दफ़्तर का समय समाप्त हो जाने के बाद प्राप्त करता है और रात में अपने पास नहीं रखना चाहता है तो उसके लिये कुछ बैंकों ने 'रात्रि-रक्षा' का प्रबन्ध कर रक्खा है, जिनमें दूसरे दिन दफ़्तर खुलने के समय तक के लिये वस्तुयें रख ली जाती हैं। इस प्रकार बैंक अपने खातेदारों की मूल्यवान् वस्तुओं की रक्षा करने में सहायक हो रहे हैं। भारत में इस धन्धे के लिये अच्छा क्षेत्र है। यहाँ पर बहुत लोग घर से बाहर जाने की हालत में अपनी मूल्यवान् वस्तुओं को अपने मित्रों और रिश्तेदारों के यहाँ रक्षार्थ रखने के अभ्यस्त हैं। इसमें कभी कभी उनके साथ विश्वासघात हो जाता है और वे अपनी रक्खी हुई वस्तुएँ वापस नहीं पाते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अधिक जन-संख्या देहात में रहती है, वहाँ जब कभी छूतदार रोग फैलते हैं या किसी प्रकार का कोई विद्रोह खड़ा हो जाता है तब बहुत से लोग उस गाँव या क़स्बे का निवास थोड़े दिन के लिये छोड़ देते हैं। ऐसी अवस्था में उनके पास अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को हिफ़ाज़त से रखने का कोई साधन नहीं होता। या तो वे अपने मकान में कहीं गाड़ देते हैं या साथ में लिये लिये फिरते हैं। इससे बहुधा उन्हें हानियाँ उठानी पड़ती हैं। यदि बैंक इस काम को हाथ में लेने लग जावें तो धीरे धीरे उनके प्रति विश्वास बढ़ने से भारत की अधिकांश जनता, बैंकों द्वारा उपलब्ध इस सुविधा से लाभ उठाना बहुत

पसंद करेगी। देहात में रक्षा का समुचित प्रबन्ध करना हर एक बैंक के लिये आसान नहीं हो सकता, लेकिन बड़े बड़े नगरों में बड़े बड़े बैंकों की निगरानी में पृथक् रूप से अच्छे मज़बूत 'रक्षित-गृह' स्थापित किये जा सकते हैं, जिनमें मुफ़स्सलात के बैंक रक्षार्थ आई हुई वस्तुओं को लेकर भेज सकते हैं और जमा करनेवाले के वापस माँगने पर मँगवाकर दे सकते हैं। इस प्रकार यह धन्धा छोटे बड़े बैंकों के सहयोग से अच्छी तरह चल सकता है।

लाभ-वितरण—बैंकों के पास हिस्सा पूँजी (Share Capital) कम होती है। इनकी कार्य-शील पूँजी (Working Capital) में अधिक संख्या अमानतों की होती है, जिनको ये ब्याज कमाने के हेतु सरकारी, रेलवे, म्युनिसिपल कमेटी तथा नगरोन्नतिकारिणी-समिति (Improvement Trust) के क़र्ज़ें, बॉण्ड और अन्य प्रथम-श्रेणी की ज़मानतों पर, निजी और सार्वजनिक ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनियों के हिस्सों और डिबेञ्चर पर, अचल और चल सम्पत्ति की ज़मानत पर तथा प्रतिष्ठित कोठियों या कम्पनियों को उनकी वैयक्तिक ज़मानत पर भी उधार देते हैं या लगाते हैं। इस बड़े धन्धे में ज़मानती वस्तुओं का भाव घटने-बढ़ने या उधार लेनेवाली कम्पनियों और फ़र्मों के फ़ेल होने से कभी कभी बैंकों को भारी हानि हो जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी आकस्मिक हानियों को बिना अपने हिस्सा या अमानतों को क्षति पहुँचाये, सह सकने में समर्थ होने के

लिये आम तौर पर बैंक कई प्रकार के रक्षित और हानि-पूरक कोष—रक्षित-कोष (Reserve fund) ऋण-परिशोधन-कोष (Sinking fund) आकस्मिक-व्यय-कोष (Contingency-fund), साखपत्र-मूल्य-ह्रास-पूरक-कोष (Investment Depreciation Reserve), अचल सम्पत्ति मूल्य-ह्रास-पूरक कोष (Landed properties Depreciation Reserve), बट्टा खाता पूरक कोष (Bad Debt fund) आदि नाम से स्थापित करते हैं, जिनमें प्रति वर्ष अपनी आय में से सर्वप्रथम कुछ निश्चित भाग निकालकर जमा करते रहते हैं, तत्पश्चात् बचा हुआ लाभ हिस्सेदारों में बाँटते हैं। कुछ वर्षों में इन कोषों में इतनी अच्छी रक़म हो जाती है कि बैंक भारी से भारी हानि को भी सहने में समर्थ हो जाते हैं और उनकी स्थिति बड़ी मज़बूत समझी जाने लगती है।

इस सम्बन्ध में बैंकों के संचालकों के सामने लाभ विभाजित करते समय दो समस्यायें आती हैं। एक ओर यदि उक्त वर्णित कोषों में रुपया ले जाते हैं तो हिस्सेदारों को कम लाभ मिलता है। इससे हिस्सों के मूल्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता और हिस्सों का मूल्य घटने के साथ बैंक की कमज़ोरी की डौंडी पिट जाती है, फलस्वरूप अमानतें कम होने लगती हैं। दूसरी ओर अमानतें बढ़ाने की दृष्टि से हिस्सों का मूल्य बनाये रखने या बढ़ाने के ख़ातिर अधिक लाभ विभाजित करते हैं तो उक्त कोषों के बढ़ाने में उपेक्षा होती है; इसलिये बहुत से नवीन

खुलनेवाले बैंक पिछली बात को ही अपनाना अधिक पसंद करते हैं।

वर्तमान आर्थिक संसार में फैली हुई व्यापारिक मंदी के कारण बैंकिंग संस्थाओं पर आयेदिन आर्थिक संकट आते रहते हैं, जिनका सामना करने के लिये पहली आवश्यकता इस बात की है, बैंक अपने धन्धे में होनेवाली हानियों को सहने में समर्थ हो, ताकि अपनी हस्ती क़ायम रख सकें। ब्याज से मूल पूँजी की रक्षा अधिक अपेक्षित होती है; इसलिये लाभ अधिक बाँटने के ख़ातिर रक्षित और हानि-पूरक कोषों को बढ़ाने की उपेक्षा करना बुद्धिमानी का काम नहीं है। दूसरे देशों में इसके लिये क़ानूनी नियम मौजूद हैं:—

अमरीका—"नेशनल बैंक ऐक्ट आव् अमरीका के अनुसार प्रत्येक बैंक के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने निःख़र्ची-लाभ में से सर्वप्रथम १०) प्रतिशत रक्षित कोष में प्रतिवर्ष जमा करता जावे, जब तक कि वह कोष मूलधन का २० प्रतिशत न हो जावे। बाद में कण्ट्रोलर के निर्णय पर निर्भर होता है।"*

जापान में "नवीन क़ानून सन् १६२७ के अनुसार कोई बैंक तब तक लाभ नहीं बाँट सकता, जब तक निःख़र्ची लाभ का १० प्रतिशत रक्षित फ़ंड में न ले जावे।"*

---

* Regulation of Banks in India, page 12.

कनाडा में "बैंक क़ानून की धारा ५९ के अनुसार वहाँ के बैंक ८ प्रतिशत से अधिक लाभ नहीं बाँट सकते, जब तक कि तमाम आनुमानिक और निश्चित हानियों की पूर्ति के निमित्त यथोचित रक़म न रख ली गई हो और रक्षित-कोष में प्राप्त-पूँजी के ३० प्रतिशत के बराबर रक़म जमा न हो चुकी हो।"*

इटली में "बैंकों के लिये अपने लाभ में से १० प्रतिशत प्रति वर्ष रक्षित कोष में ले जाना अनिवार्य है, जब तक कि वह कोष मूलधन के ४० प्रतिशत के बराबर न हो जावे।"*

भारत में बैंकिंग धन्धा न केवल शिशु-अवस्था में है; बल्कि कमज़ोर भी है। इसको शक्ति देने के लिये ऊपर प्रस्तावित अन्य नियमों के साथ साथ रक्षित कोष को बढ़ाते रहने के लिये भी क़ानूनी नियम होने की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि लाभ का विभाजन करते समय उसका भाग निकालने की उपेक्षा न की जाय; यथा—

(१) लाभ घोषित करने से पहले निःख़र्ची लाभ में से १० प्रतिशत रक्षित कोष में प्रतिवर्ष ले जाया जावे, जब तक कि प्राप्त-पूँजी के बराबर रक़म न हो जावे, बाद में कम से कम ५ प्रतिशत।

(२) जब तक रक्षित कोष बिकी हुई हिस्सा-पूँजी के ¼ के बराबर न हो जावे तब तक ६ प्रतिशत और इसके बाद ½ के बराबर होने तक ९ प्रतिशत से अधिक लाभ न बाँटा जावे। ततपश्चात्

* Regulation of Banks in India, page 12.

९ प्रतिशत से अधिक लाभ लाइसेन्स देनेवाले अधिकारी की स्वीकृति प्राप्त करके बाँटा जा सकता है।

उचित निरीक्षण

निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य हिस्सेदारों के साथ साथ जमा करनेवालों के हितों को भी रक्षा करना है; इसलिये केवल हिस्सेदारों के चुने हुए निरीक्षकों या हिसाब-परीक्षकों द्वारा की गई जाँच को पर्याप्त न समझकर कई देशों की सरकारें, बैंकों का निरीक्षण अपने निरीक्षकों से कराती हैं :—

कनाडा में "मिनिस्टर की सिफ़ारिश पर सपरिषद् गवर्नर जनरल, इन्सपेक्टर जनरल आव् बैंक्स की नियुक्ति करते हैं, जिसको कुव्यवहार, अयोग्यता तथा सुपुर्द किये हुए काम को पूर्ण रूप से सम्पादन न करने आदि कारणों से अलहदा करने का अधिकार भी सपरिषद् गवर्नर जनरल ही के हाथ में है। इन्सपेक्टर जनरल पूरे समय का अफ़सर होता है, उसकी आधीनता में आवश्यकतानुसार शिक्षित और अनुभवी अमला रहता है, जो बैंकों का निरीक्षण करता है। उसका यह काम होता है कि पूरी छान-बीन और पूछ-ताँछ द्वारा यह मालूम करे कि क़ानून की उन शर्तों का, जो हिस्सेदारों और अमानतदारों के हितों की रक्षार्थ लागू को गई है, ठीक ठीक पालन किया जाता है या नहीं और बैङ्क की आर्थिक अवस्था सन्तोष-जनक है या नहीं। अमले से इस प्रकार जाँच की प्राप्त रिपोर्टों के

आधार पर इन्सपेक्टर जनरल वर्ष में एक बार मिनिस्टर की सेवा में अपनी रिपोर्ट प्रेषित करते हैं। इसके अलावा जब कभी इंसपेक्टर जनरल को किसी बैंक की हालत निर्बल (Insolvent) मालूम होती है तो वह तुरन्त उस बैंक की हालत की सविगत रिपोर्ट मिनिस्टर को करता है। वहाँ से उस पर विचार होकर अति शीघ्र, बैंक के द्वार बन्द होने की प्रतीक्षा किये बिना ही आवश्यक कार्यवाही आरम्भ कर दी जाती है"।*

जापान में "अर्थ-सचिव बैंकों के कारोबार पर पूरी निगरानी रखते हैं। वहाँ के क़ानून के अनुसार बैंक के हिसाब-परीक्षक (auditor) उसके धन्धे का गहरा अनुसन्धान करके उसकी वास्तविक स्थिति की रिपोर्ट अर्थ-सचिव के सामने वर्ष में दो बार प्रेषित करते हैं। इन रिपोर्टों में क़ानून-द्वारा वांछित मद्दों का परिणाम भी दर्ज किया जाता है। सन् १६२७ ई० के संशोधन के अनुसार अर्थ-सचिव अपने ही निरीक्षकों से बैंकों की जाँच कराते हैं। इसके लिये वहाँ १८ निरीक्षक और ५४ उनके असिस्टेण्ट नियुक्त हैं, जो पाँच डिवीज़न में बँटे हुए हैं"।†

संयुक्त राज्य अमरीका में "कण्ट्रोलर आव् करेन्सी, नेशनल बैंकों के काम-काज की जाँच के लिये जब वे उचित

---

* The Journal of the Indian Institute of Bankers, January 1931, Page 86-87.

† Regulation of Banks in India, by M. L. TANNAN, Page 20.

समझते हैं, अच्छे व्यक्तियों को निरीक्षक नियुक्त करते हैं और उनसे बैङ्कों की स्थिति के बाबत रिपोर्ट लेते हैं। ये निरीक्षक बिना किसी पूर्व सूचना और अनिश्चित समय में पहुँचते हैं और बैङ्कों के तमाम कारोबार की जाँच करते हैं; जैसे—रोशन गिनना, डिस्काउंट किये बिल, क़र्ज़ और दूसरी प्रकार से लगी हुई रक़मों के लिये यह छान-बीन करना कि उनकी ज़मानत में प्राप्त ज़मानतें संतोषजनक हैं न, ये डाइरेक्टरों की ओर लेनी रक़म की विशेष रूप से देखभाल करते हैं। इस प्रकार ये निरीक्षक बैङ्कों के व्यवसाय से पूरे तौर पर वाक़िफ़ होकर निर्णय करते हैं कि बैङ्क कहाँ तक सुरक्षित अवस्था में चल रहे हैं और इसकी रिपोर्टें कण्ट्रोलर आव् करेन्सी और सम्बन्धित बैङ्कों में भेजते हैं। यदि आवश्यकता होती है तो कण्ट्रोलर आव् करेन्सी ख़ास ख़ास बातों की ओर बैङ्कों का ध्यान आकर्षित करते हैं और उनको हिदायत करते हैं कि सन्देहजनक और डूबी हुई पूँजी को बट्टा खाते लिखकर उसकी क्षति-पूर्ति रक्षित-कोष को कम किया जाकर की जावे"।*

इन सरकारी निरीक्षकों और परीक्षकों को वेतन सरकार से मिलता है। इस ख़र्चे को सरकार बैङ्कों पर कर लगाकर वसूल करती है।

---

* Regulation of Banks in India, by M. L. Tannan, Page 20.

भारत में बैंकों के काम-काज पर सरकारी हस्तक्षेप बहुत ही सूक्ष्म रूप में है। कम्पनी क़ानून की धारा १३७ के अनुसार ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियों के रजिस्ट्रार ज्वाइंट स्टाक कं० से विशेष हालात मालूम कर सकते हैं। यदि उन हालात से वह सन्तुष्ट न हो या पूछे हुए हालात न बताये जायँ तो वह उस मामले की रिपोर्ट स्थानीय सरकार को कर सकता है। इसका व्यवहार में कोई प्रभाव नहीं हुआ। इसी प्रकार स्थानीय सरकार को, मूलधन के ⅕ हिस्सों के मालिक हिस्सेदारों के प्रार्थना करने पर, बैङ्क के हालात की जाँच कराने का अधिकार होने के नियम से भी कोई वास्तविक लाभ दिखाई नहीं दिया। भारतीय बैङ्कों के हिसाबात की परीक्षा कम्पनी-क़ानून की धारा १४४ की मद नं० ३ के अनुसार हिस्सेदारों की जनरल मीटिंग में चुने हुए हिसाब-परीक्षकों के द्वारा होती है। इन हिसाब-परीक्षकों को इसी क़ानून की धारा १४५ के अनुसार बैङ्क की सब हिसाब की किताबें और वाउचर देखने के अधिकार हैं। ये समस्त हिसाबात की जाँच करते हैं और बैङ्क के आवजाव का मिलान करके बैलेन्स शीट तैयार करते हैं, जिसको तस्दीक़ करते हुए लिखते हैं—"यह बैलेन्स शीट क़ानून के अनुसार दिखाई हुई हिसाब की किताबों से प्राप्त उत्तम से उत्तम सूचना और दिये हुए जवाबात के आधार पर तैयार की गई है, जो कम्पनी के कारबार की सच्ची हालत प्रकट करती है।" यह व्यवस्था लगातार फ़ेल होने-वाले बैङ्कों की संख्या और उसके कारणों को देखते हुए सन्तोष-

जनक साबित नहीं हुई। कई काल-कवलित बैंकों के ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें पेशेवर ऊँची योग्यता-प्राप्त अनुभवी हिसाब-परीक्षक जाँच करते थे, जो व्यवस्थापकों के किञ्चित् विरोध पर गम्भीर से गम्भीर अनियमितताओं और बुराइयों को निर्भीकता-पूर्वक हिस्सेदारों के सामने रखने के बजाय छुपा गये। इसका स्पष्ट कारण यह है कि इन पेशेवर निरीक्षकों की दूकानें व्यवस्थापकों की अनुग्रह ही पर निर्भर रहती हैं; क्योंकि उनको न केवल उन बैंकों के निरीक्षण का काम मिलता है, बल्कि कई दूसरी कम्पनियों का, जिनके भी डाइरेक्टर वे ही व्यक्ति होते हैं, काम मिलता है। यह माना कि इन हिसाब-परीक्षकों का चुनाव हिस्सेदार करते हैं, जो उन्हें अलहदा करने का भी अधिकार रखते हैं, लेकिन यह सब कुछ सिद्धान्त ही सिद्धान्त है, व्यवहार में आम तौर पर डाइरेक्टरों द्वारा ही चुने जाते हैं; इसलिये ऐसा प्रबन्ध होने की आवश्यकता है कि जिससे निरीक्षण निर्भीकता-पूर्वक हो और कार्यकर्ताओं को तमाम अनुचित कार्यवाइयों की सच्ची रिपोर्टें सरकार और हिस्सेदारों को प्राप्त हो सकें ताकि समय पर उचित कार्यवाही की जा सके। इसके लिये सरकारी निरीक्षक नियुक्त होने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।

सरकारी निरीक्षण का प्रश्न भारत में नया नहीं है। सन् १९१३ ई० के अर्थसंकट के बाद और सन् १९१४ ई० के पहले जब इम्पीरियल कौन्सिल में, उस समय फ़ेल होनेवाले

बैङ्कों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त करने के निमित्त सर गंगाधर चिन्तामणि के प्रस्ताव पर विचार हो रहा था, उस समय फ़ज़ली भाई करीम भाई ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि भारत में बैङ्कों के लिये सरकारी निरीक्षण की गहरी आवश्यकता है। बम्बई के ऐडवोकेट जनरल सर थोमस्टैंगमेन ने भी बम्बई सरकार से, बैङ्कों का सरकारी निरीक्षण होने की सिफ़ारिश की थी। इसके अतिरिक्त आसाम बैंकिंग इंक्वाइरी कमेटी ने भी लिखा है:—

"हम उत्तम समझते हैं कि ज्वाइंट-स्टाक-बैंकों का निरीक्षण सरकारी निरीक्षक द्वारा हो, जो उस निरीक्षक की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र होगा, जिसका कि पुनः निर्वाचन हिस्सेदारों और मैनेजिंग डाइरेक्टरों की इच्छा पर निर्भर है।"*

खेद है कि सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वाइरी कमेटी ने निरीक्षण-सम्बन्धी वर्तमान क़ानूनी नियमों में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं बतलाई,† लेकिन संसार के दूसरे देशों के रिवाज और भारतीय बैंकों की हालत को देखते हुए बैंकों और सर्वसाधारण के हित की दृष्टि से सरकारी निरीक्षण का होना अधिक उत्तम मालूम होता है।

---

* The Journal of the Indian Institute of Bankers, January 1931, Page 87-88.

† Report, Para 718.

सरकारी निरीक्षण से लाभ—इससे न केवल अनियमित कार्यवाइयाँ और बुराइयाँ; जैसे—अधिकारों का दुरुपयोग करना व क़ानून-विरुद्ध काम करना आदि की रुकावट होगी, बल्कि जमा रखनेवालों के दिलों में बैंकों के साथ व्यवहार करने के लिये गहरा विश्वास हो जायगा। फल-स्वरूप जो रुपया इस समय यत्र तत्र अटका हुआ है, बैंकों में जमा होगा। यह निरीक्षण लगातार हिसाब की जाँच का भी काम करेगा, जिसका प्रबन्ध करने में बैंक समर्थ नहीं हो पाते। इससे विशेष लाभ यह होगा कि बैङ्कों की ब्रांचों के हिसाबात की जाँच भी हो जाया करेगी, जो इस समय नहीं हो पाती और हेड आफ़िस के हिसाब-परीक्षक (auditors) ब्रांच मैनेजरों के हस्ताक्षर-युक्त हिसाब ही को सही समझकर स्वीकार कर लेते हैं।

प्रस्ताव—भारत सरकार के अर्थ-विभाग के आधीन प्रत्येक प्रान्त में एक इंसपेक्टर जनरल आव् बैंक्स नियुक्त होने चाहिये और उनके आधीन आवश्यकतानुसार निरीक्षक नियुक्त किये जाने चाहिये, जो अपने अपने डिवीज़न के बैंकों की, बिना किसी पूर्व सूचना और निश्चित समय के मासिक जाँच करते रहें और देखते रहें कि बैंकों का धन्धा कहाँ तक सुरक्षित है, सब कार-बार विवेक-पूर्ण और नियमानुसार होता है न। इस जाँच की रिपोर्ट समय समय पर इन्सपेक्टर जनरल आव् बैंक्स के पास पेश होती रहे। वहाँ से त्रुटियां, ग़लतियों और नियम-विरुद्ध कार्यवाइयों के लिये बैंकों से जवाब लिये जावें, भविष्य के लिये

उनको सावधान किया जाय और हिस्सेदारों तथा अमानतदारों के हितार्थ प्रत्येक उचित कार्यवाई की जावे।

बैलेन्स शीट—बैंक के हिस्सेदारों और अमानतदारों को यह जानने का अधिकार है कि उनका रुपया किस प्रकार लगाया हुआ है। एक ऐसे बैंक के लिये, जो सावधानी से सुरक्षित और मज़बूत अवस्था में काम कर रहा है, अपने लेने-देने का स्पष्ट और पूरा हिसाब प्रकाशित करने में डर की कोई बात नहीं है; बल्कि इससे उसके प्रति खातेदारों का विश्वास बढ़ता है। इसी वास्ते इङ्गलैण्ड में प्राइवेट बैंक भी अपने हिसाबात की प्रमाणित हिसाब-परीक्षकों से जाँच कराकर पर्याप्त सूचना के साथ बैलेन्स शीट प्रकाशित करते हैं, लेकिन भारत के सार्वजनिक बैंक-क़ानून के अनुसार स्थिति-सूचक बैलेन्स शीट प्रकाशित करने में भी झिझकते हैं। ब्रिटिश भारत के बैंकों से देशी राज्यों द्वारा सहायता-प्राप्त बैंक; जैसे—माईसोर बैंक, बैंक आव् बड़ोदा, ट्रावनकोर स्टेट एडेड बैंक और कोटा स्टेट कोआपरेटिव बैंक अपनी बैलेन्स शीट अधिक स्पष्ट प्रकाशित करते हैं। ऐसी हालत में भारत सरकार पर इस बात की ज़िम्मेदारी आती है कि वह बैंकों को, जनता के प्रति उनके इस कर्तव्य का पालन करने को, विवश करे।

बैलेन्स शीट बैंक की सच्ची स्थिति-सूचक और सरलता से समझने योग्य होनी चाहिये। इसकी पूर्ति के लिये वर्तमान

प्रचलित फ़ार्म 'एफ़' अपूर्ण है; अतः इसमें सुधार होना आवश्यक है :—

अमानतों का पृथक्-करण—आजकल बैंक सब प्रकार की जमाशुदा अमानतों को; जैसे—मियादी सेविंग्ज़ बैंक और चल्लू जमाओं को मिश्रित करके बैलेन्स शीट में दिखाते हैं, यह अनुचित है। मियादी और माँगते ही वापस अदा करने योग्य अमानतों में गहरा अन्तर है। पहली प्रकार की अमानतें शान्ति-दायक होती हैं, लेकिन दूसरी प्रकार की जमायें चिन्ता-जनक होती हैं; क्योंकि इन्हीं की माँग की अधिकता होने और उसको पूरा कर सकने में असमर्थ रहने पर ही बैंकों के दिवाले निकलते हैं; इसलिये बैलेन्स शीट के पढ़नेवाले को यह ज्ञात होने के लिये कि बैंक माँगते ही वापस करने योग्य जमाओं को चुकाने के लिये कहाँ तक पर्याप्त साधन रखता है, दोनों प्रकार की जमाओं को पृथक् पृथक् दिखलाना चाहिये। इसी प्रकार बैंक द्वारा उधार ली हुई रक़म और अमानतें मिश्रित नहीं होनी चाहिये। अमानतें बैंक में बिना माँगे जमा होती हैं और उधार बैंक ख़ुद आवश्यकता पड़ने पर कोशिश करके लेता है। दोनों का रूप अलग अलग है और दोनों भिन्न भिन्न प्रकार की सूचना देती हैं। इनको मिश्रित करने से लोगों को ग़लतफ़हमी होती है, इसलिये इनको अलग अलग ही दिखाना चाहिये।

लगे हुए रुपयों का पृथक्करण—बैंक कई प्रकार की ज़मानतों पर रुपया लगाते हैं, इन सबको मिश्रित करके

इकजाई रक़म दिखाने से वास्तविकता मालूम नहीं होती; क्योंकि सबकी क़ीमत समान रूप में घटती-बढ़ती नहीं है। एक प्रकार की ज़मानत की क़ीमत घटती है तो दूसरी की बढ़ती है, ऐसी हालत में सबके मिश्रित हो जाने से यह नहीं मालूम होता कि बैंक के पास किस प्रकार की ज़मानतें कितनी संख्या की हैं और उनमें कितना टोटा-नफ़ा है; इसलिये ज़मानतों पर लगे हुए रुपये (Investment) के पेटे में इस प्रकार पृथक्करण होना चाहिये :—

(१) सरकारी, अर्ध सरकारी या दूसरी प्रकार की ट्रस्टी ज़मानतों पर।

(२) रेलवे तथा अन्य सार्वजनिक कार्यकर्त्री कम्पनियों की ज़मानतों पर।

(३) औद्योगिक और व्यावसायिक कम्पनियों के डिबेञ्चर, हिस्से आदि पर।

नोट—इन ज़मानतों का मूल्य असली लागत या बाज़ार भाव से दोनों में जो कम हो, वह बतलाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त उधार दिया हुआ रुपया भी उधार (Loan) के पेटे में इस प्रकार अलग अलग दिखाना चाहिये :—

(१) माल या माल के स्वत्व-पत्र (Documents of title) की ज़मानत पर।

(२) डाइरेक्टरों या बैंक के दूसरे अफ़सरों को या उनसे सम्बन्धित कम्पनियों को या उनकी ज़मानत पर।

(३) ज्वाइएट स्टाक कम्पनियों या दूसरे व्यक्तियों को वैयक्तिक-ज़िम्मेदारियों (personal guarantees) पर।

इन रक़मों में जितनी रक़म सन्देह-जनक हो, वह और उसकी पूर्ति के लिये कितना साधन है या नहीं है, स्पष्ट दिखाया जावे।

फ़ार्म का नमूना—बैलेन्स शीट के फ़ार्म का एक नमूना शेयर-होल्डर्स-एसोसियेशन बम्बई ने सेण्ट्रल बैंकिङ्ग इंक्वाइरी कमेटी के सामने पेश किया है। वास्तव में यह नमूना बड़े परिश्रम से छपे हुए ४ पृष्ठों में तैयार किया गया है और सविगत स्थिति-सूचक है, लेकिन इसमें लेने और देने की विगत इतनी विस्तार के साथ लिखी गई है कि उसने 'अति' का रूप धारण कर लिया है; इसलिये 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के सिद्धान्त का अनुकरण करते हुए उक्त कमेटी ने इस फ़ार्म को स्वीकार नहीं किया और इस सम्बन्ध में आये हुए समस्त प्रस्तावों पर विचार करते हुए अपनी रिपोर्ट के पारा ७३० में इसका एक नमूना तजवीज किया है।

इसमें शक नहीं बैलेन्स-शीट, हिस्सेदारों के अतिरिक्त सर्व-साधारण के सामने आती है और विरोधी संस्थाओं के हाथों में भी पहुँचती है; अतएव भारतीय बैंकों के लिये जो विदेशी बैंकों की प्रतियोगिता के कारण बहुत ही प्रतिकूल दशा में काम कर रहे हैं, अपने धन्धे की विगत, विदेशी बैंकों की विगत (जो अपने

देश में प्रकाशित करते हैं) से अधिक स्पष्ट प्रकाशित करना कभी कभी हानिप्रद सिद्ध हो सकता है। इस बात का ध्यान रखते हुए बैलेन्स-शीट का जो नमूना (देखो परिशिष्ट नं० २) सें० बैं० इंक्वाइरी कमेटी ने तजवीज़ किया है, उपयुक्त है। वह वर्तमान फ़ार्म 'एफ़' की अपेक्षा अधिक स्थिति-सूचक है और उसमें सर्वसाधारण के जानने-योग्य ऊपर बताई हुई लगभग सभी आवश्यक बातों का समावेश कर दिया गया है।

मासिक स्थिति-सूचक पत्र—वर्तमान क़ानून के अनुसार बैंक वर्ष में २ बार बैलेन्स-शीट प्रकाशित करते हैं—इंग्लैण्ड में यद्यपि क़ानूनी नियम नहीं है तो भी वहाँ के बैंक प्रतिमास स्थिति-सूचक पत्र प्रकाशित करते रहते हैं। बर्लिन के बैंक अपनी स्वतन्त्र इच्छा से दो महीने में एक बार स्थिति-सूचक पत्र प्रकाशित करने पर स्वयं ही राज़ी हुए हैं। न्यू वेनियुपेलिन-बैंक-क़ानून (८ जुलाई, १९२७) के अनुसार वहाँ के बैंक मासिक-बैलेन्स-शीट प्रकाशित करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में बैंकों के लिये आवश्यक है कि वे अपने साप्ताहिक स्थिति-सूचक पत्र उस क्लियरिंग हाउस में, जिसके वे मेम्बर हैं, प्रेषित किया करें। इन पत्रों में क़र्ज़ और डिस्काउण्ट्स, अन्य लगी हुई रक़में, नक़द रोशन अपने पास और बैंकों में जमा—मियादी और माँगने पर चुकाने योग्य, अलग अलग और अन्य देने तथा पुनः डिस्काउण्ट्स आदि के अंक प्रकाशित किये जाते हैं। इस प्रकार बार बार स्थिति-सूचक पत्र प्रकाशित होते रहने से

बैंकों को वास्तविकता छिपाने का अवसर नहीं मिलता। भारत के कई मौजूदा बैंक अपनी स्थिति को अधिक सुन्दर रूप से रखने के लिये अर्ध-वर्ष के अन्त पर अपनी लगी हुई पूँजी का काफ़ी हिस्सा वसूल कर लेते हैं और वास्तविकता को छिपाते हुए बहुत मज़बूत हालत दिखाने में सफल हो जाते हैं; इसलिये भारतीय ज्वाइण्ट स्टॉक बैंकों के लिये क़ानून-द्वारा यह आवश्यक होना चाहिये कि वे मासिक स्थिति-सूचक पत्र प्रकाशित किया करें (नमूना परिशिष्ट नं० २ में दिया है।) लाभ-हानि-सूचक पत्र वर्तमान की भाँति वर्ष में दो बार ही प्रकाशित होते रहे, लेकिन इस समय इनका प्रकाशित करना क़ानून में अनिवार्य नहीं है सो होना चाहिये। इसके साथ ही यह भी उचित प्रतीत होता है कि बैंकों को इस बात के लिये भी विवश किया जावे कि उक्त पत्र अंग्रेज़ी के अतिरिक्त प्रान्तीय देशी भाषाओं में भी प्रकाशित किये जावें। यह नई बात नहीं है। आजकल भी सेण्ट्रल बैंक आव् इण्डिया लि० और बैंक आव् बड़ोदा अपनी बैलेन्स शीटें अंग्रेज़ी और गुजराती में प्रकाशित करते हैं। ट्रावनकोर-स्टेट-एडेड-बैंक, अपनी बैलेन्स शीट अंग्रेज़ी में मलायम भाषा के अनुवाद-सहित प्रकाशित करता है, कोटा-स्टेट-कोआपरेटिव-बैंक लि० केवल हिन्दी ही में बैलेन्स शीट प्रकाशित करता है। इसी ही प्रकार अन्य कई कोआपरेटिव बैंक प्रान्तीय भाषाओं में बैलेन्स शीटें प्रकाशित करते हैं। इसके अलावा सर्वसाधारण की जानकारी के लिये उक्त पत्र संक्षिप्त रूप से स्थानीय समाचार

पत्रों में सप्ताह भर तक छपते रहने चाहिये। इसमें बैंकों का कोई हानि नहीं है; बल्कि उनको अधिक जनसंख्या जानने लगेगी और फलस्वरूप अधिकाधिक काम मिलने लगेगा।

बैंकों की रक्षा

हमलों से—पिछले पृष्ठों में अनेक बार लिखा जा चुका है कि 'विश्वास' बैंकिंग धन्धे का 'प्राण' है; इसके कम होने से बैंकिंग-संगठन को गहरी क्षति पहुँचती है; इसलिये द्वेष-वश या भ्रमवश बैंकों के विरुद्ध उड़ाई जानेवाली गप्पों को रोकने की महती आवश्यकता है। "इन गप्पों के कारण जापान में १५ मार्च से लेकर २१ अप्रैल (स० २७) तक फ़ेल होनेवाले बैंकों की संख्या लगभग ३० थी और उनमें ९० करोड़ 'येन' जमा थे।" * भारत में भी इन निराधार गप्पों के कारण आये दिन बैंकों पर संकट आते रहते हैं। सेण्ट्रल बैंक आव् इण्डिया लि० की जनरल मीटिंग ता० २५ फ़रवरी, १९३० में सर फ़ीरोज़ सेठना ने अपने अध्यक्ष-पद से दिये हुए भाषण में कहा था कि "हमारी साख को क्षति पहुँचाने के लिये बार बार हम पर बुरी तरह हमले हुए हैं"†। इसके बाद सन् १९३३ के अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में सेण्ट्रल बैंक आव् इण्डिया आदि बम्बई के

---

* Regulation of Banks in India, by M. L. Tannan, Page 17.

†——Do——Do——Page 24.

कई बैङ्कों पर पावनेदारों ने ज़ोर का धावा बोला था, उस समय पहले बैङ्क के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री० एस० एन० पोचखाना-वाला ने एक प्रेस-प्रतिनिधि को बयान देते हुए कहा था—"ऐसा मालूम होता है कि कुछ अप-स्वार्थी लोगों ने ऐसी गप्प उड़ाई है कि बम्बई के कुछ बैंक, करीम भाई के मिलों और रूई की एक बड़ी फ़र्म पर—जिन्होंने गत सप्ताह में देना चुकाने से इंकार किया है—अधिक लेना होने के कारण, गहरे नुक़सान में आ गये हैं। फलस्वरूप अमानतदार अधीर हो उठे हैं। सेण्ट्रल बैंक करीम भाई की मिलों से बहुत अर्से से लेन-देन नहीं कर रहा है, केवल कुछ हज़ार के हिस्सों पर उधार दिया हुआ है। रूई की फ़र्म पर तो इस बैंक का कुछ भी बाक़ी नहीं है, इस-लिये सेण्ट्रल बैंक पर यह धावा अकारण और अनुचित है इत्यादि।*

पाठको! सेण्ट्रल बैंक, भारतीय ज्वाइण्ट स्टॉक बैंकों में सबसे बड़ा और सोलह आना स्वदेशी संस्था है। इसकी आर्थिक स्थिति भी बड़ी मज़बूत है। उसके साथ भारतीय जमा करने-वालों का यह व्यवहार है तो दूसरे बैंकों के प्रति कैसा हो सकता है? इसका अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं। भार-तीय जमा करनेवालों को इस नादानी के कारण कई अच्छे बैंक काल-कवलित हुए हैं। इसको रोकने के लिये सरकार को

---

* National Call, 13th Octpber, 1933.

का भी सहयोग प्राप्त न होने पर इसकी सफलता में बाधा उपस्थित होना सम्भव है।

समय पर अदायगी न होने का प्रश्न—सहकारिता की असफलता का प्रमुख कारण यह बतलाया जाता है कि सभाओं के सदस्यों पर ऋण प्रतिदिन बढ़ता जाता है और रुपया ठीक समय पर जमा नहीं होता, यह सत्य है। सन् १९२८-२९ ई० में समस्त अदा होने-योग्य ऋण की २१·३ प्रतिशत रक़म बाक़ी रही थी, सन् १९२९-३० ई० में यह रक़म और बढ़कर २४·८ प्रतिशत हो गई। यह दोष सहकारी-समितियों के जन्म-काल से ही चल पड़ा है और अब इसने इतना भीषण रूप धारण कर लिया है कि सहकारिता की असफलता का सारा कलंक इसी के सिर मँढ़ा जाता है, जैसा कि मेकलेगन-कमेटी ने लिखा है—

There is no defect more prominent or more dangerous in the management of cooperative societies in India than the exceeding laxity and unpunctuality in the repayment of loans……unless loans are repaid punctuality, cooperation is both financially and educationally an illusion. अर्थात्—भारत की सहकारी-समितियों के प्रबन्ध में, अदायगी में सुस्ती होने के अतिरिक्त, दूसरा कोई प्रमुख और भयंकर दोष नहीं है। जब तक अदायगी ठीक समय पर

न होगी तब तक सहकारिता, अर्थ और शिक्षा दोनों दृष्टि से इन्द्रजाल के समान बनी रहेगी। *

यह बात पंद्रह वर्ष पहले की है। इसके बाद जितने कमीशन और कमेटियों ने सहकारिता के प्रश्न पर विचार किया, सबने इसकी भयंकरता को स्वीकार करते हुए समय पर बल-पूर्वक वसूली करने के लिये सम्बन्धित अधिकारियों को ज़ोरों के साथ चेतावनी दी है। सर के० एम० मेकडोनलड (इम्पीरियल बैंक के गवर्नर) ने तो यहाँ तक लिखा है कि जो मेम्बर समय पर रुपया अदा न करे, उससे मेम्बरी के लाभ छीन लिये जावें और जो सभा रुपया अदा न करे, उसको तोड़ दिया जावे। हमारी राय में सर मेकडोनलड का कथन अव्यावहारिक है। यह उपाय उस समय सफल हो सकते हैं, जब कृषक देने में समर्थ हों और न देते हों। ऐसा कभी-कभी होता है, लेकिन आम तौर पर नहीं होता। वास्तव में बात तो यह है कि कृषकों के पास इतना पैदा ही नहीं होता कि वह कृषि-सम्बन्धी ख़र्च निकालकर ऋण चुकाने के लिये कुछ बचा सकें; क्योंकि अब कृषि का धन्धा लाभ का नहीं, किन्तु घाटे का रह गया है।

कृषि घाटे का धन्धा है—भारतवर्ष में कृषक-परिवार के पास बहुत अल्प भूमि (Small holdings) होती है। वह भी सर्वथा प्रकृति देवी की कृपा पर निर्भर है। कभी वर्षा होती है,

* Coop. Movement in India, by Eleanor M. Hough, page 228.

कभी नहीं होती और कभी आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो कभी ओले पड़ जाते हैं। अगर इन्द्र भगवान नहीं रूठते हैं तो कभी टिड्डी दल, गेरिया आदि कृषि-शत्रुओं का दौर दौरा हो जाता है और फ़सल चौपट हो जाती है; इसलिये भारतवर्ष ऐसा अभागा देश है, जहाँ पैदावार का औसत सबसे कम है। इस सम्बन्ध में जयपुर-निवासी श्री हीरालाल जी शास्त्री, जो सच्चे ग्राम-सेवक हैं, अपना स्वयं का अनुभव वर्णन करते हुए लिखते हैं, "भारतवर्ष में खेती लाभदायक व्यवसाय नहीं रहा है। यह सुनी हुई बात थी, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव हो गया, दोनों साल की खेती में ६०)-७०) का नुक़सान रहेगा और कृषि-विभाग में सहायक कार्यकर्त्ताओं का वेतन २००) के लगभग अलग। हमारा कृषि-विषयक अनुभव चित्त को भयभीत करनेवाला है, खेती का व्यवसाय इतना निराधार हो गया है कि किसान ही की हिम्मत है कि वह इसे लिये बैठा है, अथवा दूसरा उपाय नहीं है, इसलिये लिये पड़ा होगा।"*

सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वाइरी-कमेटी ने एक कृषक की आमदनी का औसत सन् १९२८ ई० के मूल्याधार (Price level) पर ४२) लगाया है। इसके बाद कृष्युत्पादक वस्तुओं का मूल्य ५० प्रति-शत के लगभग गिर गया है, इसलिये आजकल एक कृषक की आमदनी २१) होती है। ख़र्च का हिसाब लगाते हुए

---

* जीवन कुटीर वनस्थली P. O. Niwai (Jaipur) का प्रथम कार्य-विवरण, पृष्ठ ८।

मि० के० टी० शाह ने अपनी पुस्तक (Sixty years of Indian finance) में लिखा है कि भारत में एक क़ैदी की .ख़ूराक का ख़र्च, जो बहुत हलके दर्जे की शरीर और आत्मा को क़ायम रखने के लिये दी जाती है, ९०) होता है। यह औसत १० वर्ष पहले का है। इस समय इस ख़र्च का आधा भी गिना जावे तो ४५) प्रति मनुष्य पीछे केवल खाने में ख़र्च होता है, कपड़ा-लत्ता, बीड़ी-तम्बाकू और छतरी, जूता इसमें शामिल नहीं है, ब्याह और ग़मी के ख़र्च भी इससे अलग होते हैं। इस हालत को देखकर पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि जब आमदनी से ख़र्च तिगुना और चौगुना हो और जिसको किसी भी तरह से कम नहीं किया जा सकता हो, ऋण का उत्तरोत्तर बढ़ना कौनसी आश्चर्य की बात है और इसमें कृषकों का क्या दोष है।

ऋण का भारी बोझ—घाटे का व्यवसाय करते-करते कृषकों पर न केवल सहकारी समितियों का ऋण बढ़ा है, बल्कि दूसरे तरीक़ों से भी बहुत ऋण हो गया है और उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इसकी अधिक वृद्धि अंगरेज़ी साम्राज्य स्थापित होने के बाद और विशेष कर पिछली अर्धशताब्दी के अन्दर हुई है। सेण्ट्रल बैंकिंग इंक्वाइरी कमेटी सन् १९३० ई० ने भारत के समस्त किसानों के ऋण का औसत ९०० करोड़ रुपया लगाया है। श्री० जमना-दास एम० मेहता ने २८ अक्टूबर, सन् १९३३ ई० में होनेवाले डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी के बम्बई-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष के पद से भाषण देते हुए, कृषकों के कुल ऋण का अनुमान

१२०० करोड़ रुपया लगाया है। इसका ब्याज १२ प्रतिशत वार्षिक के हिसाब से १४४ करोड़ के लगभग होता है। समस्त भारत की मालगुज़ारी की आमदनी का वार्षिक औसत लगभग ३५ करोड़ रुपया है अर्थात् कृषकों पर ब्याज का बोझ मालगुज़ारी के बोझ से चौगुना है। ऐसी अवस्था में सहकारी-समितियों का बढ़ा हुआ ऋण एक दम वसूल नहीं हो सकता। इस प्रश्न पर दिल्ली कोआपरेटिव कान्फ्रेन्स सन् १९३४ ई० ने बहुत विचार किया है और उसने सिफ़ारिश की है कि मौजूदा छोटी अवधि के ऋण को लम्बी अवधि के ऋण में परिवर्तन कर दिया जावे और वार्षिक क़िश्तों से वसूल किया जाय। इसके साथ-साथ उक्त कानफ्रेंस ने यह भी प्रस्ताव किया है कि सहकारी बैंक और समितियों को इस ऋण पर अपने ब्याज की वर्तमान दर भी कम करनी चाहिये। वास्तव में वर्तमान बढ़े हुए ऋण की आसानी से वसूली का इसके सिवाय और कोई दूसरा उपाय भी नहीं है; लेकिन ऐसा करने से सहकारी बैंकों की समितियों में लगी हुई रक़म का बहुत बड़ा भाग अटक जावेगा और ब्याज कम करने से इनको गहरी हानि होगी; इसलिये इसकी पूर्ति के वास्ते प्रान्तीय सरकारों को सहकारी बैंकों की, कम सूद पर रुपया उधार देकर, सहायता करनी चाहिये।

बड़ी कठिन समस्या—एक ओर तो कृषि का धन्धा घाटे का है, दूसरी ओर कृषकों पर भारी ऋण है। इससे कृषकों की दशा अति शोचनीय हो गई है। इस सम्बन्ध में कृषि रोयल-कमीशन

और भारतीय सेंट्रल तथा प्रान्तीय बैंकिङ्ग इंक्वाइरी कमेटियों का मत है कि यह जटिल समस्या केवल सुलभ और सस्ती उधार के साधन उपलब्ध होने से नहीं सुधर सकती, क्योंकि अकेली उधार घाटे के धन्धे को लाभ में परिवर्तन नहीं कर सकती, इसको हल करने के लिये **पहले किसानों को ऋण-मुक्त करना चाहिये,** लेकिन स्थायी लाभ के लिये यह भी पर्याप्त नहीं है, जब तक कि इनकी आय बढ़ाने और ख़र्च घटाने के उपाय नहीं किये जायँ।

आमदनी बढ़ाने के लिये इनकी भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर एक करना, उपज बढ़ाने का उपाय करना, खेती के अतिरिक्त दूसरे एक दो सहायक धन्धे करना सिखाना और उनके लिये उपयुक्त साधन उपस्थित करना आदि प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ख़र्च कम करने के लिये खेती के योग्य भूमि का उचित परिमाण हो, उसकी मालगुज़ारी की दर निश्चित करने के लिये उपयुक्त और ठोस प्रणाली निश्चित की जावे। सामाजिक अनावश्यक ख़र्चें न करने के लिये उपदेश-द्वारा विचार परिवर्तन किये जावें और विशेष कर शिक्षा का प्रचार किया जावे, जिससे कृषक हानि-लाभ समझने और धोखेबाज़ लोगों से बचने में समर्थ हों।*

---

* कृषकों को ऋण-मुक्त करने और इनकी आय बढ़ाने तथा ख़र्च घटाने के उपाय लेखक ने "कृषि-सुधार-योजना", नामक छोटी पुस्तक (Pamphlet) में अलग बताये हैं।

———

तेरहवाँ अध्याय

सुधार के उपाय—भूमि-बन्धक बैंक

कृषकों को लम्बी अवधि के लिये सहायता की भारी आवश्यकता है। इसके बिना कृषक-समुदाय को अर्थ-सम्बन्धी आवश्यकतायें पूरी नहीं हो सकतीं। भारत में लम्बी अवधि के लिये उधार देने के वास्ते साधन उपस्थित करने के लिये सरकार-द्वारा नियत की गई कई कमेटियों ने पूर्ण विचार किया है और उन सबकी सम्मति है कि कृषि को लम्बी अवधि के लिये उधार देने के वास्ते विशेष प्रकार की संस्थायें 'भूमिबन्धक बैंक' स्थापित होने चाहिये।

भारत के अनुकूल प्रणाली—भारत में इस समय कुछ प्रान्तों में सहकारी-भूमि-बन्धक बैंक स्थापित हैं; किन्तु वे अभी बहुत छोटे पैमाने पर काम कर रहे हैं। से० बै० इं० कमेटी ने छोटे कृषकों के लिये तो सहकारी-भूमि-बन्धक बैंक ही उपयुक्त बताये हैं और बड़े-बड़े ज़मींदारों के लिये ज्वाइण्ट स्टॉक भूमि-बन्धक बैंक स्थापित करने की सलाह दी है।

जहाँ तक थोड़ी अवधि की उधार का प्रश्न है, सहकारी सिद्धान्त बहुत ही उपयुक्त है, लेकिन लम्बी अवधि के लिये इस सिद्धान्त को अपनाने से यथोचित सफलता नहीं मिल सकती, बल्कि कभी-कभी यह हानिप्रद सिद्ध हो सकता है,

क्योंकि सहकारी-समितियों का संगठन असीमित और पारस्परिक जिम्मेवारी के आधार पर होता है। लम्बी अवधि की उधार के लिये जिम्मेवारी लेना घातक है। भूमि-बन्धक बैंकों के द्वारा इतने लम्बे समय के लिये उधार दी जावेगी, जो मनुष्य की औसत आयु से अधिक हो सकता है; इसलिये यह बहुत कठिन है कि लोग इतनी लम्बी अवधि के लिये सम्मिलित और पृथक्-पृथक् जिम्मेवारी लेने को तैयार हो जावें। इस दिक़्क़त को देखते हुए भूमि-बन्धक बैंकों का संगठन ज्वाइंट स्टॉक-प्रणाली पर होना ज़्यादा उपयुक्त मालूम होता है। इसके लिये भारत के समस्त प्रान्तों में एक-एक प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक होना चाहिये, जो आवश्यकतानुसार उस प्रान्त में अपनी शाखायें खोलकर या सहकारी-सेंट्रल बैंकों के द्वारा उस प्रान्त के इच्छुक किसानों को लम्बी अवधि के लिये उधार देता रहे। इसका संगठन इस प्रकार होना चाहिये :—

प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंकों का संगठन*

मूलधन—प्रत्येक प्रान्तीय बैङ्क का मूलधन २५ लाख रुपया होना चाहिये, जो १००) प्रति हिस्से के हिसाब से २५ हज़ार हिस्सों में विभक्त किया जावे। ये हिस्से दो श्रेणियों—'अ' और 'ब' में विभक्त किये जावें :—

* यह स्कीम इण्डियन फ़ाइनेंस के बैङ्किंग इंक्वाइरी अंक में प्रकाशित Land mortgage bank शीर्षक लेख से ली गई है।

(१) 'अ' श्रेणी के हिस्सों की रक़म, २५) दरख़्वास्त के साथ, २५) स्वीकृत होने पर, शेष एक वर्ष के अन्दर-अन्दर दो क़िश्तों में वसूल की जावे। इस श्रेणी के हिस्से जनता, बैंक और कोआपरेटिव सोसाइटीज़ आदि सबको दिये जाने चाहिये; इसके लिये इम्पीरियल बैंक, रिज़र्व बैंक, बड़े-बड़े ज्वाइंट स्टॉक बैंक, जो उस प्रान्त में काम करते हों और प्रान्तीय कोआपरेटिव बैंक आदि को अच्छी संख्या में हिस्से ख़रीदने के लिये उत्तेजित करना चाहिये। हिस्से बेचना प्रारम्भ करने की तारीख़ से दो महीने के अन्दर-अन्दर कुल हिस्से न बिकें तो प्रान्तीय सरकारों को चाहिये कि बचे हुए हिस्से ख़रीद लें।

(२) 'अ' श्रेणी के हिस्सों के द्वारा संगृहीत पूँजी के अतिरिक्त धन बढ़ाने के लिये प्रत्येक उधार लेनेवाले के लिये यह अनिवार्य हो कि वह उधार ली हुई रक़म के ५ प्रतिशत के हिस्से ख़रीदे और ऐसी रक़म उधार दी जानेवाली रक़म में से वसूल की जावे। इस प्रकार के हिस्से 'ब' श्रेणी के होंगे। इनसे बैङ्क का धन्धा बढ़ने के साथ-साथ मूलधन भी बढ़ता जायगा।

हिस्सेदारों का अधिकार—'अ' श्रेणी के हिस्सेदार बैङ्क के असली मालिक होंगे। उनको डाइरेक्टर चुनने, लाभ निश्चित करने और दूसरे ख़ास-ख़ास मामलों में निर्णय करने का अधिकार होगा, लेकिन उनको हिस्सों पर लाभ मिलने के अतिरिक्त दूसरा कोई फ़ायदा नहीं मिलेगा। 'ब' श्रेणी के हिस्सेदार जनरल-मीटिंग में शामिल हो सकेंगे और वादविवाद

में भाग ले सकेंगे, लेकिन उनको मत देने का अधिकार नहीं होगा, वे केवल परामर्श-समिति नियुक्त कर सकेंगे, जो बोर्ड को समय-समय पर उनके हितों की रक्षार्थ उचित बातें सुझाती रहेंगी।

बोर्ड का संगठन—बोर्ड के कुल १२ डाइरेक्टर होंगे, जो इस प्रकार चुने जावेंगे :—

(१) चार डाइरेक्टर 'अ' श्रेणी के हिस्सेदारों-द्वारा—ऐसे डाइरेक्टर वही लोग चुने जायँगे, जिनके पास ५ हज़ार के हिस्से होंगे।

(२) एक डाइरेक्टर प्रान्तीय कोआपरेटिव बैंक की ओर से—ऐसा बैंक कम से कम ५० हज़ार रुपये के हिस्से ख़रीदेगा।

(३) एक प्रान्त के तमाम व्यावसायिक बैंकों की ओर से—इसके लिये वही बैंक मत दे सकेगा, जिसके पास १००००) के हिस्से ख़रीदे हुए होंगे।

(४) एक रिज़र्व बैंक की ओर से—इसके लिये रिज़र्व बैंक को कम से कम १,००,०००) रुपये के हिस्से ख़रीदने होंगे।

(५) एक डाइरेक्टर प्रान्तीय धारा-सभा से।

(६) दो सपरिषद् गवर्नर जनरल-द्वारा, जिनमें एक ग़ैर सरकारी होगा।

(७) एक डाइरेक्टर ऑव् एग्रीकल्चर या दूसरा प्रमुख सरकारी अफ़सर, जो भूमि-सम्बन्धी मामलात से सम्बन्ध रखता हो Exofficio डाइरेक्टर होगा।

(८) एक लैण्ड-क्रेडिट बोर्ड (Land Credit Board) द्वारा—इसके लिये आगे वर्णन किया गया है।

बैङ्क अपना चेयरमैन स्वयं चुन सकेगा। मद्द नं० २ से ८ तक में वर्णित डाइरेक्टरों की अवधि २ वर्ष की होगी। मद्द नं० १ में वर्णित डाइरेक्टरों की अवधि ४ वर्ष की होगी। इनमें एक डाइरेक्टर प्रति वर्ष अलग होता जावेगा, लेकिन उसका पुनः निर्वाचन भी हो सकेगा।

प्रबन्ध—भूमि-बन्धक बैङ्क का संचालन ऐसे वैतनिक मैनेजर-द्वारा होगा, जिसको बैंकिंग और आर्थिक स्थितियों का पर्याप्त अनुभव होगा और बैङ्क का, सफलता-पूर्वक संचालन करने के लिये भारत एवं विदेशों के प्रमुख-प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों को मुद्रा (Monetary) और स्टाक-सम्बन्धी बाज़ारों की गति का पूरा-पूरा ज्ञान होगा। इसकी नियुक्ति डाइरेक्टरों के हाथ में होगी, लेकिन उसकी स्वीकृति सपरिषद् गवर्नर जनरल से ली जावेगी। मैनेजर के आधीन अफ़सर भी ऐसे नियुक्त किये जायँगे, जिन्हें कृषि और भूमि का मूल्य निर्धारित करने, प्रबन्ध करने और तत्सम्बन्धी क़ानूनी अधिकारों का ज्ञान होगा।

उधार—यह बैङ्क निम्नलिखित कामों के लिये उधार दे सकेगा:—

१—भूमि में स्थायी उन्नति करने के लिये।

२—नवीन भूमि में खेती करने के लिये (re-clamation of land)।

३—पुराने ऋण को चुकाने के लिये।

४—भूमि ख़रीदने के लिये।

५—ऐसे काम बढ़ाने के लिये, जो भूमि को उपज बढ़ाने में सहायक हों; जैसे—नहर या बाँध बनाना।

६—खेती की उपज में वास्तविक सुधार करने के उद्देश्य से खेती के काम के लिये मशीनें और अन्य आवश्यक औज़ारों के ख़रीदने के लिये।

इस दिये हुए ऋण के सम्बन्ध में बैङ्क यह देखता रहेगा कि लिया हुआ ऋण ठीक उसी काम में ख़र्च किया जाता है, जिसके लिये कि मंजूरी दी गई है। जब कभी आवश्यकता हो, ख़रीद किये हुए सामान व भूमि का रुपया ऋण लेनेवाले की ओर से बैंक स्वयं चुकावे।

उधार की ज़मानत—उधार दी हुई रक़म की ज़मानत में जायदाद रहन रहेगी। इसमें ज़मींदारों (land lords) और भूमि के मालिकों के लिये कोई अड़चन नहीं आती। केवल किरायेदारों का उपयोगाधिकार (occupancy right) को सहकारी-समितियों और भूमि-बन्धक बैङ्कों के नाम बेचे जाने और परिवर्तन किये जाने के लिये क़ानून में उचित संशोधन होने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त किरायेदारों (tenants) को दिये हुए ऋण को उन सहकारी-समितियों और सेंट्रल कोआपरेटिव बैङ्कों की ज़िम्मेवारी (Endorsement) से सुरक्षित रखा जाना चाहिये, जिनके द्वारा किरायेदार कृषक दरख़्वास्तें भिजवाया करें। ज़मींदारों

और भूमि के मालिकों की दरख़्वास्तें सीधी भी ली जा सकती हैं और उनकी सम्मति प्राप्त करने के लिये सहकारी-समितियों और सेंट्रल-कोआपरेटिव बैङ्कों में भेजा जा सकता है।

मार्जिन—उधार, भूमि की बाज़ारू क़ीमत का ५० प्रतिशत या वार्षिक खरी पैदावार के दसगुना (इसका औसत पिछले ५ वर्षों की पैदावार से लिया जावेगा) से जो कम होगी, दी जायगी। किरायेदारों को उनकी दस वर्ष की खरी बचत के औसत में से उनके गुज़ारे का सब खर्च घटाने पर जो बचेगा, उसके दसगुना से अधिक नहीं दिया जावेगा।

भूमि का मूल्य निर्धारित करने का आधार यह होना चाहिये :—

१—पिछले ५ वर्षों की खरी पैदावार के औसत और उसी समय उस ब्याज की दर के औसत से, जिस पर भूमि-बन्धक बैङ्क ने उधार दिया हो। प्रारम्भ में इसके लिये इम्पीरियल बैङ्क और बाद में रिज़र्व बैंक के बैंक-रेट का औसत लेना चाहिये।

२—आस-पास की भूमि की बिक्री के औसत से—इस प्रकार औसत निकालते समय भूमि की भिन्न-भिन्न श्रेणियों, तथा अन्य उपयोगिताओं; जैसे—रेलवे स्टेशन या मंडी का नज़दीक होना आदि और पैदावार की विशेषताओं का ध्यान रखना चाहिये।

उक्त वर्णित आधार भूमि की सही क़ीमत जानने के लिये कसौटी के रूप में है। यदि अन्य कोई कारण ऐसे हों, जिनका भविष्य में भूमि की क़ीमत पर अच्छा या बुरा असर पड़ता हो तो क़ीमत का निश्चय करते वक्त उनको भी गिनना चाहिये।

ऋण की वापसी बराबर की वार्षिक या छःमाही क़िश्तों के द्वारा होनी चाहिये। वार्षिक क़िश्त ब्याज की रक़म के ऊपर १ प्रति शत से अधिक नहीं होना चाहिये।

अवधि—ऋण की वापसी की अवधि ज़मींदारों और भूमि के मालिकों के लिये साधारणतया ५० वर्ष और किरायेदारों के लिये २५ वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिये।

कार्यकर्त्री पूँजी प्राप्त करने के तरीक़े—बैंक नीचे लिखे अनुसार पूँजी संग्रह कर सकता है :—

(अ) अमानतें और सेविंग्ज़-सर्टीफ़िकेट-द्वारा—इस बैंक को ५ वर्ष से कम की मियाद के लिये जमा स्वीकार नहीं करना चाहिये। इसे सेविंग्ज़-सर्टीफ़िकेट भी ५, १०, १५ वर्ष या इससे लम्बी अवधि के लिये ज़ारी करने का अधिकार होना चाहिये; लेकिन कुल जमा और जारी किये हुए सेविंग्ज़-सर्टीफ़िकेट की इकजाई रक़म बैंक के मूलधन और रक्षित फ़ण्ड के दसगुने से अधिक नहीं होना चाहिये।

(ब) डिबेञ्चर—यह बैंक अपनी जनरल पूँजी भी ज़मानत पर debentures भी जारी कर सकता है।

(स) उधार—यह बैङ्क अन्य साधनों के साथ-साथ अपनी जनरल पूँजी को ज़मानत पर दूसरे बैंकों, सरकार और विदेशी बाज़ारों से भी उधार ले सकता है।

सरकारी सहायता—पहले कुछ वर्षों के लिये आवश्यक है कि डिबेञ्चर को रक़म को अदायगी को पूरा करने के लिये सरकार गारंटी लेवे।

क़ानूनी सुविधायें—बैंक अपने धन्धे को सस्ता और सुगमता-पूर्वक चला सके और साथ ही यह दुःखदायी मुक़द्दमेबाज़ी से बच सके। इसके लिये निम्नलिखित क़ानूनी सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये—

(१) भूमि-बन्धक बैंकों के debentures ट्रस्टी सिक्यूरिटी में गिने जावें और उनको सरकारी महकमों में ज़मानतों के लिये स्वीकार किया जावे।

(२) स्टाम्प ड्यूटी, फ़ीस रजिस्ट्री आदि सब सहकारी समितियों की भाँति माफ़ होना चाहिये।

(३) बैङ्क, स्थानीय पत्र और सरकारी गज़ट में प्रकाशित कराकर और दफ़्तर रजिस्ट्री में नोटिस चिपकाकर सर्वसाधारण को यह सूचित करेगा कि वह अमुक-अमुक भूमि को रहन रखकर रुपया उधार दे रहा है। जिस किसी को उस जायदाद पर अधिकार और स्वत्व-सम्बन्धी कोई उज्र हो तो उसको चाहिये कि तीन महीने के अन्दर-अन्दर बैङ्क को सूचित कर दे। इससे

चूकने पर बैङ्क के पक्ष में होनेवाले रहन का, सब प्रकार के लेने-देने से, (बिना किसी लिहाज़ के) प्रथम हक़ होगा।

इस सम्बन्ध में बैङ्क रुपया देने से पहले प्रत्येक सावधानी बरतने की कोशिश करेगा और यह मालूम करेगा कि उधार लेनेवाला उस जायदाद को रहन रखकर उधार लेने का अधिकारी है कि नहीं और जो जायदाद वह रहन रख रहा है, हर प्रकार के झगड़ों-टंटों से बरी है और उसके सम्बन्ध में अदालत में कोई झगड़ा तो नहीं है; लेकिन उक्त वर्णित नोटिस देना बैंक के हितों की रक्षार्थ अन्तिम और पर्याप्त साधन माना जायगा।

(४) बैंक को यह अधिकार होना चाहिये कि ऋणी की प्रतिज्ञा भंग होने पर रहन-शुदा जायदाद को बिला अदालती कार्रवाई किये अपने क़ब्ज़े में ले सके। राहिन के किसी प्रकार का विरोध करने पर निकटवर्ती अदालत, जिसके अधिकार क्षेत्र में वह ज़मीन हो, का कर्त्तव्य होगा कि बैंक की ओर से सादी दरख़्वास्त प्राप्त होने पर क़ब्ज़ा दिलाये जाने की कार्रवाई करे। इसके लिये बैंक को कोर्ट-फ़ीस माफ़ होना चाहिये।

(५) समय पर रुपया न चुकने की हालत में बैंक को अधिकार हो कि वह रहन-शुदा जायदाद का ख़ुद प्रबन्ध कर सके, उसको बेच सके और किराये पर उठा सके।

(६) बैंक के हिसाबात की नक़लें कर्ज़े के औचित्य और जायदाद के प्रबन्ध की गवाही में सही स्वीकार की जावेंगी।

(७) उपरोक्त रिआयतों के अतिरिक्त बैंक को हर प्रकार के टैक्स व लागतों की माफ़ी होनी चाहिये।

लाभ का विभाजन और रिज़र्व फ़ंड—बैंक का खरा लाभ इस प्रकार विभाजित होना चाहिये—

(अ) दस प्रतिशत रक्षित कोष में, जब तक कि वह मूल-धन के बराबर न हो जावे।

(ब) शेष में से ५ % लगातार बढ़नेवाले लाभ (Cumulative) में, जो 'अ' श्रेणी के हिस्सों पर बाँटा जायगा। ५ % सादा (non-Cumulative) लाभ में, जो 'ब' श्रेणी के हिस्सों पर बाँटा जायगा बशर्ते कि :—

(१) सरकार की कोई रक़म ऐसी देनी न हो, जो उसने गारण्टी के अनुसार बैंक के debentures के चुकाने में दी हो या इसके लिये बैंक को उधार दी हो।

(२) प्रतिज्ञा भंग होने पर बैंक-द्वारा खातेदारों से खरीदी हुई जायदाद, उसके मूलधन व रक्षित फ़ंड के बराबर और उससे अधिक शेष न रही हो।

(३) उस कर्ज़ की तादाद, जिसके समय पर न चुकने के कारण बैंक ने जायदाद का इन्तिज़ाम अपने हाथ में लिया हो, उसके मूलधन और रक्षित कोष के ५% से अधिक न हो।

(४) नं० २ व ३ के अनुसार उलझी हुई कुल रक़म की तादाद उसके मूलधन और रक्षित कोष की तादाद के बराबर या उससे अधिक न हो।

(स) शेष लाभ बराबर-बराबर दो भागों में विभक्त होगा। एक भाग सरकार को दिया जावेगा और दूसरा हिस्सेदारों में बाँटा जावेगा। सरकार बैंक के देने की जिम्मेवारी लेती है, इसलिये उसका बैंक के लाभ में भाग लेना उचित है।

(द) मद्द नं० 'स' के अनुसार हिस्सेदारों में विभक्त होनेवाले लाभ के तीन भाग होंगे। दो भाग 'अ' श्रेणी के और एक भाग 'ब' श्रेणी के हिस्सेदारों में बाँटा जायगा। 'अ' श्रेणी के हिस्सों के लिये यह रिआयत हिस्सा ख़रीदने के लिये लोगों को उत्तेजित करने के वास्ते नहीं है, बल्कि आर्थिक सिद्धान्तानुसार है। 'अ' श्रेणी के हिस्सों की पूँजी सर्वप्रथम और एक दम संग्रह होगी और वह अकेली ही बैंक का काफ़ी काम बढ़ावेगी। 'ब' श्रेणी के हिस्सों की रक़म धीरे-धीरे आवेगी। इनकी अधिक रक़म उस वक़्त संग्रह होगी, जब 'अ' श्रेणी के हिस्सों के कारण पर्याप्त मात्रा में रक्षित-कोष जमा हो जायगा। ऐसी अवस्था में 'अ' श्रेणी के हिस्से अधिक लाभ पाने के अवश्य अधिकारी हैं।

लैंड-क्रेडिट-बोर्ड—समस्त प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक, लैंड-क्रेडिट-बोर्ड नामक एक संस्था के समान रूप से आधीन रहेंगे। इस बोर्ड को प्रान्तीय बैंकों के सब प्रकार के काम का निरीक्षण और नियंत्रण करने का पूर्ण अधिकार रहेगा। यह समय-समय पर बैंकों को मार्गनिर्देश के लिये सूचनायें देता रहेगा और अपने प्रभाव-द्वारा सब बैंकों की नीति,

कार्य-प्रणाली और व्यवहार को एक समान रखने का हर प्रकार से प्रयत्न करेगा।

बोर्ड का तमाम व्यय भूमि-बन्धक-बैंक, प्रान्तीय सरकारें और भारत-सरकार किसी उचित आधार पर चलावेंगे।

बोर्ड में छः मेम्बर और एक सेक्रेटरी होगा। सेक्रेटरी एक अनुभवी बैंकर और अर्थशास्त्री होगा, जिसकी नियुक्ति बोर्ड से और स्वीकृति सपरिषद् गवर्नर जनरल-द्वारा होगी।

मेम्बरों का कार्य-काल ३ वर्ष होगा; परन्तु कार्य व नीति को निरन्तर चलाये रखने के लिये दो मेम्बर प्रतिवर्ष वृत्तक्रम से अलग होते जावेंगे। बोर्ड अपने जलसे, जिस प्रकार और जब भी आवश्यक हो, करेगा; परन्तु कम से कम ३ मास में एक जलसा आवश्यक होगा। बोर्ड अपना चेयरमैन स्वयं चुनेगा।

बोर्ड के छः मेम्बरों का चुनाव इस प्रकार होगा :—

(अ) एक मेम्बर—सपरिषद् गवर्नर जनरल-द्वारा।

(ब) एक मेम्बर—केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा-द्वारा।

(स) एक मेम्बर—प्रान्तीय सरकारों-द्वारा।

(द) एक मेम्बर—प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंकों-द्वारा।

(ह) एक मेम्बर—ज्वाइंट स्टॉक, विनिमय, इम्पीरियल, प्रान्तीय कोआपरेटिव बैंक्स-द्वारा—इसके लिये प्रत्येक बैंक को एक मत देने का अधिकार होगा और इसके लिये प्रत्येक

बैंक के पास २०-२० हज़ार के हिस्से और एक-एक लाख के डिबेञ्चर होना आवश्यक हैं। ऐसे मेम्बर के लिये रिज़र्व बैङ्क की स्वीकृति होना चाहिये।

(फ) एक मेम्बर या सेक्रेटरी—भारत-सरकार-द्वारा वह व्यक्ति होगा, जिसको भूमि, कृषि और आर्थिक समस्याओं का ज्ञान होगा और जो एक्स-ऑफ़िशो मेम्बर समझा जावेगा।

चौदहवाँ अध्याय

सुधार के उपाय–औद्योगिक बैङ्क

परम कृपालु परमेश्वर ने भारत को सब प्रकार की निधियाँ, अपरिमित रूप से प्रदान की हैं। यहाँ पर कच्चे माल की बाहुल्यता है, भूमि-माता का गर्भ नाना प्रकार के खनिज पदार्थों से भरपूर है। इस कच्चे माल को निकालकर बनी हुई वस्तुओं में परिवर्तन करने के लिये अनेक कारख़ानों की और उनको चलाने के लिये अपरिमित धन की आवश्यकता है।

भारत में धन की कमी नहीं है। यहाँ इस समय भी अनेक कल, कारख़ाने और मिलें चल रही हैं। उन सबको पूँजी मिल रही है और वह काम कर रही हैं, लेकिन नियमित रूप से औद्योगिक आर्थिक सहायता का समुचित प्रबन्ध नहीं है; इसलिये करोड़ों रुपये का कच्चा माल विदेशों को जाता है और वहाँ से बनी हुई वस्तुयें यहाँ आती हैं। इसमें सुदूरस्थ स्थानों से माल के आने-जाने का ख़र्च पड़ता है, वहाँ की मज़दूरी पड़ती है। लेने, भेजने, बनाने, मँगाने और बेचनेवाले दूकानदारों का लाभ मिश्रित होता है। यह सब भारत और उसकी सर्वसाधारण जनता को भुगतना पड़ता है और यहाँ के करोड़ों लोग बेकार रहते हैं। यदि औद्योगिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने की सुव्यवस्था हो जाय तो बहुत-कुछ अंश में भारत में

उद्योग-धंधे बढ़ सकते हैं। इस सम्बन्ध में इंडस्ट्रियल कमीशन ने पर्याप्त विचार किया है और उसने औद्योगिक (Industrial) बैङ्क स्थापित करने की सलाह दी है। इसके लिये प्राइवेट प्रयत्न सफल नहीं हुए हैं, इसके लिये टाटा इंडस्ट्रियल बैङ्क का उदाहरण मौजूद है; अतएव प्राइवेट प्रयत्न के अतिरिक्त दूसरे प्रयत्न की आवश्यकता है, जैसा कि जर्मनी इत्यादि देशों में हुआ है, इसका वर्णन बैंक और उद्योग-धंधा शीर्षक अध्याय में किया गया है। इस प्रश्न पर भारतीय सेंट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी ने भी अच्छी तरह विचार किया है। उसने एक सलाह तो मज़बूत स्थितिवाले ज्वाइंट स्टॉक बैंकों को दी है कि वे जर्मन बैंकों की भाँति (देखो पृष्ठ नं० ६२) सहायता पहुँचावें*। दूसरी सलाह प्रान्तीय सरकारों को लम्बी अवधि की सहायता के लिये "प्रान्तीय-इंडस्ट्रियल-कारपोरेशन" स्थापित करने की दी है। †

भारत के उद्योग-धंधों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:—(१) छोटे घरेलू धंधे, (२) बड़े धंधे। पहली प्रकार के धंधों को सहकारी समितियों-द्वारा सहायता दी जानी चाहिये, दूसरी प्रकार के धंधों के लिये दो प्रकार की सहायता चाहिये :—

(१) स्थायी सहायता की नवीन चालू होनेवाले धंधों—इमारत बनाने और मशीनरी ख़रीदने आदि—के लिये ज़रूरत होती है।

---

* Its report, para 391.

† Para 401.

(२) **कार्यार्थ सहायता**—इसकी कच्चा माल ख़रीदने, उसको चीज़ें बनाने के लिये मज़दूरी चुकाने, उनका स्टॉक रखने और प्रत्येक दैनिक ख़र्च को पूरा करने के लिये ज़रूरत होती है।

पहली प्रकार की उधार को चुकाने की अवधि बहुत लम्बी होती है और दूसरे प्रकार की उधार की अवधि थोड़ी होती है, लेकिन इसमें भी कुछ रक़म तो ऐसी होती है, जो हमेशा ही लगी रहती है और लम्बी अवधि की उधार में आती है। कुछ का आव-जाव बना रहता है, वह छोटी अवधि की उधार में आती है, जैसा कि एक नवीन लेखक ने लिखा है—"कच्चा माल और बनी तथा अधबनी वस्तुओं का स्टॉक कम नहीं होता है। इस स्टॉक का कुछ भाग ऐसा होता है, जो हमेशा बना रहता है; इसलिये इसमें जो रुपया लगता है, वह स्थायी लागत में आता है। इससे ऊपर के स्टॉक में लगी हुई रक़म थोड़ी अवधि की लागत में आती है"। *

थोड़ी अवधि के लिये भारतीय-सेंट्रल-बैंकिंग-इंक्वायरी कमेटी की सिफ़ारिश के अनुसार भारतीय ज्वाइंट-स्टॉक बैंकों को सहायता पहुँचानी चाहिये और लम्बी अवधि के लिये प्रान्तीय औद्योगिक बैंक होने चाहिये। तमाम प्रान्तीय औद्योगिक बैंकों को एक सूत्र में बाँधने के लिये एक सेंट्रल-बोर्ड स्थापित किया जाना चाहिये, जिसके द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार समस्त प्रान्तीय बैंकों का संचालन होता रहे।

---

* Central Banking Enquiry Committee Report, Para 336.

प्रान्तीय औद्योगिक बैंकों का संगठन*

(१) **मूलधन**—प्रत्येक अच्छे, बड़े प्रान्त में एक बैंक हो और उसका मूलधन दो करोड़ रुपया हो। इसका आधा तो कार्य प्रारम्भ होने से पहले वसूल कर लिया जावे और आधा सुरक्षित जिम्मेदारी के रूप में या आवश्यकता पड़ने पर माँगने के लिये बाक़ी रक्खा जावे। इस मूलधन को जैसे-जैसे आवश्यकता हो, बाद में भी बढ़ाया जा सकता है। इसके हिस्से बैंक, प्रजा, कम्पनी आदि सबके सामने ख़रीदने के लिये उपस्थित किये जावें; लेकिन मूलधन के $\frac{1}{4}$ से अधिक हिस्से विदेशी लोगों व संस्थाओं को न दिये जावें। हिस्से बेचने की तारीख़ से छः महीने के अन्दर-अन्दर जितने हिस्से बिकें, उतने बेचे जावें, शेष रहे हुए हिस्सों को प्रान्तीय सरकार ख़रीद ले।

(२) बोर्ड आव् डाइरेक्टर में बारह मेम्बर होंगे, जिनका चुनाव इस प्रकार होगा :—

(अ) तीन हिस्सेदारों द्वारा।

(ब) एक औद्योगिक कम्पनियों द्वारा।

(स) एक उस प्रान्त में काम करनेवाले बैंकों द्वारा।

(ड) एक प्रान्तीय कोआपरेटिव बैंक द्वारा।

(इ) एक रिज़र्व बैंक द्वारा।

---

*यह स्कीम श्री० बी० टी० ठाकुर की पुस्तक (Organisation of Indian Banking) के इण्डस्ट्रियल-बैंक्स नामक १३वाँ अध्याय से ली गई है।

(फ) एक प्रान्तीय धारा सभा द्वारा।

(ज) दो सपरिषद् गवर्नर जनरल-द्वारा, लेकिन इनमें एक से अधिक सरकारी अफ़सर नहीं होना चाहिये।

(ह) एक इंडस्ट्रियल-क्रेडिट बोर्ड द्वारा।

(य) एक डाइरेक्टर ऑव् इंडस्ट्रीज़ एक्स-ऑफ़िशिओ मेम्बर होगा।

(३) **बैंक का काम**—उद्योग-धन्धों को उन्नति देना और इसके लिये सब प्रकार के आर्थिक साधन नीचे लिखानुसार उपस्थित करना—

(अ) माँगते ही वापस चुकाने-योग्य अमानतें स्वीकार करना, इस शर्त के साथ कि पाँच वर्ष से कम अवधि की अमानतें प्राप्त मूलधन और रक्षित कोष के बराबर से अधिक न हो। लम्बी अवधि के लिये सेविंग्ज़ सर्टीफ़िकेट जारी करना।

(ब) भारत और विदेशों में सीधे तौर पर बॉण्ड जारी करके उधार लेना और इसके लिये बैङ्क के पास जो भी ज़मानत हो, रहन रखना। ऐसे बॉण्ड की तादाद एक समय में कभी भी प्राप्त मूलधन और रक्षित कोष के बीस गुने से अधिक न हो।

(स) औद्योगिक कम्पनियों को उधार देना या खाता पेटे बाक़ी रखना; लेकिन ऐसी उधार बीस वर्ष से अधिक मियाद के लिये नहीं होनी चाहिये।

(ड) औद्योगिक कम्पनियों के हिस्से और डिबेञ्चर ख़रीदना और जब कभी आवश्यकता हो, उन्हें अण्डर-राइट करना।

(ढ) उन कम्पनियों के लिये व्यावसायिक बैङ्किङ्ग धन्धा करना, जिनको आर्थिक सहायता दी गई हो या जिनके लिये उधार का प्रबन्ध किया गया हो।

(फ) मद्द नं० 'स' और 'ई' में वर्णित धन्धा किसी स्थानीय संस्था (Local body), सरकार तथा अन्य संस्थाओं के साथ भी करना यदि इण्डस्ट्रियल बोर्ड स्वीकृति दे दे।*

(ज) जब आवश्यकता हो, औद्योगिक संस्थाओं को अपने अधिकार में लेना, उनका प्रबन्ध, संचालन और सुधार करना।

(ह) स्टॉक एक्सचेंज का मेम्बर होना और स्टॉक एक्सचेंज सिक्योरिटी का धन्धा करना।

(झ) दूसरे वे काम करना, जिनके लिये इण्डस्ट्रियल बोर्ड इजाज़त दे।

(क) दूसरे बैङ्कों के साथ हिसाब रखना और देश के क्लियरिंग हाउसों का मेम्बर बनना।

(४) बैङ्क के बोण्ड ट्रस्ट इन्वेस्टमेंट के लिये और रिज़र्व बैंक की लगती हुई रक़म के ज़मानत-पत्र के तौर पर स्वीकार किये जावें और पहले दर्जे की ज़मानतों में समझे जावें।

---

* जब बैङ्क के पास फ़ाज़िल रुपया हो तो वह ब्याज के नुक़सान से बचने के लिये उचित ज़मानत-पत्रों पर रुपया लगा सके; इसलिये यह नियम रक्खा है।

(५) रिज़र्व बैंक—इस बैंक को जब और जिस प्रकार आवश्यकता हो, सहायता देवे।

(६) इस प्रकार के बैंकों को सफलता दिलाने के लिये प्रान्तीय सरकारों को निम्नलिखित तरीक़ों पर सहायता करनी चाहिये :—

(अ) हिस्सेदारों को दस या अधिक वर्षों के लिये पाँच प्रतिशत लाभ देने की गारण्टी करना।

(ब) बैंक के बोण्ड की गारण्टी लेना, जब या जिस प्रकार भी उन्हें सर्वप्रिय बनाने के लिये ऐसा करने की आवश्यकता हो।

(स) विदेशी बाज़ारों से रुपया उधार लेने के लिये बैंक को अपनी साख उधार देना।

(द) अल्प या दीर्घ कालिक उधार देना, जब भी ऐसी सहायता देना आवश्यक और सम्भव हो। इसके बोण्ड्स भी ख़रीदना ताकि उनपर जनता का विश्वास मज़बूती से बढ़े।

(ह) बैंक को उसके लाभालाभ के प्रश्नों के परीक्षण या देख-भाल करने में सहायता देने के लिये अपने कला या उद्योग-सम्बन्धी जानकार अधिकारियों को, बिना किसी मुआवज़े के या नाम-मात्र के मुआवज़े पर (जो परिस्थितियों पर निर्भर होगा) बैंक के आधीन रखना।

(७) बैंक का लाभ इस प्रकार बाँटा जावे :—

(अ) गारण्टी दिये हुए हिस्सों का पाँच प्रति-शत लाभ बाँटने में।

(ब) सरकार के उस देने के चुकाने में, जो उसने गारएटी लिये हुए मुनाफ़े की अदायगी में दिया हो, पाँच प्रतिशत ब्याज-सहित।

(स) शेष में से पूरे वार्षिक लाभ का दस प्रतिशत, (इससे अधिक नहीं) बिना अ, ब में वर्णित रक़में घटाये, रक्षित कोष में ले जाने में, जब तक वह प्राप्त मूलधन के बराबर न हो जाय।

(द) बाक़ी बचा हुआ भाग ३ : १ के हिसाब से सरकार और हिस्सेदारों में बाँट देना चाहिये। इस लाभ का भाग सरकारी आमदनी में नहीं ले जाना चाहिये, बल्कि कला-सम्बन्धी शिक्षा और औद्योगिक सुविधाओं की उन्नति करने के उपायों में, औद्योगिक बैंकों और सहकारी समितियों को उधार देने में तथा अन्य लाभदायक कार्यों में लगाना चाहिये। बैंक को उन सब करों को देने के लिये बाध्य होना चाहिये, जो उस प्रान्त के दूसरे बैंक या कम्पनियाँ देने को बाध्य हैं।

इण्डस्ट्रियल-क्रेडिट-बोर्ड—समस्त प्रान्तीय-औद्योगिक बैंक इस बोर्ड के समान रूप से आधीन रहेंगे। इसके सात मेम्बर होंगे और उनका चुनाव इस प्रकार होगा :—

(अ) २ समस्त प्रान्तीय बैंकों और प्रान्तीय सरकारों-द्वारा सम्मिलित रूप से चुने हुए प्रत्येक बैंक और

सरकार को एक-एक मत देने का अधिकार होगा। इन दोनों में से एक से अधिक सरकारी अफ़सर नहीं होगा।*

(ब) १ देश के इराडस्ट्रियल एसोसियेशन-द्वारा।

(स) १ देश के दूसरे अच्छे बड़े बैंकों-द्वारा। एक बैंक को केवल एक मत देने का अधिकार हो।

(द) १ रिज़र्व बैंक-द्वारा।

(य) १ केन्द्रीय धारा सभा-द्वारा।

(फ) १ सपरिषद् गवर्नर जनरल-द्वारा।

(८) इन सात मेम्बरों के अतिरिक्त एक एक्स-ओफ़िशो मेम्बर होगा, जो गवर्नर जनरल की कौंसिल का उद्योग-धन्धों का इंचार्ज मेम्बर होगा।

(६) बैंक का काम एक मैनेजर चलावेगा, जो बोर्ड ऑव् डाइरेक्टर्स-द्वारा नियुक्त होकर इराडस्ट्रियल क्रेडिट बोर्ड-द्वारा स्वीकृत होगा। उसके नीचे आवश्यकतानुसार अफ़सर नियुक्त होंगे।

(१०) इस बैंक को अपने प्रान्त में अपनी शाखायें खोलने के सम्बन्ध में स्वतंत्रता होनी चाहिये।

---

* यदि ऐसा सम्भव न हो तो प्रान्तीय सरकार और प्रान्तीय औद्योगिक बैंक अलग-अलग एक-एक मेम्बर चुन सकते हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय

सुधार के उपाय—अन्य प्रयत्न

पोस्ट आफ़िस सेविंग्ज़ बैंक*

पोस्ट आफ़िस सेविंग्ज़ बैंक के सम्बन्ध में तीसरे अध्याय में प्रकाश डाला गया है, वहाँ पर बताया गया है कि इनके बढ़ने की अभी बहुत गुञ्जाइश है। इनके बढ़ाने के लिये निम्नलिखित सुधार होने की आवश्यकता है :—

चेक द्वारा जमा व बरामद—अभी भारत में सेविंग्ज़ बैंक के खातेदार अपने खातों में चेक-द्वारा लेन-देन नहीं कर सकते। सरकार को चेक-प्रणाली को उत्तेजना देने के लिये यह बाधा दूर करनी चाहिये। ब्रिटिश पोस्ट आफ़िस में रक़में चेक-द्वारा जमा की जाती हैं, केवल उन चेकों की रक़म दस रोज़ तक बरामद नहीं कराई जा सकती, इसलिये कि इस अर्से में पोस्ट आफ़िस चेकों का परिणाम मालूम कर सके। ऐसा ही अमल भारत में होना चाहिये।

वार्षिक जमा की सीमा—इस समय एक खातेदार अपने सेविंग्ज़ बैंक के खाते में ७५०) प्रति वर्ष से अधिक जमा नहीं कर

---

*यह भाग बी० टी० ठाकुर की Organisation of Indian Banking नामक पुस्तक के अध्याय १४ से लिया गया है।

सकता। यह रुकावट अनावश्यक है। मान लीजिये एक ग़रीब आदमी को इत्तिफ़ाक से कुछ हज़ार रुपये मिल जाते हैं। उनमें से वह पोस्ट आफ़िस सेविंग्ज़ बैंक के खाते में केवल ७५०) ही जमा कर सकता है। शेष के लिये वह दूसरा इन्तिज़ाम करेगा या गाड़ेगा। ब्रिटिश पोस्ट आफ़िस में यह सीमा ५०० पौंड तक है। इसकी तुलना में ७५०) बहुत कम हैं; इसलिये यह सीमा ५०००) वार्षिक होनी चाहिये।

अधिक से अधिक जमा की सीमा—इस समय एक खाते में ५०००) से अधिक रक़म कभी भी जमा नहीं की जा सकती। यदि खाता नाबालिग़ के नाम से खोला जावेगा तो उसमें १०००) से अधिक जमा नहीं हो सकता। इन सीमाओं से बचत करने की आदत को यथोचित उत्तेजना नहीं मिल रही है। ब्रिटिश पोस्ट आफ़िस में इस प्रकार की सीमा नहीं है। इसके पक्ष में यह दलील दी जाती है कि यदि जमा करनेवाले लोग पोस्ट आफ़िस से एक दम अधिक तादाद में रुपया माँग लें तो उसको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इस कठिनाई का निराकरण एक निश्चित रक़म—कम से कम ५०००) से अधिक माँगने की हालत में एक सप्ताह पहले नोटिस दिया जाने का नियम रक्खा जाकर किया जा सकता है।

जमाशुदा रक़म की कुर्की—भारतीय पोस्ट आफ़िस सेविंग्ज़ बैंक में जमा-शुदा रक़म की उचित अदालत के हुक्म से कुर्की हो सकती है। इसके लिये ब्रिटिश पोस्ट आफ़िस में

स्पष्ट नियम यह है—A Deposit Book is not a proper Security for money lent, and no claim by any person holding a deposit book in respect of a loan can be recognised. Deposits in the post office savings banks are not liable to 'attachment' or to its Scottish equivalent 'arrestment.' अर्थात्—"एक जमा बुक उधार दी हुई रक़म के लिये उचित सीक्योरिटी नहीं है, इसलिये किसी जमा-बुक पानेवाले व्यक्ति का उधार-सम्बन्धी कोई दावा उचित नहीं माना जावेगा। पोस्ट आफ़िस सेविंगज़ बैंक में जमा-शुदा-रक़में, कुर्की होने योग्य नहीं हैं।"

भारत में ब्रिटिश क़ानून की पूरी नक़ल करने की आवश्यकता नहीं है, इससे लोग अपने पावनेदारों को अधिक धोखा दे सकेंगे, लेकिन फिर भी लोगों को अपने कुटुम्ब के आकस्मिक ख़र्च के लिये कुछ बचाकर रखने के लिये कम से कम ५०००) की रक़म ऐसी होनी चाहिये, जिसको कुर्क न कराया जा सके। बहुधा देखने में आया है कि जब एक व्यक्ति किसी कारण से बहुत कर्ज़दार हो जाता है और अदालतें उसकी सारी जायदाद कुर्क करने का हुक्म दे देती हैं तो उस समय वह और उसका परिवार निःसहाय हो जाता है, उसके बच्चों को शिक्षा नहीं मिलने पाती और वह दाने-दाने को तरसते रहते हैं। ऐसी भीषण परिस्थिति में पड़कर वह परिवार उदर-पोषण के लिये नाना प्रकार के पाप करने को उतारू हो जाता

है और समाज में अशान्ति पैदा करने का कारण बन जाता है। अतएव बढ़ती हुई दरिद्रता को रोकने के लिये पोस्ट आफ़िस में जमा-शुदा प्रस्तावित रक़म को कुर्की से मुस्तसना रखना अनुचित नहीं है, जब कि ब्रिटेन जैसे न्याय-निपुण देश में भी ऐसा क़ानून है।

ग्रामीण जनों को सुविधा—प्रत्येक गाँव में पोस्ट-आफ़िस न होने से ग्रामीण जनता अपनी बचत को अधिकांश में ज़मीन में गाड़ देती है; क्योंकि वह दूर के गाँव में रुपया ले जाकर जमा कराना दिक्क़त तलब समझती है, इसलिये पोस्ट-मैन द्वारा सेविंग्ज़-बैंक में रुपया जमा व बरामद कराने की उचित सुविधा होनी चाहिये।

बैङ्कर्स-एसोसियेशन

भारतीय ज्वाइंट-स्टाक-बैंकों के प्रतिवर्ष फ़ेल होने की करुण-कथा पिछले पन्नों में पूर्णरूप से वर्णन की जा चुकी है। इसके अनेक कारणों में से एक कारण भारतीय-बैंकों के बीच में आपसी सहयोग का अभाव है। जब किसी एक पर आपत्ति आती है तो दूसरे उसकी ओर उदासीन होकर तमाशा देखते रहते हैं, लेकिन उसको येन-केन-प्रकारेण सहायता देकर बचाने की चेष्टा नहीं करते। यही कारण है कि अनेक भारतीय-बैंकों का, संतोष-जनक पूँजी रहते हुए भी, नक़द रुपये के अभाव में दिवाला निकल जाता है; अतएव भारतीय बैंकों का कर्त्तव्य है कि वे एक सूत्र में बँधकर रहें और विपत्ति-काल में एक

दूसरे की सहायता करने के हेतु तत्पर रहें। इसके लिये आवश्यक है कि ब्रिटिश बैंकर्स-एसोसियेशन के समान भारतीय बैंकर्स का भी एक एसोसियेशन स्थापित किया जावे, जो इस धन्धे की रक्षा और उन्नति के लिये हमेशा प्रयत्नशील रहे। जहाँ हमारे देश में अनेक व्यापारिक एसोसियेशन-चेम्बर ऑफ कामर्स, मिल-ओनर्स-एसोसियेशन, शेयर-होल्डर्स-एसोसियेशन और काटन-एसोसियेशन आदि हैं, जो अपने-अपने व्यवसाय की वृद्धि और रक्षा के लिये सदैव उद्योग करते रहते हैं वहाँ भारतीय बैंकर्स की शक्ति का, संयुक्त-हितों की रक्षार्थ संगठित न होना दुःख की बात है। जिस दिन यह संगठित होकर एक दूसरे के लाभ और भलाई के लिये प्रयत्न करेंगे और यह सोचेंगे कि किस प्रकार अपनी और अपने धन्धे की उन्नति करनी चाहिये, उस रोज़ निश्चय ही भारतीय बैंकिंग की पिछड़ी हुई अवस्था उन्नति की ओर क़दम बढ़ाना शुरू कर देगी; क्योंकि व्यक्तिगत प्रयत्न की अपेक्षा सम्मिलित और संगठित शक्ति अधिक प्रभावशाली होती है।

एसोसियेशन की स्थापना के लिये यह अधिक उपयोगी प्रतीत होता है कि प्रत्येक प्रांत में बैंकिंग-एसोसियेशन स्थापित हो और उस प्रांत के समस्त बैंकर्स ज्वाइंट-स्टाक बैंक व देशी बैंकर्स उसके नियमानुसार सदस्य हों और समस्त प्रांतीय एसोसियेशन मिलकर अखिल भारतवर्षीय बैंकर्स-एसोसियेशन की स्थापना करें। इसका प्रांतीय एसोसियेशन-द्वारा निर्वाचित

एक कार्यवाहक बोर्ड हो, जिसका वर्ष भर में एक बार या जब भी आवश्यक हो, अधिवेशन बुलाया जावे। इन प्रान्तीय एसोसियेशन के मेम्बरों को अपने नाम के आगे "बैंकर्स ऐसोसियेशन के मेम्बर" शब्द का प्रयोग करने की आज्ञा होनी चाहिये।

देशी भाषाओं को अपनाया जावे

सातवें अध्याय में भारतीय-बैंकिंग की पिछड़ी हुई अवस्था के बताये हुए अनेक कारणों में से एक कारण अंगरेज़ी भाषा का प्राधान्य बतलाया गया है। वास्तव में अंगरेज़ी न पढ़े हुए लोग बैङ्कों से लेन-देन करने में असमर्थ रहते हैं, क्योंकि उनके लिये अनेक प्रकार की अड़चनें उपस्थित होती हैं। इम्पीरियल बैङ्क तो इस सम्बन्ध में बहुत ही सख़्ती से काम लेता है। इसलिये सर्व साधारण और बैंकों के बीच निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि तमाम भारतीय-बैंक अंगरेज़ी न जाननेवालों के साथ देशी भाषा में व्यवहार करें। पास बुकें, चेक बुकें, और अन्य आवश्यक फार्म देशी भाषा में छपवावें और उनमें इन्द्राज देशी भाषा में करें। देशी भाषा में आये हुए पत्रों का उत्तर देशी भाषा में देवें। कम्पनियों के नियम (articles of association) संस्थाओं के प्रस्ताव देशी भाषा में स्वीकार किये जावें।

देशी भाषा से अभिप्राय प्रांतीय भाषाओं से है जैसे बङ्गाल में बंगला, गुजरात में गुजराती, संयुक्त प्रान्त में हिन्दी व उर्दू, पंजाब में उर्दू, महाराष्ट्र में मराठी आदि, लेकिन हिन्दी भाषा को सब प्रान्तों में अपनाया जावे; क्योंकि यह भाषा बहुत सरल है इसलिये हर जगह आसानी से बोली और समझी जा सकती है तथा भारतीय काँग्रेस के निर्णयानुसार देश की राष्ट्र भाषा होने की अधिकारिणी है।

इसमें बैङ्कों को कोई असुविधा और कष्ट नहीं होगा। कोटा स्टेट कोआपरेटिव बैंक लि० कोटा अपने जन्म-काल से ही हिन्दी में काम करता है। यह बैङ्क भी ज्वाइन्ट-स्टॉक और प्रान्तीय कोआपरेटिव बैंकों के समान सब प्रकार का बैंकिंग धन्धा करता है। जैसे—सेविंग्ज़-बैङ्क, चलतू-खाता और मियादी-अमानतें जमा रखना, अपने मेम्बरों को कृषोत्पादक वस्तुओं, सोना, चाँदी, और उनके गहने तथा अन्य आवश्यकता की वस्तुओं पर उधार देना, चेक, हुण्डी, बिलस का संग्रह करना और देश के अन्दर भुगतान का काम करना आदि। इसको अब तक कोई दिक़्क़त नहीं आई और न कभी कोई जाल हुआ। बड़ी सुगमता से काम चल रहा है। अतः कोई कारण नहीं है कि दूसरे बैङ्कों में इस प्रकार काम न चले। यदि बैंक के कर्मचारी भारतीय हैं और उस प्रांत के नहीं है जहाँ के बैङ्कों में काम करते हैं तो वह बहुत जल्दी उस प्रांत की भाषा को सीख सकते हैं।

———

सोलहवाँ अध्याय

उपसंहार

पिछड़ी हुई भारतीय-बैंकिंग को उन्नत करने के कुछ प्रयत्न इस पुस्तक के पिछले पन्नों में बतलाये गये हैं। उनमें अधिकांश सरकार पर निर्भर हैं। उनके लिये यह मान भी लिया जावे कि सरकार तदनुसार सुधार कर देगी तो भी वह पर्याप्त नहीं होगा। भारतीय-बैंकिंग की वास्तविक सफलता भारतीय प्रजा-जनों के हाथ में है। बिना इनके विश्वास और सहायता के इस धन्धे की पूर्ण रूप से उन्नति होना नितान्त अशक्य है। क्योंकि इसकी दुरावस्था के अनेक कारणों के साथ-साथ भारतीय-प्रजा का अपने बैंकों के प्रति कम विश्वास रखना भी एक प्रधान कारण है। यह ठीक है कि जो व्यक्ति अपनी गाढ़ी कमाई से बचाकर कुछ पूँजी संग्रह करता है, वह उसको कमज़ोर बैंकों में जमा रखने की जोखम उठाने से डरता है; लेकिन यह समझ में नहीं आता है कि एक बैंक केवल इस आधार पर कि उसका संचालन अंगरेज़ों द्वारा होता है अच्छी स्थिति वाला समझा जाता है और दूसरा बैंक भारतीय प्रबन्ध के आधीन होने से कमज़ोर ख़्याल किया जाता है। भारतीय लोगों की इस भीरुता का

कारण भारतीय बैंकों का फेल होना बतलाया जाता है और जिसको विदेशी संस्थाओं के हितैषियों ने अधिक महत्व दे दिया है। यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो भय खानेवाली कोई बात नहीं है। भारतीय प्रबन्ध के आधीन केवल एक दो उदाहरण ही ऐसे मिलेंगे जिनमें बेईमानी या मूर्खता हुई हो। बेईमानी या कुप्रबन्ध का ठेका अकेले भारतवासियों ने तो ले ही नहीं लिया, संसार के समस्त देशों में ऐसा ही नहीं बल्कि इससे भी अधिक होता है। ग्रेट-ब्रिटेन में भी उसके व्यापारिक विस्तार के अनुसार अनगिनत संख्या में बैङ्क फेल हुए हैं। अमेरिका में व्यापारिक-मंदी के साथ-साथ उत्तरोत्तर बैंक फेल होते जा रहे हैं।

अतएव भारत के लिये यह कोई विशेष बात नहीं है। यहाँ चंद बैङ्कों का दिवाला निकलना, दूसरे देशों की तुलना में कुछ भी नहीं है। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक बैङ्क पंजाब में फेल हुए हैं वहाँ इनकी जाँच के लिये सन् १९१३ ई० में एक कमेटी बैठी थी, उसकी सम्मति है कि सन् १९१३ ई० में बैंकों के फेल होने के कारण में भारतीय कर्मचारियों की अयोग्यता या अकर्मण्यता नहीं थीं, बल्कि ऐसे अनिवार्य कारण थे जो ऐसे उद्योगों की प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक देश में होते हैं।

एक ओर तो हमारी यह दशा है कि बेईमानी इत्यादि कोई विशेष शिकायत नहीं होते हुए भी हम अपने बैंकों पर जैसा चाहिये वैसा विश्वास नहीं करते; हालांकि भारतीय बैंकों की

बैलेंस-शीट विदेशी बैंकों की अपेक्षा अधिक स्थिति-सूचक होती है, जिससे इनकी आन्तरिक अवस्था का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। इनके हेड आफिस भारत में ही हैं। इनके वार्षिक अधिवेशन में जाकर इनकी स्थिति के संबंध में और आवश्यक बातें मालूम की जा सकती हैं। दूसरी ओर विदेशी-बैङ्कों पर बिना किसी सोच-विचार के सहज ही विश्वास कर लिया जाता है। इनकी बैलेंस-शीटों से इनकी वास्तविक स्थिति का मालूम करना आसान नहीं है। इनके हेड आफिस विदेशों में हैं, जहाँ हम में से अधिकांश भारतीयों की पहुँच नहीं है और न हम इनके व्यवस्थापकों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी ही रखते हैं। ये सब बातें ऐसी हैं, जिनसे होना तो यह चाहिये था कि हमारा विदेशी-बैङ्कों पर संदेह और कुछ कम विश्वास होता; किन्तु जो कुछ हो रहा है, वह उल्टा है। हमारे इस रुख़ से हमारे देश के राष्ट्रीय उद्योग-धंधे आर्थिक सहायता के अभाव से पनपने नहीं पाते हैं और विदेशी उद्योग-धंधे फलते-फूलते जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि भारतीय-बैंकिंग का उत्थान भारतीय प्रजा-जनों के हार्दिक सहयोग और सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार पर निर्भर है। इसके लिये आवश्यकता है कि हमारी मनोवृत्ति में स्थायी परिवर्तन हो और हम अपनों को, अपनाना सीखें। हमें चाहिये कि संकट के समय हम अपने बैङ्कों की सहायता करें ताकि उनके पैर दृढ़ता के साथ जम जावें, न कि घबरा कर उनके डूबने के कारण बनें।

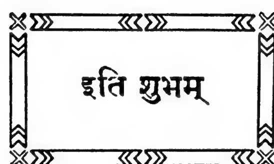
प्रचार की आवश्यकता

भारतीय प्रजा-जनों की उक्त मनोवृत्ति को उचित रूप में परिवर्तन करने के लिये गहरे प्रचार की आवश्यकता है, जिसका कि अभी तक पूर्ण अभाव रहा है। दुःख की बात है कि भारत की प्रभावशाली संस्था कांग्रेस ने भी यह अनुभव नहीं किया कि जिस प्रकार आर्थिक-स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक-स्वतंत्रता कुछ भी नहीं है, उसी प्रकार बैंकिंग-स्वतंत्रता के बिना आर्थिक-स्वतंत्रता भी कुछ नहीं है। स्वदेशी की सीमा केवल उद्योग-धंधों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसमें उद्योग-धंधों को पालन-पोषण करनेवाले बैङ्क, बीमा और जहाज़ी कम्पनियाँ भी शामिल हैं, इसलिये स्वदेशी के प्रचार के समान भारतीय-बैङ्कों को अपनाने के सम्बन्ध में काँग्रेस तथा दूसरी संस्थाओं के अधिवेशनों पर गहरा प्रचार होना चाहिये। प्रत्येक स्वदेशी-प्रचारक-संस्था और भारतीय-व्यापारिक-संस्था को चाहिये कि वह अपने यहाँ ऐसे प्रस्ताव पास करे कि जिससे उनके सब मेम्बर अपना लेन-देन केवल भारतीय-बैङ्कों से रखने के लिये बाध्य हों, जैसे कि स्वदेशी वस्तु व्यवहार की प्रतिज्ञा कराई जाती है।

पाठकों ! जिस रोज़ हम अपने बैङ्कों पर पूर्ण विश्वास करने लग जावेंगे, निश्चय जानिये कि उस रोज़ इस देश का आर्थिक

संकट टल जावेगा, उद्योग-धंधों की उन्नति होगी और बेकारी नौ दो ग्यारह हो जावेगी।

अंत में बैङ्कों के कार्य-कर्त्ताओं संचालकों और निरीक्षकों से भी निवेदन है कि देश का आर्थिक-जीवन आपके हाथ में है। इस देश की धनराशि का देश के हित में उपयोग होना केवल आपकी कार्य-कुशलता, सावधानी और ईमानदारी पर अवलम्बित है, इसलिये बंधुओ आपकी ओर से कोई ऐसी घटना नहीं घटनी चाहिये, जिससे भारतीय बैङ्क बदनाम हों और इस धन्धे को ठेस पहुँचे।



परिशिष्ट नं० १

साख-पत्र

दर्शनी हुन्डी

श्री

१॥ सिध्य श्री बम्बई बन्दर सुभ स्थाने भाई नारायण दास गणेशदास जोग श्री कोटा सू लखतूं गणेशदास शिवप्रसाद को जै गोपाल बंचावजो उपरंच हुन्डी एक रुपया १०००) अन्नरे रुपया एक हजार की नेमे रुपया पाँच सो का दूणा पूरा इठे राख्या भाई सोभागमल चांदमल पास मिती आसोज बदी १ सं० १९७८ पूग्या तुरत साह जोग रुपया हुन्डी चलण का दीज्यो समवत १९७९ आसोज बदी १॥

दर्शनी हुण्डी की पुश्त

रु० १०००)

नेमे नेमे रुपया दो सो पचास का चोगणा पूरा रुपया एक हजार कर दीजो।

भाई नारायण दास गणेश दास
बम्बई

मुद्दती हुण्डी

श्री परमेश्वर जी

१॥ सिद्ध श्री बम्बई बन्दर शुभ स्थाने भाई नारायण दास गणेशदास जोग श्री कोटा से लखतूं गणेश दास शिव प्रसाद को जै गोपाल बंचावजो उपरंच हुण्डी १ रुपया १०००) अक्षरे रुपया एक हजार का नेमे रुपया पाँच सो का दूणा पूरा इठे राख्या भाई सोभागमल चाँद मल पास मिती आसोज बदी १ सम्मत १६७६ से ६१ दिन पीछे पौंचे दाम को नामे धनो शाह जोग ठिकाना लगाये चोकसी कर दाम देना। हुण्डी लिखी मिती आसोज बदी १ सम्बत १६७६ ॥

मुद्दती हुण्डी की पुश्त

रु० १०००)

नीमे का नीमे रुपया दो सो पचास का चोगना पूरा रुपया एक हज़ार कर दीजो

भाई नारायण दास गणेश दास
बम्बई

(स) पैठ

श्री

सिध्य श्री बम्बई बन्दर शुभ स्थाने भाई नारायण दास गणेश दास जोग श्री कोटा से लखतूँ गणेसदास शिवप्रसाद को जै गोपाल बंचावजो उपरंच हुण्डी १ रुपया १०००) अक्षरे रुपये एक हजार की नीमे रुपया पाँच सौ का दूणा पूरा इठे राख्या सोभाग मल चाँदमल पास मिती आसोज बदी १ सम्वत् १९७९ पूग्यां तुरत नामे धनी साह जोग ठिकाना लगाय चोकसकर सिकार दाम देना। मिती आसोज बदी १ सम्वत् १९७९ को लिखी थी सो उपर वाला धनी कहता है कि हुण्डी खो गई सो हुण्ड़ी खो गई होवे तो अपना रोकड़ नकल रोजनामचा सब बहियाँ देखकर इस पेठ परमाणे सिकार दाम दीजो। यदि हुण्डी सिकर गई होवे तो पेठ रद्द समझना और पेठ सिकर जावे तो हुण्डी रद्द समझना। सनद नग दो तुम्हारे ऊपर कीनी छै जिसमें १ सनद का दाम मुजरा देस्यां सम्मत १९७९ आसोज सुदी १

पेठ की पुश्त

पेठ छः

नीमे का नीमे रुपया दो सो पचास का चोगणां पूरा रुपया एक हजार कर दीजो।

भाई नारायण दास गणेस दास

बम्बई

परपेठ

श्री

सिद्ध श्री बम्बई बन्दर शुभ स्थाने भाई नारायण दास गणेश दास जोग श्री कोटा सूँ लखतूँ गणेश दास शिव प्रसाद को जैगोपाल बंचावजो उपरंच हुण्डी १ रु० १०००) अन्नरे रुपया एक हज़ार का नीमे रुपया पाँच सो का देवणा पूरा इठे राख्या सोभागमल चाँदमल पास मिती आसोज बदी १ सं० १९७९ पूग्यां तुरत नामे धनी शाह जोग ठिकाना लगाय चोकस कर रुपया हुण्डो चलण की लिखी हती जिणा की पेठ लिखी मिती आसोज सुदी १ सं० १९७९ सो राख्या वाला धनी कहता है कि हुण्डी तथा पेठ दोनों खो गई है सो हुण्डी तथा पेठ दोनों खो गई होवे तो अपना रोकड़, नकल, रोज़नामचा सब बहियाँ चोकस कर इस परपेठ प्रमाणे सिकार दाम दीजो। यदि हुण्डी सिकर गई हो तो पेठ और पर पेठ रद्द है, पेठ सिकर गई हो तो हुण्डी और परपेठ रद्द है, और यदि परपेठ सिकर जावे तो हुण्डी और पेठ रद्द है। सनद नग ३ तुम्हारे उपर कीनी जिनमें सनद नग १ का दाम मुजर भर देस्यां। सम्बत् १९७९ आसोज सुदी ११।

पुश्त परपेठ

परपेठ

नीमें का नीमे रुपया दो सौ पचास का चोगणां पूरा रुपया एक हज़ार कर दीजो ।

भाई नारायण दास गणेश दास

बम्बई

मेजर

श्री

१॥ सिध्य श्री बम्बई बन्दर शुभ स्थाने सरब ओपमान लायक सकल सराफे का पंच समसत, जोग श्री कोटा से लखतूँ सकल पंच समस्त का जोहार बांच जो। उपरंच हुण्डी १ रुपया १०००) अन्तरे रुपया एक हज़ार की नारायण दास गणेश दास उपर लिखी, इठा सूँ गणेश दास शिव प्रसाद की, राख्या सोभागमल चांदमल पास आसोज बदी १ सम्मत् १९७९ की पुग्पां तुरत नामे धनी शाह जोग हुण्डी चलण की थी, जिसकी पेठ लिखी मिती आसोज सुदी १ और परपेठ आसोज सुदी ११ की लिखी थी सो राख्या वाला धनी कहता है कि हुण्डी तथा पेठ तथा परपेठ तीनों खो गई है सो हुण्डी, पेठ तथा परपेठ खो गई होवे तो उनका रोकड़, नकल रोज़नामचा तथा सब बहियाँ चोकस कर इस मेजर परमाणे सीकार दाम दीजो। यदि हुण्डी, पेठ तथा परपेठ में से कोई पहले सिकरी होवे तो मेजर रद्द है बांच कर फेर दीज्यो। सनद नग ४ तुम्हारे उपर करी है जिनमें से सनद नग १ का दाम भर देस्यां। सम्मत् १९७९ काती बदी १।

साख १—मगनी राम बभूत सिंह की

साख १—लछमन दास समीर मल की

साख १—गणेस दास किसना जी की

साख १—शिव लाल मोती लाल की

साख १—धनरूप मल राज मल की

प्रोनोट (Pronote)

रु०) बम्बई ता०

मैं/हम ....

इकरार करता हूँ/करते हैं कि तलब करते ही दी स्वदेशी बैंक लिमिटेड को अदद रुपये ....

जो मैं/हम ने उक्त बैंक से उधार लिये हैं) प्रति सैकड़ा मासिक ब्याज सहित (जो छः माही चक्रवृद्धि ब्याज से होगा) अदा कर दूँगा/देंगे।

द० उधार लेने वाले के ....

(मय पता) ....

No.__________ Bombay______________1934.

The Swadeshi Bank Limited Bombay.

*Pay*____or bearer.

*Sum of Rs.*____

____

Rs. |__________|

देशी-विनिमय बिल

Stamp.	No. 390.	Kotah. January 16, 1932.
	Rs. 10000.	

One month after date pay to J. M. Mehta or order the sum of ten thousand rupees. Value received.

Gupta & Sons.

To,

Messers, Roy Martin & Co.,

53 Simla street,

CALCUTTA.

विदेशी-विनिमय बिल

पहली प्रति

Stamp.	No. 139.	Calcutta, January 19, 1932.
	£ 5000.	43, 2, Clive Street.

Thirty days after Sight of this First of Exchange, Second and Third of the Same Tenor and date unpaid, pay to the order of Messers, Aukland & Co., the Sum of Five Thousand Pounds. Value received.

Ghosh and Midland
H. Ghosh.

To,

M/S. James Wallis & Co.,
50 Lidney Avenue
LONDON.

विदेशी-विनिमय बिल

दूसरी प्रति

Stamp.	No. 139.	Calcutta. January 19, 1932.
	£ 5000.	43, 2. Clive Street.

Thirty days after Sight of this Second of Exchange, First and Third of the same Tenor and date unpaid, pay to the order of Messers. Aukland & Company tho Sum of Five Thousand Pounds. Value received.

Ghosh & Midland
.L Ghosh.

To,

Messers. James Wallis & Co.,
50 Lidney Avenue,
LONDON.

विदेशी-विनिमय बिल

तीसरी प्रति

Stamp.	No. 139.	Calcutta, January 19, 1932.
	£ 5000.	43, 2, Clive Street.

Thirty days after Sight of this Third of Exchange, First and Second of the Same tenor and date unpaid, pay to the order of Messers. Auklaud & Co., the Sum of Five Thousand Pounds. Value received.

Ghosh & Midland
H. Ghosh.

To,

M/S. James Wallis & Co.,
Lidney Avenue,
LONDON.

परिशिष्ट नं० २

स्थिति-सूचक-पत्र

बैलेंस-शीट का नमूना

दी स्वदेशी बैंक लिमिटेड

बैलेंस-शीट ता०........१८........पर

मूल पूँजी और देना

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
मूलधन—						
निर्धारित मूलधन ..) प्रति हिस्सा से......हिस्सों का....	..	..	..			
जारी शुदा मूलधन...) प्रति हिस्सा से....हिस्सों का....	..	..	..			
बिका हुआ मूलधन...) प्रति हिस्सा से....हिस्सों का.. ..	..	..	..			
मांगा हुआ मूलधन रु०..) प्रति हिस्सा मांगा गया	..	..	..			
कमी—मांगा हुआ, जो वसूल नहीं हुआ	..	..	...			
	..	..	..			
ज़ब्त किये हुए हिस्से (प्राप्त रक़म)	..	..	..	..	..	..
उधार ली गई—रहन पर या रहनयुक्त डिबेञ्चर बाबत से				..	..	..
रक्षित कोष—				...	...	..
(यदि अलग अलग नाम के कोष हों तो विगत दी जा सकती है)						
अन्य देना—						
चलतू खाता और सेविंग्ज़ बैंक की जमा	..	..	..			
मियादी जमा	..	..	..			
बैंकों तथा एजेन्टों का देना जमानतों पर पूर्ण सुरक्षित ..	..	..	..			
बैंकों तथा एजेन्टों का देना बिना जमानतों पर	..	..	..			
बिल्स (चुकाने योग्य) ..	..	..	..			
मुतफ़र्रिक देना	..	...	..			
बिना मांगा हुआ लाभ	..	..	..	..	..	..
खातेदारों के लिये सही किये हुए बिलस का देना				..	..	..
संग्रह के लिये आये हुए बिलस, जो वसूल होने को हैं				..	..	..
लाभ और हानि—						
पिछली बैलेंसशीट के मुताबिक़ देना	..	..	..			
कमी—उक्त रक़म का विभाजन	..	..	..			
बाक़ी आगे लाई गई ..	..	..	..			
लाभ पिछली बैलेंस शीट से ..	..	..	..	..	..	..
				..	..	..
				..	..	..

रोशन और लेना

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
रोशन—						
हाथ में और बैंकर्स के पास ..	..	..	..			
जमा, मांगने और अल्प कालिक नोटिस पर प्राप्य	..	..	...			
सोने चांदी के पासे हाथ में ..	..	..	..	..	..	..
लगी हुई पूँजी—						
प्रथम श्रेणी और ट्रस्टी जमानतों पर	..	.	.			
डिबेञ्चर	..	..	..			
दीगर रक़में	.	..	..	..	.	..
नोट—यह भी लिखना चाहिये कि ऊपर लिखित जमानतों की क़ीमत इस आधार पर आंकी गई है—"मूल्य-करण लागत या बाज़ार भाव से अधिक नहीं किया गया है; बल्कि इनमें जो कम है वह लिया गया है।" यदि उन जमानतों की क़ीमत उक्त आधार से अधिक बढ़ती हो, तो ऐसी बढ़ी हुई रक़म अलग दिखा देनी चाहिये।						
वसूल होने वाले बिलस—...... ..				..	..	..
ऋण और उधार—						
खाता पेटे और मांगने पर अदा होने योग्य	..	..	..			
ऋण	..	..	.			
डिस्काउण्ट किये हुए बिलस ..	...	.	..			
मुतफ़र्रिक लेना	..	..	..	.	..	..
नोट—यहाँ पर नीचे लिखी विगत लिखनी चाहिये। "यह ऋण और उधार संदेह जनक लेने की क्षति-पूर्ति के लिये उचित रक़म निकालकर दिखाई गई है।" यदि ऐसा न किया हो तो संदेह जनक ऋण की बाक़ी को, नं० ३ में दिखाना चाहिये।						
उक्त वर्णित ऋण के जोड़ में निम्न लिखित रक़में शामिल हैं:—						
(१) बैंक के डायरेक्टरों और अफ़सरों की तरफ़ लेना	..	..	..			
(२) ऐसा दूसरा ऋण जिसके चुकाने के लिये ज़ामिन के तौर पर या दूसरी तरह से डायरेक्टर ज़िम्मेवार हैं।	..	...	..			
(३) संदेह जनक ऋण, जिनकी क्षति-पूर्ति के लिये कोई रक़म नहीं निकाली गई।	..	..	...			
खातेदारों की तरफ़ लेना सही किये हुए बिलस के लिये।				..	..	..
भूमि और जायदाद की लागत रक़म	..	..	..			
कमी—उपयोग खर्च खाते नावे लिखा गया	..	..	..	..	..	..
फरनीचर आदि सामान की लागत रक़म	..	..	..			
कमी—उपयोग खर्च खाते नावे लिखा गया	..	..	..	..	..	..
अन्य सम्पत्ति				..	..	..
लाभ और हानि (यदि नुक़सान होवे तो जमा की तरफ़ बताये अनुसार विगत लिखी जावे) ..				..	..	..
				..	..	..

मासिक-स्टेटमैन्ट

अमुक बैंक*

मासिक-स्टेटमैंट

ता० ———————— १९३४ ई०

देना	रुपये	लेना	रुपये
		रोशन	
बिका हुआ मूलधन	...	रोशन हाथ में और सेंट्रल तथा क्लिपरिंग बैंकों में	...
प्राप्त मूलधन	...	रोशन दूसरे बैंकों में	...
रक्षित कोष ...	...	लगी हुई पूँजी—	...
जमा ...	...	तुरंत नक़द में परिवर्तन होने योग्य जमानतों पर	
चल्लू ...	...	दूसरी तरह पर	...
सेविंग्ज़ ...	...	डिस्काउण्ट किये हुए बिलल ...	...
मियादी ...	...	खाता पेटे और ओवर ड्राफ़्ट ...	...
दीगर देना ...	...	ऋण	...
मीज़ान	———	दीगर सम्पत्ति	...
		मीज़ान	———

*,Oranization of Indian Banking by B. T. Thakur page 239.

परिशिष्ट नं० ३

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
३६	२१	बैङ्क में	बैङ्क के
,,	२२	का बहुमत	में बहुमत
४४	१७	उधार की हुई	उधार ली हुई
४६	७	दिया जावेगा	दे सकेगा
५०	३	लेने वालों का	लेने वालों की
५९	६	चुकाती हैं	लेती हैं
६४	६	क्लक	क्लर्क
१००	४	को	की
,,	,,	अंग्रेज़ो	अंग्रेज़ी
११७	१९	दुरवस्था	दुरावस्था
१३१	१०	उपयुक्त होना	उपयुक्त क़ानून होना
१५१	३	न लगाये जाने	लगाये जाने
१७०	६,८,११	रजिस्टर्ड	रजिस्ट्री
१८०	८	बक	बैङ्क
१८०	१४	ख़्याल	ख़याल
१८५	७	बर्जित	वर्जित
१८६	१७	ज़मानतों का	ज़मानतों को
१९०	२१	अपने हिस्सा	अपनी हिस्सा—पूँजी

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	११	बैङ्क-क़ानून	बैङ्क, क़ानून
२२१	१७	दानों	दोनों
२२५	१८	अधिक कम	अधिक व कम
२३३	१०	फॉय	कार्य
२३८	७	लागों	लोगों
२४४	१५	राजनितिक	राजनैतिक
२४५	१४	,,	,,
२४६	१,२	,,	,,
२५४	१२	करनी	होनी
२५६	११	सहकारी और विभाग	सहकारी विभाग
२६९	१३	उसी समय	उसी समय के
२७०	२१	पूँजी भो	पूँजी की

समर्पण की पहली लाइन में बी० ए० के बजाय बी० एजी० पढ़िये

भारतवर्षीय हिन्दी-अर्थशास्त्र-परिषद

(सन् १९२३ ई० में संस्थापित)

सभापति

श्रीयुत पंडित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० अर्थ-शास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

मंत्री :—

(१) श्रीयुत जयदेव प्रसादजी गुप्त, एम० ए०, बी कामo, एस० एम० कालेज, चंदौसी।

(२) साहित्यरत्न पंडित उदयनारायण जी त्रिपाठी एम० ए० अध्यापक, दारागंज हाई स्कूल, दारागंज, प्रयाग।

इस परिषद् का उद्देश्य है जनता में हिन्दी द्वारा अर्थशास्त्र का ज्ञान फैलाना और उसका साहित्य बढ़ाना। कोई भी सज्जन १) प्रवेश शुल्क देकर इस परिषद् का सदस्य हो सकता है। जो सज्जन इसे कम से कम १००) की आर्थिक सहायता देते हैं, वे इसके संरक्षक समझे जाते हैं। प्रत्येक सदस्य और संरक्षक को परिषद् द्वारा प्रकाशित या संपादित पुस्तकें पौने मूल्य पर दी जाती हैं।

परिषद् की संपादन समिति द्वारा सम्पादित होकर निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :—

(१) भारतीय अर्थशास्त्र (दो भाग)।
(२) विदेशी विनिमय।
(३) अर्थशास्त्र शब्दावली।
(४) कौटिल्य के आर्थिक विचार।
(५) भारतीय बैंकिंग।
(६) संपत्ति का उपभोग।

इनके अतिरिक्त, निम्न लिखित पुस्तकों का सम्पादन हो रहा है:—

(७) भारत की जनता।

(८) राजस्व शास्त्र।

(९) अंक शास्त्र।

(१०) भारत के उद्योग धंधे।

हिन्दी में अर्थशास्त्र सम्बन्धी साहित्य की कितनी कमी है, यह किसी साहित्य प्रेमी सज्जन से छिपा नहीं है। देश के उत्थान के लिये इस साहित्य की शीघ्र वृद्धि होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक देश प्रेमी तथा हिन्दी प्रेमी सज्जन से हमारी प्रार्थना है कि वह इस परिषद का संरक्षक या सदस्य होकर हम लोगों को सहायता देने की कृपा करें। जिन महाशयों ने इस विषय पर कोई लेख या पुस्तक लिखी हो, वे उसे सभापति के पास भेजने की कृपा करें। लेख या पुस्तक परिषद द्वारा स्वीकृत होने पर सम्पादन समिति द्वारा बिना मूल्य सम्पादित की जाती है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण परिषद अभी तक कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं कर पायी है, परन्तु वह प्रत्येक लेख या पुस्तक को सुयोग्य प्रकाशक द्वारा प्रकाशित कराने का पूर्ण प्रयत्न करती है। जो सज्जन अर्थशास्त्र सम्बन्धी किसी भी विषय पर लेख या पुस्तक लिखने में किसी प्रकार की सहायता चाहते हों, वे नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें।

दयाशंकर दुबे, एम० ए०
दारागंज, प्रयाग।